वेदान्त का भक्ति विमर्श एवं मध्यकालीन भक्तिकाव्यों में उसकी अभिव्यक्ति (भक्तकवि कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं के विशेष सन्दर्भ में)

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की

पीएच्.डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोधनिर्देशक

प्रो. राम नाथ झा

शोधच्छात्र

महेन्द्र यादव

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

2018

Scanned by CamScanner

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

School of Sanskrit and Indic Studies

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

Jawaharlal Nehru University

नई दिल्ली-११००६७

New Delhi-110067

20th July, 2018

DECLARATION

I Declare that the thesis entitled 'वेदान्त का भक्ति विमर्श एवं मध्यकालीन भक्तिकाव्यों में उसकी अभिव्यक्ति (भक्तकवि कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं के विशेष सन्दर्भ में)' submitted by me for the award of degree of **Doctor of Philosophy** is an original research work and has not been previously submitted for any other degree or diploma in any other institution/University.

Mahendra Yadav

(Mahendra Yadav)

Scanned by CamScanner

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

School of Sanskrit and Indic Studies

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

Jawaharlal Nehru University

नई दिल्ली-११००६७

New Delhi-110067

20th July, 2018

CERTIFICATE

The Thesis entitled 'वेदान्त का भक्ति विमर्श एवं मध्यकालीन भक्तिकाव्यों में उसकी अभिव्यक्ति (भक्तकवि कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं के विशेष सन्दर्भ में)' submitted by **Mr. Mahendra Yadav** to School of Sanskrit and Indic Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067 for the award of degree of **Doctor of Philosophy** is an original research work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma in any University. This may be placed before the examiners for evaluation.

20/07/2018

(Prof. Ram Nath Jha)

SUPERVISOR

डॉ० रामनाथझा:
आचार्य:
विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्रम्
जवाहरलालनेहरूविश्वविद्यालय:
नवदेहली - 110067

(Prof. Girish Nath Jha)

DEAN

Scanned by CamScanner

कृतज्ञतानिवेदन

सबसे पहले मैं उस परम पिता परमेश्वर को प्रणाम करना चाहूँगा जिनकी असीम कृपा से मुझे शोधकार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ, जिनकी असीम कृपा से संस्कृत विषय में रुचि पैदा हुई, जिनकी असीम कृपा से (भगवद्वाणी) भगवद्गीता पर शोध करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसे संयोग कहें या आपकी इच्छा जैसा कि मुझे भक्ति-दर्शन पर शोध करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुनः मैं आपको कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।

अब मैं अपने शोधनिर्देशक प्रो. राम नाथ झा गुरु जी के प्रति कृतज्ञता निवेदित करना चाहूँगा जिनके कुशल निर्देशन में यह शोधकार्य अपनी मंजिल तक पहुँच सका। आपकी प्रेरणा से वेदान्त जैसे महत्त्वपूर्ण विषय में रुचि पैदा हुई। आपने हर परिस्थियों में मेरा समर्थन किया। इस बात के लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ कि शोधकार्य के दौरान आपके द्वारा तय की गयी समय-सीमा का मेरे द्वारा बार-बार उल्लंघन किया गया। आपका स्नेह, आपका व्यक्तित्व, प्रभावशाली व्याख्यान सब कुछ अद्वितीय है। आपके दर्शन मात्र मेरी चेतना जागृत हो उठती है। मैं परमपूज्य गुरुदेव को कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।

अब मैं अपने परिवार जनों के प्रति कृतज्ञता निवेदित करना चाहूँगा जिन्होंने हर परिस्थितियों मेरा समर्थन किया, मेरा उत्साह वर्धन किया, मुझे पढ़ने के लिये जिम्मेदारी मुक्त रखा। आप लोगों ने हर प्रकार सुख-सुविधा से लेकर प्यार, स्नेह तक किसी भी तरह की कमी महसूस नहीं होने दिया। मैं आजीवन आप लोगों का ऋणी रहूँगा। मैं परम पिता परमेश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि आप लोगों का साथ, स्नेह हमेशा हमेशा के लिये ऐसे ही बना रहे।

अब मैं अपने अग्रज, अनुज और सहपाठी मित्रों के प्रति कृतज्ञता निवेदित करना चाहूँगा जिन्होंने प्रत्यक्षतः-अप्रत्यक्षतः शोधकार्य को पूर्ण करने में मेरा सहयोग किया, जिन्होंने परिश्रम करने के लिये बार-बार प्रोत्साहित किया, जिन्होंने हमेशा मेरा उत्साह वर्धन किया, जिन्होंने पढ़ाई के लिये अनुकूल वातावरण तैयार किया, जिन्होंने स्वस्थ्य प्रतियोगिता प्रदान किया। मैं परमेश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ आप लोगों का प्यार मेरे ऊपर सदा सदा के लिये ऐसे ही बना रहे।

आप सभी लोगों का बहुत-बहुत धन्यवाद!

महेन्द्र यादव

(वरिष्ठ शोध अध्येता)

Scanned by CamScanner

विषय प्रवेश

(i) प्रस्तावित शोधकार्य का क्षेत्र (Area of Research)

संचित ज्ञानराशि का नाम वेद है। वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग वेदान्त कहलाता है। **'वेदान्तोनाम उपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च।'**[1] अर्थात् ब्रह्मज्ञान रूपी प्रमा के लिये प्रमाण स्वरूपा उपनिषदें और उसके उपकरण शारीरक सूत्र (वेदान्तसूत्र या ब्रह्मसूत्र) आदि वेदान्त हैं। वेदान्त दर्शन के पाँच मुख्य सम्प्रदाय हैं- आचार्य शङ्कर का ब्रह्माद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, मध्व का द्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद और आचार्य वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद आदि। इन सम्प्रदायों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- पहला शाङ्करवेदान्त और दूसरा भक्तिवेदान्त। पहले सम्प्रदाय की गणना शाङ्करवेदान्त में तथा अन्तिम चार सम्प्रदायों की गणना भक्तिवेदान्त में की जाती है।

वेदान्तदर्शन का आधार प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र) है। वेदान्तदर्शन के भक्ति सम्बन्धी विचार या चिन्तन को संतों ने क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। इन संतों में रामानन्द, कबीरदास, नानक, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई और महाप्रभु चैतन्य प्रमुख स्थान रखते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में जिस भक्ति-भावना की नव प्रतिष्ठा की उसी की अविरल धारा पुराणों से होती हुयी संतों की वाणी में अभिव्यक्त हुई। भक्ति ने वेदान्त की अविरल धारा को सहज रूप में प्रस्तुत करके जन सामान्य को इसकी ओर आकर्षित किया है।

यह आन्दोलन जन सामान्य की भावनाओं का आन्दोलन था, यह आन्दोलन वेदान्त चिन्तन को विस्तार देने का आन्दोलन था। यह मुक्ति का आन्दोलन था, यह ऊँच-नीच, छूआ-छूत, भेदभाव, वाह्याडम्बर, अन्धविश्वास और रूढ़ियों की संकुचित विचारा धारा तथा विदेशी शासकों की पराधीनता से ऊपर उठने का आन्दोलन था। इस आन्दोलन ने विदेशी शासकों के अत्याचारों से हताश, निराश, जड एवं बिखरे हुये परतन्त्र भारतीय समाज को एकसूत्र में बाँधने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भक्ति ने लोगों को एक नयी दिशा दिया जहाँ भक्ति के स्तर पर संसार का प्रत्येक प्राणी एक समान है। भक्ति ने जिस भावना का सूत्रपात किया था उसने समाज-सुधार आन्दोलनों को बल दिया। यही भक्ति का सर्वोत्तम आदर्श है।

[1] वेदान्तसार पृ. सं. २५।

वेदान्त की भक्ति चिन्तन परम्परा का बीज वेदों के प्रकृति प्रेम एवं वैदिक ऋचाओं की स्तुति, प्रार्थना आदि में देखा जा सकता है। अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुये भक्ति के लम्बे इतिहास को हम तीन चरणों में बाँट सकते हैं- १. वैदिक भक्ति, २. औपनिषदिक भक्ति या उपासना और ३. भगवद्गीता की भक्ति। वेदों में आत्मरक्षा, द्रव्यप्राप्ति, पुण्यप्राप्ति और पाप से छुटकारा पाने के लिये इष्ट देवों की पूजा, प्रार्थना, आराधना और स्तुति हुई है। इस भक्ति का तात्त्विक विवेचन उपनिषदों में किया गया। जिसके फलस्वरूप उपनिषदों में उपासना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

सामान्यतः भगवान् के सतत् चिन्तन, ध्यान, स्मरण, भगवान् पर अनन्य विश्वास और तत्परायण भजन का नाम उपासना है।[1] आचार्य शङ्कर के मत में चित्त की एकाग्रता ही उपासना का स्वरूप है।[2] सदानन्द के अनुसार 'सगुण ब्रह्म विषयक मानसिक व्यापार (या ध्यान) उपासना है।'[3] आचार्य शङ्कर ने भक्ति को उपासना के अर्थ में माना है। उपासना में जब बुद्धितत्त्व का प्राधान्य हो तो ज्ञानमार्ग (निर्गुण या अव्यक्तोपासना) और जब हृदयतत्त्व का प्राधान्य हो तो भक्तिमार्ग (सगुण या व्यक्तोपासना) कहलाता है।

भगवत्सम्बन्धी जिस भावना को वेद में भक्ति कहा गया वह उपनिषदों में आकर उपासना कहलायी। भगवत्सम्बन्धी यह भावना अन्ततः गीता में जाकर भक्ति के रूप में पुनर्स्थापित हुई। वास्तव में देखा जाय तो वेद की भक्ति कुछ विशेष प्रयोजनों तक ही सीमित रही परन्तु उपनिषद्-काल में भक्ति के मानदण्डों में सकारात्मक परिवर्तन आया। तथापि वहाँ उपनिषद् के ज्ञानकाण्ड ने भक्ति को जकड़ लिया। अन्ततः भक्ति का पुनरुत्थान भगवद्गीता में आकर हुआ। गीता में जिस भक्ति-भावना का सूत्रपात श्रीकृष्ण ने किया था उसका व्यापक विस्तार पुराणों में देखा गया। श्रीकृष्ण भक्ति को उसके आदर्शों तक पहुँचाया।[4] निष्कर्षतः भक्ति अपने इतिहास के आरम्भ में जिस एकाङ्गी स्वरूप को धारण किये हुये मिलती है समय के साथ-साथ वह

---

[1] 'उप समीपे आस्यते- स्थीयते अनेन इत्युपासना।' (वेदान्तसार पृ. सं.- ५०)।

[2] 'उपासनं तु यथाशास्त्रसमर्थितं किञ्चिदालम्बनमुपादाय तस्मिन् समानचित्तवृत्तिसन्तानकरणं तद्विलक्षणप्रत्ययानन्तरितमिति।' (छान्दोग्योपनिषद्भाष्यभूमिका)। अर्थात् उपासना तो शास्त्र सम्मत किसी आलम्बन को ग्रहण कर उसमें, विजातीय प्रत्ययों के व्यवधान से रहित, सजातीय चित्तवृत्तियों को प्रवाहित करना है।

[3] 'उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाररूपाणि शाण्डिल्यविद्यादीनि॥' (वेदान्तसार पृ. सं.-१४)॥

[4] स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/३)॥

परिष्कृत, परिमार्जित एवं बहु-आयामी स्वरूप वाली होती चली गयी। इसका उदाहरण संतों की भक्ति परम्परा है।

श्रीमद्भगवद्गीता की भक्ति महाभारत कालीन है। गीता की भक्ति निष्काम कर्म पर आधारित थी। लोकरक्षा निष्काम कर्म वाली भक्ति का मूल था। लोकरक्षा के लिये ही भगवान् का अवतार हुआ।[1] वर्तमान भक्ति का स्वरूप गीता की भक्ति से स्पष्ट होता है। श्रीकृष्ण कहते हैं- 'भगवान् में मन (चित्त) वाला, भगवान् की भजन करने वाला, भगवान् का पूजन करने वाला और भगवान् को ही नमस्कार करने वाला होना भक्ति कहलाता है।'[2] भगवद्गीता के बारहवें अध्याय में भक्ति के दो प्रकार बताये गये हैं- निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति।[3]

सामान्य बोलचाल की भाषा में भक्ति का अर्थ भगवान् या अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के लिये किया गया श्रद्धेय अनुष्ठान (जैसे- पूजा, यज्ञ, होम, हवन, कर्मकाण्ड, दान, उपासना, तप और जप आदि) है। परन्तु शास्त्रीय अर्थों में 'हृदयतत्त्व के माध्यम से भगवान् का सान्निध्य प्राप्ति और साक्षात्कार करने का प्रयास भक्ति कहलाता है'। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो भक्ति मन का एक प्रवाह है अर्थात् किसी निश्चित विषय पर मन को केन्द्रित करना ही भक्ति है। भक्ति, भक्त और प्रभु के बीच का सम्बन्ध है।[4] आचार्य शङ्कर के अनुसार 'अपने स्वरूप के अनुसंधान को भक्ति कहते हैं।'[5] भक्ति मोक्ष प्राप्त करने का सरल एवं सरस साधन है।

भक्ति शब्द 'भज् सेवायाम्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। भज् धातु हिस्से करना, वितरित करना, आश्रय लेना, सेवा करना, समर्पण करना आदि अर्थों में प्रयुक्त होती है। क्तिन् प्रत्यय का प्रयोग करण, अधिकरण और भाव तीन अर्थों में होता है। करण अर्थ में करने पर

---

[1] यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/७)॥ श्रीमद्भगवद्गीता-(४/८)।

[2] 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥ 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥

[3] एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते। ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१२/१)॥

[4] मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।' (विवेकचूड़ामणि-३२)। श्रीमद्भागवत पुराण (४/२०/२१) और श्रीमद्भगवद्गीता (११/४८, ५३ और ५४) में भक्ति को भगवत्प्राप्ति का उपाय बताया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण (११/४/१) के अनुसार भक्ति ही भगवत्प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।

[5] स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते॥ (विवेकचूड़ामणि-३२)॥

क्तिन् प्रत्यय ईश्वर प्राप्ति की साधक क्रियाओं का वाचक होगा[1] अधिकरण अर्थ में करने पर अन्य सभी दशाओं की संज्ञा भक्ति होगी जिसमें भगवत्भजन किया जाता है।[2] भाव अर्थ में करने पर भक्ति शब्द 'भजनं भक्ति।' विग्रहानुसार प्रेमा भक्ति या साध्या भक्ति का वाचक होता है।

ईश्वर विषयक गहन श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, सेवा, समर्पण, नैरन्तर्य (अविरल धारा), निष्कामता, अनन्यता और शरणागति की भावना इत्यादि भक्ति की विशेषतायें हैं। भक्ति की उपरोक्त विशेषताओं का संकेत संतों और आचार्यों की कृतियों में किसी न किसी रूप में मिलता हैं। नारद के अनुसार भक्ति प्रेम स्वरूपा और अमृत स्वरूपा है। जिसे प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है।[3] शाण्डिल्य ने 'सा परानुरक्तिरीश्वरे।'[4] कहा।

गीता ने भक्ति के आरम्भिक स्वरूप में अनन्यभाव, श्रद्धा एवं ध्यान के नैरन्तर्य पर बल दिया है। रामानुज ने परमेश्वर के ध्यान पर बल दिया।[5] आचार्य वल्लभ ने आराध्य के प्रति भक्त के स्नेह, प्रेम और माधुर्य को भक्ति कहा।[6] मध्व की अमला भक्ति को भगवद्गीता (११/५४) में अनन्य भक्ति कहा गया है। आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र (४/१/१) के भाष्य में कहा है कि 'परमेश्वर की नित्य उत्कण्ठा युक्त स्मृति भक्ति है।'[7]

---

[1] 'करण व्युत्पत्या भक्ति शब्देन श्रवण-कीर्तनादि साधनमभिधीयते।' (मन्जुसिंह द्वारा रचित लघुशोध प्रबन्ध,भक्तिरस सिद्धान्त,दर्शन एवं अनुप्रयोग पृ.सं.२)।

[2] 'भजन्ति यस्यां दशायां सा भक्ति।' (मन्जुसिंह द्वारा रचित लघुशोध प्रबन्ध,भक्तिरस सिद्धान्त,दर्शन एवं अनुप्रयोग पृ.सं.२)।

[3] 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।' (नारदभक्तिसूत्र संख्या- २)। 'अमृतस्वरूपा च' (नारदभक्तिसूत्र संख्या- ३)॥ 'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति॥' (नारदभक्तिसूत्र संख्या- ४)॥

[4] 'अथातो भक्ति जिज्ञासा।' शाण्डिल्यभक्तिसूत्र संख्या-१)। 'सा परानुरक्तिरीश्वरे।'' (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र संख्या- २)। अर्थात् प्रभु में पराकाष्ठा की अनुरक्ति रखना ही भक्ति है।

[5] श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६५ और १२/२)।

[6] माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढं सर्वतोऽधिकः। स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा॥ (तत्त्वार्थदीप पृ. सं. ८०)॥ अर्थात् भक्ति का प्रमुख तत्त्व स्नेह है। भगवान् के माहात्म्य का ज्ञान होने पर भगवान् के प्रति जो सुदृढ़ एवं सर्वाधिक स्नेह उत्पन्न होता है वही भक्ति है।

[7] 'आवृतिरसदृद्धपदेशात्।' (ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य-४/१/१)। 'स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे। अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति॥' (भागवत-१/२/६)॥ अर्थात् भगवान् में हेतुरहित, निष्काम, एकनिष्ठायुक्त, अनवरत प्रेम का नाम भक्ति है। यही पुरुषों का परम धर्म है। इसी से आत्मा प्रसन्न होती है। 'द्रुतस्य भगवद्धर्मात् धारावाहिकतां गता। सर्वेशे मनसो वृत्तिः भक्तिरित्यभिधीयते॥' (भक्तिरसायन-१/३)॥ अथवा 'द्रुते चित्ते प्रविष्टा या गोविन्दाकारता स्थिरा। सा भक्तिरित्यभिहिता.....॥' (भक्तिरसायन-२/१)॥ अर्थात् द्रुतचित्त जब आनन्दपूर्ण भगवान् को ग्रहण कर लेता है, तब वह तद्रूप हो जाता है। इससे बढ़कर और क्या उपलब्धि होगी? श्रीमद्भागवत- (११/४/२४,२५ और २६) में भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

नारद ने भक्ति के दो भेद किया है- पराभक्ति और अपराभक्ति।[1] शाण्डिल्य के अनुसार भक्ति के दो भेद हैं- मुख्या और इतरा।[2] श्रीमद्भागवत में नवधा-भक्ति का वर्णन मिलता है।[3] भक्तिरसामृतसिन्धु के अनुसार भक्ति के दो भेद हैं- पराभक्ति और गौणीभक्ति 'या अपराभक्ति'। आचार्य वल्लभ ने भक्ति के दो मानते हैं- विहिता और अविहिता।[4]

भजन-क्रिया को भक्ति कहते हैं जिसका साध्य ईश्वर है तथा आश्रय जीव (भक्त) है। श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय और नारदभक्तिसूत्र में भक्त के गुणों की विस्तृत चर्चा की गयी है।[5] भगवद्गीता के अनुसार भक्त के चार भेद हैं- आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी भक्त।[6] भक्त।[6] कृष्ण ने ज्ञानी भक्त को चारों में श्रेष्ठ एवं अपनी आत्मा कहा है।

आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है- पराभक्ति और अपराभक्ति। निष्काम भावना युक्त, ज्ञान लक्षण वाली, अनन्य प्रेम वाली, अनन्य भक्ति को पराभक्ति कहते हैं।[7] सगुण भक्त की भक्ति को अपराभक्ति कहते हैं। यह भक्ति सकाम और रागात्मिका वृत्ति वाली है। अतः पराभक्ति को अपराभक्ति से श्रेष्ठ कहा जाता है। वस्तुतः पराभक्ति साध्य भक्ति है और अपराभक्ति साधन भक्ति है। भक्तिवेदान्त के आचार्यों ने अधिकांशतः सगुण भक्ति को ही पोषित किया है।

वेदान्त की भक्ति चिन्तन परम्परा ही सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुई। गीता ने भक्ति के दो भेद किये गये हैं- निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति।[8] फलतः मध्यकालीन भक्ति के दो रूप में देखने को मिलता है- पहला निर्गुण भक्ति और दूसरा सगुण भक्ति। निर्गुण भक्ति की चिन्तन परम्परा का आराध्य देव तात्त्विक दृष्टि से अनिर्वचनीय, परमतत्त्व, परमात्मा या ब्रह्म कहलाता। निर्गुण भक्ति विषयक चिन्तन कबीरदास, नानक, रैदास, दादू, दयाल आदि संतों की वाणी में देखा जा

---

[1] नारदभक्तिसूत्र।

[2] शाण्डिल्यभक्तिसूत्र- (१०)।

[3] श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (श्रीमद्भागत पुराण- ७/५/२३)॥ श्रीमद्भागवत पुराण में भक्त के दो भेद किये गये हैं- सगुण और निर्गुण भक्त। जिसमें सगुण भक्त के तीन भेद हैं- सात्त्विक, राजसी और तामसी।

[4] आचार्य वल्लभ ने भक्ति के दो मानते हैं- विहिता (पराभक्ति) और अविहिता (अपराभक्ति)। (ब्रह्मसूत्राणुभाष्य-३/३/३९)।

[5] श्रीमद्भगवद्गीता- (१२ वाँ अध्याय श्लोक १२ से २० तक)। और नारदभक्तिसूत्र- (१५,१६,१७ और १८)।

[6] चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतवर्षभ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/१६)॥

[7] 'एवम्भूतो ज्ञाननिष्ठो मद्भक्तिं मयि परमेश्वरे भक्तिं भजनं पराम् उत्तमां ज्ञानलक्षणां चतुर्थी लभते 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इति उक्तम्।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५४)।

[8] एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते। ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१२/१)॥

सकता है। सगुण भक्ति विषयक चिन्तन की अभिव्यक्ति सूरदास, मीराबाई और चैतन्य की वाणी में हुई। इन दोनों सिद्धान्तों का महासागर 'श्रीरामचरितमानस' है।

भक्ति-भावना ईश्वर के अस्तित्व पर आश्रित है। भक्त प्रभु की सत्ता में विश्वास रखता है। भक्त प्रतिक्षण ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करता है। प्रभु की सत्ता में विश्वास न रखने वाला घोर से घोर नास्तिक भी कष्ट, विघ्न और असफलाओं की विवश दशा में अपने से अधिक किसी शक्तिशाली किसी दैवी अस्तित्व की कल्पना करने लगता है। **'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति'**[1] इस नियम के अनुसार एकमात्र परम सत्ता स्वरूप प्रभु या देवों के देव परमेश्वर ही सत् है जिसे नारायण, परमात्मा, ओङ्कार, विष्णु, कृष्ण, परमेश्वर, वासुदेव और हरि इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। उस परम सत्ता को रामानुज ने विष्णु, नारायण और वासुदेव, मध्व ने राम और कृष्ण, निम्बार्क ने कृष्ण नाम से पुकारा है।

भगवान् के दो रूप मिलते हैं- निर्गुण और सगुण। निर्गुण, निर्विशेष एवं समस्त उपाधियों से रहित परब्रह्म परमात्मा को निर्गुण तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य, ज्ञान से युक्त एवं सत्त्वगुणरूप उपाधि वाले परमेश्वर को सगुण कहते हैं। यज्ञों में संकल्प के द्वारा आराध्य देव का आह्वान होता था। कालांतर में यहीं से अवतार की संकल्पना विकसित हुई। अवतारवाद के आ जाने से प्रतिमा पूजन का आना स्वाभाविक था।

शरणागति भक्ति विशेष है। शरणागति का अर्थ है- 'भगवान् के प्रति समर्पण'। भक्त अपने कल्याण के लिये भगवान् की शरण में जाता है। श्रीकृष्ण कहते हैं- **'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः'**[2] भक्तिवेदान्त के आचार्यों ने शरणागति शरणागति को भगवत्कृपा का साधन कहा है। भगवत्कृपा के बिना मुक्ति संभव नहीं है।[3] वैष्णव वैष्णव धर्म के आचार्यों ने शरणागति को छः भागों में विभाजित किया है- अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गोमृत्ववरण, रक्षा का विश्वास, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य।[4]

---

[1] ऋग्वेद- (१/१६४/४६)।

[2] श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६६)।

[3] नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते, तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥ (कठोपनिषद्-२/२३) और (मुण्डकोपनिषद्-२/३/२)॥

[4] 'अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोमृत्ववरणं तथा।' (२८)। 'आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥' (२९)॥ (अहिर्बुध्न्यसंहिता-३७/२८ और २९)॥

अब प्रश्न यह है कि भक्ति साध्य है या साधन? श्रद्दा, विश्वास, गुरु-शुश्रुषा, ओङ्कार जप, यज्ञ, हवन इत्यादि भक्ति के अङ्ग अनुष्ठानीय होने के कारण भक्ति के साधन कहे जाते हैं अर्थात् भक्ति अपने अङ्ग साधनों की साध्य है।[1] भक्ति का साध्य मुक्ति (मोक्ष या भगवत्-प्राप्ति) है। आचार्य शङ्कर ने मोक्ष के साधनों में भक्ति को सर्वश्रेष्ठ ठहराया है- **'मोक्षकारणसामाग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी'।**[2]

भक्तिवेदान्ती लोग भक्ति से पूर्व ज्ञानयोग और उससे भी पूर्व कर्मयोग की स्थिति मानते हैं। इस विचारधारा के अनुसार कर्म (या कर्मयोग) द्वारा व्यक्ति का हृदय शुद्ध होता है। जो उसे ज्ञानयोग की ओर ले जाता है। ज्ञानयोग से प्रकृति का अनुभव होता है अर्थात् इस अनुभव से जीव अपने आपको प्रकृति से पृथक् समझने लगता है। जीव का यह आत्मज्ञान ही जीव को भगवद्भक्ति की ओर आकर्षित करता है।

आस्तिक्य बुद्धि का नाम श्रद्धा है।[3] श्रद्धा भक्ति का मूल आधार है।[4] शङ्कराचार्य ने गुरु वचनों में विश्वास और शास्त्र में श्रद्धा रखना परम आवश्यक बताया है।[5] श्रद्धा का प्रथम स्थान माता, पिता और गुरु होते हैं। इसीलिये उपनिषद् एक तरफ **'मातृ देवो भव'**, **'पितृ देवो भव'** का उद्घोष करती है तो दूसरी तरफ गुरु में पराभक्ति की बात करती है।[6] वस्तुतः गुरु वचनों में विश्वास गुरु गुरु शुश्रुषा या गुरु भक्ति कहलाती है। गुरु और शरणागति को भगवत्कृपा का साधन है।

रामानन्द ने भक्ति का तेजी से प्रचार प्रसार किया। भक्ति को दक्षिण भारत से उत्तर भारत में लाने का काम रामानन्द ने किया। रामानन्द की देन है कि सम्पूर्ण भारत इससे सिञ्चित हो सका।

---

[1] श्रीमद्भागवत पुराण (३/२९/१५ से लेकर १९ तक) , नारदभक्तिसूत्र (३४ से ५० तक तथा ६१, ६२, ६३, ६४, ७४, ७६, ७८ और ७९), शाण्डिल्यभक्तिसूत्र (१८, २१, २६, ४५, ४९, ५९, ६४, ६५, ७४, ८३, ८५ और ९६) में भक्ति के अङ्गों का वर्णन किया गया है। भक्तिरसामृतसिन्धु (१/९) में उत्तम भक्ति के अङ्गों की चर्चा की गयी है।

[2] 'मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।' (विवेकचूडामणि-३२)। श्रीमद्भागवत पुराण (४/२०/२१) और श्रीमद्भगवद्गीता (११/४८, ५३ और ५४) में भक्ति को भगवत्प्राप्ति का उपाय बताया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण (११/४/१) के अनुसार भक्ति ही भगवत्प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।

[3] 'आस्तिक्यबुद्धिः श्रद्धा।' (छान्दोग्योपनिषद् शाङ्करभाष्य-७/९/१९)।

[4]'नैषा तर्केण मतिरापनेया।' (कठोपनिषद्-१/२/९)।

[5] शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यावधारणम्। सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते॥ (विवेकचूडामणि-२६)॥

[6] यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद्-६/२३)॥ अर्थात् जिन व्यक्तियों के हृदय में श्री भगवान् तथा गुरू में परम श्रद्धा होती है उनमें ज्ञान का सम्पूर्ण तात्पर्यार्थ स्वतः प्रकाशित हो जाता है।

महाराष्ट्र में नामदेव, ज्ञानेश्वर और तुकाराम, गुजरात में माळण, भीष्म और केशवहृदयराम, असम में शङ्करदेव और राम सरस्वती, बंगाल में महाप्रभु चैतन्य और चण्डीदास, उड़ीसा में जन्नाथदास और बलराम तथा उत्तर भारत में रामानन्द के बारह शिष्यों ने आन्दोलन को आगे बढाया। तमिल प्रान्त में कृष्ण भक्त अळवार और आचार्य अपनी भक्ति-भावना के लिये प्रसिद्ध थे।

उत्तर भारत में चल रहे धार्मिक आन्दोलनों में रामानन्द और आचार्य वल्लभ का विशेष योगदान था। रामानन्द के बारह शिष्य प्रसिद्ध थे। जिनमें कबीरदास और रविदास प्रमुख हैं। स्वामी रामानन्द के पश्चात् पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आचार्य वल्लभ हुये। जिन्होंने उस युग के आन्दोलन पर गहरी छाप छोड़ी। वल्लभ ने शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना किया। इनके पुत्र विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की स्थापना की। सूरदास का सम्बन्ध अष्टछाप से था।

रामानन्द सिद्धान्ततः रामानुज के अनुयायी थे फिर भी उन्होंने वैरागी या रामानन्दी सम्प्रदाय की नींव डाली। भक्ति के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय ने सबको एक धरातल पर खड़ा कर दिया।[1] रामानन्द के अनुसार तेल की धारा के समान राम का नित्य अनुराग सहित स्मरण ही भक्ति है। भक्ति के सात उपाय हैं- विवेक, विमोक, आभास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद और अनुद्धर्ष।[2] रामानन्द के मत में राम ही परमेश्वर हैं। अध्यात्मरामायण में राम को चिन्मय, अव्यक्त ब्रह्म का अवतार माना गया है।

रामानन्द ने पूजा सम्बन्धी अनुष्ठानों के स्थान पर भजन का प्रचार किया और संस्कृत के स्थान पर लोक भाषाओं की प्रतिष्ठा की। सीता और राम की भक्ति के प्रचार ने समाज को पवित्र मर्यादा मार्ग, कर्त्तव्य पालन तथा सदाचार का पुनीत संदेश भी दिया। वैरागी सम्प्रदाय के लोग सीता और राम तथा श्री वैष्णव सम्प्रदाय के लोग लक्ष्मी और नारायण को आराध्य मानते हैं। रामानन्द राम को ईश्वर, लक्ष्मण को जीव और सीता को प्रकृति की भी संज्ञा देते हैं। रामानन्द का यह अभियान हिन्दुत्व की रक्षा के लिये अमोघ वरदान सिद्ध हुआ। रामानन्द की भक्ति धारा द्विमुखी हो गयी- १. निर्गुण और २. सगुण। निर्गुण के प्रतिनिधि कवि कबीरदास तथा सगुण के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास थे।

---

[1] 'जाति पांति पूछै नहिं कोई। हरि कों भजै सो हरि कौ होई।' यह अर्द्धाली इस पर प्रकाश डालती है।

[2] सा तैलधारासमनित्यसंस्मृतिः सन्तानरूपेशि परानुरक्तिः।
भक्तिर्विवेकादिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्ट सुबोधकाङ्गा॥ (वैष्णवमताब्जभास्कर-६५)॥

आचार्य वल्लभ का सिद्धान्तपक्ष शुद्धाद्वैत तथा आचारपक्ष पुष्टिमार्ग कहलाता है। पुष्टिमार्ग को सेवामार्ग भी कहते हैं। पुष्टि का लक्षण है- 'पोषणं तदनुग्रहः' पुष्टि-पोषण अर्थात् भगवान् का अनुग्रह है। पुष्टिमार्ग में प्रभुसेवा को महत्ता दी जाती है। निस्साधन भक्तों के लिये यह उच्चतम एवं सरलतम मार्ग है। इसलिये भक्ति को सरस भक्ति भी कहते हैं। पुष्टि भक्ति का सम्बन्ध हरिलीला से है। हरिलीला का अङ्ग रासलीला है। रासलीला में परम पुरुष अपनी शक्तियों के साथ क्रीडा करते हैं। वृन्दावन इसके लिये उपयुक्त स्थान है।

इनके मत में श्रीकृष्ण ही एकमात्र शरण स्थल हैं। हरिलीला गोलोक में सदैव होती रहती है। यह गोलोक श्रीकृष्ण भगवान् के बाल्यकाल की लीलाओं से विशेषतः सम्बद्ध है। यहाँ भगवान् का लीलारूप ही काम करता है। हरिलीला में भाग लेना ही पुष्टिमार्गीय भक्त के जीवन का चरम आदर्श था। इसी सेवा कार्य से भगवत्कृपा प्राप्त होती थी। मुक्ति भी इसके आगे तुच्छ मानी जाती थी।[1] रामानन्द की तरह वल्लभ ने भी भक्ति को सबके लिये समान रूप से खोल दिया।

कबीरदास ने राम नाम की दीक्षा लिया। स्वामी रामानन्द से दीक्षा लेकर कबीर ने प्रारम्भ में योग-साधना किया परन्तु बाद में उन्होंने योग-साधना को छोड़ दिया और सहज-मार्ग के प्रशंसक बन गये। वस्तुतः कबीरदास में एक समाज सुधारक के गुण मिलते हैं जैसे- एक तरफ तो कबीरदास भक्ति के वाह्य प्रदर्शन, पाखण्ड, वाह्य-आडम्बर, मूर्तिपूजा आदि की निन्दा करते हैं तो दूसरी तरफ भगवद्भक्ति, आडम्बर-विहीन सदाचारपूर्ण जीवन तथा कथनी-करनी की एकता पर बल देते हैं। इसलिये कबीरदास वाह्य-आडम्बर विहीन भावभक्ति (प्रेमाभक्ति) को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं।[2]

कबीरदास की रचनाओं में स्पष्ट रूप से अद्वैतवाद का समर्थन दिखायी देता है।[3] कबीर ने अपनी काव्य रचनाओं में उपनिषद् व अद्वैतवेदान्त की शब्दावलियों का यथावत प्रयोग भी किया है। वे

---

[1] ब्रह्मसूत्रवल्लभभाष्य- (३/४/४७)।

[2] जिहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहीं राम। ते नर इस संसार में, उपजि भये बेकाम॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ६, सुमिरण कौ अंग दोहा संख्या १७)॥

आचार्य शङ्कर प्रेम द्वारा प्रभु में आसक्त मन का निर्मल होना लिखते हैं- 'त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम्।' (आनन्दलहरी-१२)।

[3] पाणी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ। जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ॥ (कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ संख्या , परचा कौ अंग १७)॥

जे वो एकै जाणियाँ, तौ जाँण्याँ सब जाँण। जे ओ एक न जाँणियाँ, तौ सब ही जाँण अजाँण॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १९, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग दोहा संख्या ८)॥

नेति-नेति का आलम्बन लेते हैं, माया को महाठगिन और मन को माया का पाश कहते हैं।[1] उनके मत में प्रभु हैं, ज्ञानरूप, आनन्दस्वरूप हैं।

कबीर मन-वचन-कर्म से भगवान् का सतत् स्मरण एवं भजन करते हैं- **'भगति भजन हरिनांव है, दूजा दुक्ख अपार। मनसा बाचा क्रमना कबीर सुमिरण सार।'**[2] कबीरदास को भगवद्भजन में सुख मिलता है। कबीर के अनुसार भक्ति से मुक्ति मिलती है- **'चरन कंवल चित लाइये, रांम नांम गुण गाइ। कहे कबीर संसा नहीं, भगति मुकति गति पाइ रे।'**[3]

कबीर को भगवान् का राम नाम अत्यन्त प्रिय है। कबीरदास ने राम के लिये ओ३म्, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, पुरुषोत्तम, विष्णु इत्यादि नामों का प्रयोग किया हैं। कबीर के आराध्य देव अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, अविनाशी आदि गुणों वाले हैं। कबीर ने मोक्ष को परमपद, अभयपद, चतुर्थधाम, परमधाम, शून्य, निर्वाण इत्यादि नाम दिया है।[4]

कबीरदास के अनुसार भगवान् की महिमा अनन्त है। लीला अनिर्वचनीय है। वह अजस्र तेज के पुञ्ज हैं। कबीर ने भक्ति के अङ्गों जैसे- गुरुकृपा, भगवत्कृपा, शरणागति आदि को बहुत महत्त्व दिया है।[5] कबीर ने भक्त की जो-जो विशेषतायें बतायी है वे सभी भगवद्गीता से उद्धृत की गयी है।

सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का गायन करने में निमग्न रहते हैं। 'सूरसागर' मुख्य रूप से लीला-गान का संग्रह है। आचार्य वल्लभ की कृपा से सूरदास को लीला का साक्षात् दर्शन हुआ था। हरि ने लीला का विस्तार भक्त को भवसागर से पार लगाने के लिये किया है।[6] जो भक्त नहीं

---

[1] कबीर मन पंछी भया, बहुतक चढ्या अकास। उहाँ ही तैं गिरि पड्या, मन माया के पास॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या , मन कौ अंग, दोहा संख्या २५)॥

[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ५, सुमिरण कौ अंग दोहा संख्या ४।

[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८९, पद संख्या ५।

[4] कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु विचारी॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३७, पद संख्या १५२)॥

[5] जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आई॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २, गुरुदेव कौ अंग दोहा संख्या १३)॥

कहत कबीर गुरु ब्रह्म दिखाया। मरता जरता नजरि न आया॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०२, पद संख्या ४२)॥

[6] 'सत्यभक्तहिं तारिबे कौ लीला विस्तारी।' (डॉ. मुंशीराम शर्मा द्वारा लिखित 'भक्ति का विकास' के पृष्ठ सं. ५६१ पर, पद संख्या १७६)।

है वह मारा जाता है। महात्मा सूरदास भक्ति को परिभाषित करते हुये कहते हैं कि **'मन को सब ओर से हटाकर भगवान् में लगा देना ही भक्ति है।**[1]

महात्मा सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का गायन किया करते थे। सूरदास ने अपनी काव्य रचनाओं में भगवान् श्रीकृष्ण के अनेक नामों का प्रयोग किया है जैसे- हरि, वासुदेव, प्रभु, स्वामी, मुरारी, कृष्ण इत्यादि। सूरदास के आराध्य की माया अनिर्वचनीय है। वह कभी निर्गुण रूप धारण कर लेते हैं तो कभी सगुण रूप धारण कर लेते हैं- **'जाकी माया लखै न कोई। निर्गुन सगुन धरै वपु सोई॥'**[2]

सूरदास ने राधा और कृष्ण की तुलना प्रकृति-पुरुष से किया है। सूरदास भगवान् के परमधाम को वृन्दावन, अभयपद, वैकुण्ठ, इत्यादि नामों से पुकारते हैं। सूरदास ने वृन्दावन को जो महत्त्व दिया वह गोकुल को नहीं दिया। सूरदास के अनुसार भगवान् और भक्त दोनों एक दूसरे से अलग नहीं हैं। भगवान् के दरबार में जाति-पाँति का भेदभाव नहीं चलता है।

सूरदास ने अपनी काव्य रचनाओं में शरणागति, भगवत्कृपा, गुरुकृपा, प्रेमाभक्ति, सत्सङ्ग आदि का गुणगान किया है। सूरदास ने भक्ति के अङ्ग साधनों के अनुष्ठान पर बल दिया है। सूरदास ने नाम महिमा, भगवत श्रवण, कामनाओं का त्याग, कथनी और कथनी में एकता, ज्ञान, कर्म की पवित्रता आदि के महत्त्व को बताया हैं।[3]

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा

यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।

यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां

वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥[4]

---

[1] डॉ. मुंशीराम शर्मा द्वारा लिखित 'भक्ति का विकास' के पृष्ठ संख्या ५६२ पर, पदसंख्या ३७२ और ३७३।

[2] डॉ. मुंशीराम शर्मा द्वारा लिखित 'भक्ति का विकास' के पृष्ठ संख्या ५५१ पर, पद संख्या- ६२१।

[3] प्रीति वश देवकी गर्भ लीन्हों वास, प्रीति के हेतु व्रज भेष कीन्हों। प्रीति के हेतु कियो यशुमति पयपान, प्रीति के हेतु अवतार लीन्हों॥ सूरसागर (ना.प्र.स. २६३६)॥

[4] रामचरितमानस बालकाण्ड श्लोक संख्या ६।

अर्थात् जिसकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्राह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य-जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण कमल ही भवसागर से तरने की इच्छा वालों के लिये एकमात्र नौका हैं,उन समस्त कारणों से पर (सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहलाने वाले भगवान् हरि की मैं वन्दना करता हूँ।

रामचरितमानस की उपरोक्त पंक्तियों में अद्वैत वेदान्त की पद्धति का अनुशरण किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास राम की अनन्यभक्ति के आकांक्षी हैं। तुलसीदास के गुरु नरहरिदास थे। नरहरिदास रामानन्दीय महात्मा थे। तुलसीदास की दो प्रमुख रचनायें हैं- रामचरितमानस और विनयपत्रिका, इनकी सहायता से रामभक्ति का निरूपण आसानी से किया जा सकता है।

प्रभु के नाम अनेक हैं पर उनकी रुचि रामनाम की ओर है।[1] तुलसी के लिये माता, पिता, गुरु सब कुछ राम ही हैं। उन्हें राम का सगुण-साकार कोशललेश रूप पसंद है- **'कोउ ब्रह्म निरगुन ध्याव, अव्यक्त जेहि श्रुति गाव। मोंहि भाव कोशल मूप, श्रीराम सगुन स्वरूप'।[2]**

वे राम को निर्गुण-सगुण तथा निराकार-साकार दोनों रूप प्रदान करते हैं। निर्गुण-निराकार रूप में चिदाघन स्वरूप वाले और सगुण-साकार में नरदेहधारी दशरथ पुत्र राम हैं। वस्तुतः तुलसी निर्गुण-निराकार को लीला में सगुण-साकार बना देते हैं।

तुलसीदास के अनुसार सृष्टि की रचना लीला का एक भाग है- **'सम्भु बिरञ्चि बिस्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना'।[3]** लीला का उद्देश्य दुष्टों का दमन और सज्जनों की रक्षा करना है।[4] लीला के लिये भगवान् अवतार लेते हैं। वे देव-रक्षा, भक्त-हित, भूमि-भार हरण और वर्णाश्रम मर्यादा की स्थापना करते हैं।[5] तुलसीदास ने राम के मर्यादा और प्रशान्त स्वरूप को अपने काव्य में दिखाया। इसीलिये तुलसीदास को लोकधर्म का प्रतिष्ठाता कहा जाता है।

---

[1] जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका।

राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिक॥

(रामचरितमानस अरण्यकाण्ड-७४)॥

[2] कोउ ब्रह्म निरगुन ध्याव, अव्यक्त जेहि श्रुति गाव।

मोंहि भाव कोशल मूप, श्रीराम सगुन स्वरूप। (रामचरितमानस लंकाकाण्ड-१३९)।

[3] सम्भु बिरञ्चि बिस्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥ (रामचरितमानस बालकाण्ड-१७२)॥ प्रभु के अंशों से अनेका ब्रह्मा, विष्णु और शिव उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के द्वारा भगवान् सृष्टि की रचना, पालन और संहार कराते हैं।

[4] जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥

करहिं अनीति जाहिं नहीं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।

तब तब धरि प्रभु बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

(रामचरितमानस बालकाण्ड-१४८)॥

[5] (विनयपत्रिका-२४८) और (रामचरितमानस १४८)।

तुलसीदास राम को ब्रह्म की संज्ञा देते हैं।[1] तुलसी की सम्मति में द्वैत-बुद्धि अज्ञान का परिणाम है।[2] वेदों के समान तुलसी भी मोक्ष को परमपद कहते हैं।[3] वे उपनिषदों की शब्दावलियों का प्रयोग राम के लिये करते हैं। तुलसीदास कहते हैं- **'नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा'।[4]**

तुलसी के अनुसार प्रभुकृपा से ही आत्मज्ञान और फिर अद्वैत स्थिति सम्भव होती है।[5] वे सत्सङ्ग, श्रद्धा, गुरुकृपा, भगवत्कृपा और शरणागति पर जोर देते हैं। उनके अनुसार परमतत्त्व मन, वाणी और बुद्धि से अतर्क्य है।[6] गुरु की प्राप्ति भी भगवत्कृपा से होती है।

तुलसी नवधाभक्ति के लिये प्रसिद्ध हैं।[7] इसके अतिरिक्त उन्होंने भक्ति के दो भेद किये- १.भेदभक्ति और २.अभेदभक्ति।[8] तुलसीदास ने भक्त के गुणों को भी बताया है। भगवद्गीता

---

[1] राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्वरहित सब उर पुर बासी॥ (रामचरितमानस बालकाण्ड-१४४)॥

[2] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड १८६।

[3] (रामचरितमानस बालकाण्ड-२३७) और (रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड-१४०)।

[4] नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा॥ (रामचरितमानस बालकाण्ड-१७२)॥

सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। (रामचरितमानस उत्तरकाण्ड-१०४)॥

राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।

अविगत अलख अपार, नेति-नेति नित निगम कह॥ (रामचरितमानस बालकाण्ड-१४८)॥

[5] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १२८।

[6] रामचरितमानस बालकाण्ड १४८।

[7] रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड (६३ और ६४) में राम शबरी से नवधा भक्ति के विषय के विषय के विषय में कहते हैं-

१. संतों का संसर्ग

२. हरि कथा में अनुराग

३. गुरु सेवा

४. हरिगुणगान

५. दृढ़ विश्वास पूर्वक राम नाम का जप

६. संसार को राममय देखना और संतों को राम से अधिक समझना

७. जो कुछ मिले उसी में संतोष करना परदोष दर्शन से पृथक् रहना

८. सज्जनों के धर्म में निरन्तर निरत रहना अर्थात् दम, शील और विविध प्रकार के कर्मों से वैराग्य

९. निष्कपट होकर सबसे सरल व्यवहार करना और राम के भरोसे रहकर हृदय में हर्ष तथा दैन्य अनुभव न करना।

[8] (रामचरितमानस अरण्यकाण्ड-१२) और (रामचरितमानस लंकाकाण्ड-१३८)।

(७/१६) के समान वे भी भक्तों के चार भेद करते हैं- १.आर्त, २.अर्थार्थी, ३.जिज्ञासु और ४.ज्ञानी।

उन्होंने भगवद्गीता के समान श्रद्धा के भी तीन भेद बताया है। तुलसीदास श्रीमद्भगवद्गीता (१७वाँ अध्याय) की दैवीसम्पदा को विद्या और आसुरीसम्पदा को अविद्या कहते हैं।[1] इनको सत्संग के माध्यम से समझा जा सकता है। विद्या भवसागर से पार करने वाली है तो अविद्या आबद्ध करने वाली है।

(ii) विषय चयन का औचित्य (Justification of Topic)

सांसारिक प्राणी मानव के लिये कुछ लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। जिनकी प्राप्ति के लिये वह सतत प्रयत्नशील रहता है। उसे पुरुषार्थ की संज्ञा दी जाती है। पुरुषार्थों की संख्या चार है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष को परम पुरुषार्थ भी कहते हैं। यह मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। मोक्ष प्राप्त करने के बाद व्यक्ति संसार के आवागमन से छुटकारा पा जाता है। शास्त्रों में मोक्ष प्राप्त करने के लिये अनेक मार्ग बताये गये हैं। वेदान्तदर्शन भक्तिमार्ग को मुक्ति का सबसे सरल एवं सरस साधन मानता है।

वेदान्तदर्शन की भक्ति चिन्तन परम्परा वर्तमान समय तक एक अविरल धारा के रूप में चलती आ रही है। तथाकथित कुछ नवीन विचारक सन्त कवियों की भक्ति को एक नवीन प्रारम्भ कहते हैं। वे इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं कि इन कवियों की भक्ति वेदान्त के भक्ति चिन्तन परम्परा की अविरलधारा का एक अभिन्न अङ्ग है। ऐसा लगता है कि उन लोगों को परम्परा का ज्ञान ही नहीं है या वे लोग किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर इस प्रकार की बात कहते हैं। जबकि भारतीय परम्परा में ज्ञान की धारा पारम्परिक रूप से चलती रहती है लोग अपनी-अपनी दृष्टि से केवल उसकी व्याख्या करते रहते हैं। इस समस्या ने शोधार्थी का ध्यान आकर्षित किया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- 'भक्ति आन्दोलन भारतीय चिन्तन और धर्म चेतना की स्वाभाविक परिणति थी।' जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भक्ति आन्दोलन को विदेशी आक्रमण की प्रतिक्रिया मानते हैं। ग्रियर्सन ने भक्ति आन्दोलन को बाहरी प्रभाव से प्रारम्भ हुआ माना है। वस्तुतः भक्ति आन्दोलन के लिये परिस्थितियाँ और परम्परायें दोनों उत्तरदायी थी।[2]

---

[1] रामचरितमानस अरण्यकाण्ड में दैवीम्पदा की विद्या से और आसुरी सम्पदा की अविद्या से तुलना की गयी है।

[2] त्रिपाठी, ज्ञानेन्द्र राम, आचार्य शुक्ल के भक्ति विवेचन का सामाजिक दृष्टिकोण, लघु शोध-प्रबन्ध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, भारतीय भाषा केन्द्र, १९९९।

वेदान्त की भक्ति का कौन-कौन सा रूप किस तरह से इन भक्त कवियों में विद्यमान है या नहीं। इन सबका विश्लेषण करके शोधार्थी सच्चाई को सामने लाने का प्रयास करेगा। अतः शोधार्थी की दृष्टि में प्रस्तावित शोध-विषय पर पर शोधकार्य का होना उचित प्रतीत होता है।

(iii) शोधकार्य का उद्देश्य (Achievements of Objectives)

शोध की सीमित समयावधि को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा प्रस्तावित इस शोध विषय के जो उद्देश्य बनाये गये हैं उनको हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत दिखा सकते हैं-

- वेदान्त के ज्ञान परम्परा की निरन्तरता का पता लगाना।
- वेदान्त के ज्ञान की बात क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से आम लोगों में किस प्रकार से पहुँचायी गयी?
- वैदिक संस्कृत में निबद्ध ज्ञान लौकिक संस्कृत में किस प्रकार से आया और लौकिक संस्कृत में निबद्ध ज्ञान क्षेत्रीय भाषा में किस प्रकार से आया?
- युवा वर्ग के इस संदेह को दूर करना कि भक्ति आन्दोलन कोई नवीन प्रारम्भ नहीं है बल्कि यह वेदान्त के भक्ति चिन्तन परम्परा की एक अविरल धारा है।
- इस बात का पता लगाना कि भक्त कवियों ने वेदान्त की पारिभाषिक शब्दावालियों का प्रयोग किस रूप में किया है?
- गुरु से प्राप्त गूढ़ ज्ञान को कवियों ने यथावत आम लोगों तक कैसे पहुँचाया?
- भक्ति के वास्तविक स्वरूप को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना।
- आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भक्ति की उपादेयता को सिद्ध करना भी उद्देश्य है।
- ऐतिहासिक दृष्टि से भावी शोध सामाग्री उपलब्ध कराना भी शोधार्थी का उद्देश्य है।

(iv) प्रस्तुत क्षेत्र में विद्यमान पूर्ववर्ती शोधकार्य (Existing Research in this Area)

- अत्री, मधु, शङ्कराचार्य प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, संस्कृत विभाग, १९९९ ई.।

इस शोध-प्रबन्ध में भक्ति की विशेषता, स्वरूप, उत्पत्ति, परिभाषा और उसके विकास के बारे में बताया गया है। इसके साथ ही वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, और शङ्कराचार्य के ग्रन्थों में भक्ति के प्रथम निदर्शन का क्रमशः निरूपण किया गया है। शङ्कराचार्य का व्यक्तित्व, कृतित्व, दर्शन और भक्ति दर्शन का भी उल्लेख किया गया है। शङ्कराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य,

निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, मधुसूदन सरस्वती और स्वामी करपत्री जी महराज के भक्ति तत्त्व स्वरूप विषयक चिन्तन को क्रमशः उद्धृत करते हुये भक्ति की आचार्य परम्परा को दिखाया गया है। शङ्कराचार्य के अनुसार भक्ति का स्वरूप, परिभाषा, भक्ति के विभिन्न चरण एवं निर्गुण और सगुण भक्ति को स्पष्ट करने के साथ-साथ शङ्कराचार्य द्वारा रचित ग्रन्थों एवं भाष्यों में प्राप्त भक्ति तत्त्व का विवेचन किया गया है।

- शर्मा, किरण, भक्ति वेदान्त, लघु शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, संस्कृत विभाग, १९८३ ई.।

इस लघु शोध-प्रबन्ध में भक्ति के उद्भव, विकास और परिभाषा का बताया है। विकास के क्रम को वैदिक साहित्य काल से प्रारम्भ करके दिखाया गया है। इसके बाद आचार्य रामानुज, आचार्य मध्व भट्ट, आचार्य निम्बार्क और आचार्य वल्लभ आदि भक्तिवेदान्तियों के भक्ति विषयक मत को क्रमशः उद्धृत किया गया है। इस लघु शोध-प्रबन्ध में विभिन्न आधारों पर भक्ति का भेद किया गया है। जिससे शोधार्थी विशेष रूप से लाभान्वित हो सका।

- विलियम्स, टायलर वाँकार, भक्ति काव्य में निर्गुण-सगुण विभाजन का ऐतिहासिक अध्ययन, लघु शोध-प्रबन्ध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, भाषा-साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, भारतीय भाषा केन्द्र, २००७ ई.।

इस लघु शोध-प्रबन्ध में तीन अध्याय हैं। इस शोधकार्य में शोधार्थी ने निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया है- १. सम्प्रदाय और संवेदना का संबंध: निर्गुण-सगुण के आइने में भक्ति कविता। २. पंथ निर्माण की प्रक्रिया और हस्तलिखित ग्रन्थों में निर्गुण-सगुण विभाजन। ३. मध्यकालीन भक्ति सम्प्रदायों के टकरावों का भौतिक आधार।

(v) विद्यमान शोधकार्यों से प्रस्तावित शोधकार्य का वैशिष्ट्य (In What way is this Research going to be Different from Existing Work in this Area)

पूर्ववर्ती शोधकार्यों के सर्वेक्षण से शोधार्थी की दृष्टि में ऐसा कोई भी शोध कार्य नहीं आया जो 'वेदान्त का भक्ति विमर्श एवं मध्यकालीन भक्तिकाव्यों में उसकी अभिव्यक्ति (भक्तकवि कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं के विशेष सन्दर्भ में)' इस शोध विषय का स्वतन्त्र रूप से आकलन करता हो। पूर्ववर्ती शोधकार्यों में केवल शङ्कराचार्य, रामानुज, मध्व, निम्बार्क और वल्लभ की भक्ति विषयक दृष्टिकोण तथा कबीरदास, सूरदास एवं तुलसीदास की

भक्ति और भक्ति आन्दोलन का अलग-अलग विवेचन किया गया है। जिससे वेदान्त के भक्ति तत्त्व के विषय में आवश्यक जानकारी तो अवश्य मिलती है परन्तु प्रस्तुत शोधकार्य से साक्षात् सम्बन्ध नहीं है अर्थात् प्रस्तुत शोध विषय पर स्वतन्त्र रूप से अद्यतन शोधकार्य अप्राप्त है।

अतः 'वेदान्त का भक्ति विमर्श एवं मध्यकालीन भक्तिकाव्यों में उसकी अभिव्यक्ति (भक्तकवि कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं के विशेष सन्दर्भ में)' यह शोध विषय पूर्व में प्राप्त शोध-ग्रन्थों व शोध-पत्रों से भिन्न होने से एक नवीन शोध विषय है और शोधकार्य के क्षेत्र में एक स्वतन्त्र प्रयास है।

(vi) शोध प्रविधि (Research Method)

विश्लेषणात्मक शोध-प्रविधि द्वारा शोधार्थी प्रस्तावित शोध-प्रबन्ध को अध्याय, बिन्दुओं और उप-बिन्दुओं में विभाजित कर अध्ययन करेगा। जिससे प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्य की पूर्ति की जा सके।

वेदान्तदर्शन, कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास के अनुसार भक्ति तत्त्व का परिचय देने के क्रम में विवरणात्मक एवं विवेचनात्मक शोध-प्रविधि का उपयोग किया जायेगा।

तुलनात्मक शोध-प्रविधि द्वारा शोधार्थी यह सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा कि वेदान्तदर्शन की भक्ति के कौन-कौन से अङ्ग भक्त कवियों में किस तरह से विद्यमान हैं या नहीं। जिससे इस सच्चाई को समाज के सम्मुख रखने में सफलता पाया जा सके कि वेदान्त चिन्तन की अविरल धारा सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुई।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वेदान्तदर्शन की भक्ति चिन्तन और उसकी उपादेयता को समझाने एवं उसकी समीक्षा हेतु समीक्षात्मक शोध-प्रविधि का प्रयोग किया जायेगा।

(vii) शोध शीर्षक की सार्थकता

वेदान्त

वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग को वेदान्त कहते हैं अर्थात् उपनिषदें वेदान्त का पर्याय हैं। 'वेदान्तोनाम उपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च' इस न्याय के अनुसार प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र) को वेदान्त की संज्ञा दी जाती है। वेदान्त दर्शन के ग्यारह सम्प्रदाय हैं।

भक्ति विमर्श

भक्ति सम्बन्धी चिन्तन या विचार को भक्ति विमर्श कहते हैं। **'भज् सेवायां'** धातु से निष्पन्न 'भक्ति' शब्द का अर्थ 'सेवा करना' है। दार्शनिक अर्थों में भक्ति मुक्ति प्राप्त करने का साधन है। जिसे आचार्यों ने अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से परिभाषित किया है।

मध्यकालीन भक्तिकाव्य

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल को भक्तिकाल कहते हैं। भक्तिकाल की काव्य रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय भक्तितत्त्व है। मध्यकालीन भक्ति की दो धारायें हैं- निर्गुणभक्ति और सगुणभक्ति। निर्गुणभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास हैं। सगुणभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास तथा सूरदास हैं।

कबीरदास

कबीरदास की रचनाओं का प्रामाणिक संकलन 'कबीरग्रन्थावली' है। कबीरदास निर्गुण ज्ञानमार्गी सन्त हैं। वे ज्ञान को महत्त्व देते हैं लेकिन भक्ति उनके जीवन का प्राणतत्त्व है। कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। राम को ब्रह्म की संज्ञा देते हैं। कबीरदास निर्गुण भक्ति के पोषक थे। वेदान्त का निर्गुण भक्ति सम्बन्धी चिन्तन कबीर की रचनाओं में अभिव्यक्त हुई।

सूरदास

सूरदास की तीन मुख्य रचनायें हैं- सूरसागर, सूरसारावली और साहित्यलहरी। सूरदास सगुण ब्रह्म के उपासक थे। कृष्ण को ब्रह्म की संज्ञा देते हैं। सूरदास सगुणभक्ति के पोषक थे। सूरदास की भक्ति-भावना का मेरूदण्ड पुष्टिमार्गीय भक्ति है। पुष्टिमार्ग का सम्बन्ध वल्लभ वेदान्त की परम्परा से है। सूरदास की भक्ति-भावना सख्य भाव वाली थी।

तुलसीदास

तुलसीदास की दो मुख्य रचनायें हैं- रामचरितमानस और विनयपत्रिका। तुलसीदास सगुण ब्रह्म के उपासक थे। वे राम को ब्रह्म की संज्ञा देते हैं। उनके उपास्य दशरथ पुत्र राम या अवतारी राम हैं। तुलसीदास की भक्ति-भावना दास्य भाव वाली थी। तुलसीदास नवधा भक्ति के लिये प्रसिद्ध हैं। तुलसीदास अद्वैत वेदान्त की पद्धति का अनुसरण करते हैं।

उपसंहार

भारतीय परम्परा में ज्ञान की धारा पारम्परिक रूप से चलती रहती है लोग अपनी-अपनी दृष्टि से केवल उसकी व्याख्या करते रहते हैं। भक्तकवियों की भक्ति-भावना वेदान्त के भक्ति चिन्तन परम्परा की अविरलधारा का एक अभिन्न अङ्ग है।

वेदान्त का भक्ति सम्बन्धी चिन्तन भक्तकवियों की वाणी में अभिव्यक्त हुई। उन्होंने वेदान्त के चिन्तन को क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया।

विषय सूची

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
•	Declaration	
•	Certificate	
•	समर्पण	
•	कृतज्ञतानिवेदन	
•	**विषय प्रवेश**	**i**
	(i) प्रस्तावित शोधकार्य का क्षेत्र, (ii) विषय चयन का औचित्य, (iii) शोधकार्य का उद्देश्य, (iv) प्रस्तुत क्षेत्र में विद्यमान पूर्ववर्ती शोधकार्य, (v) विद्यमान शोधकार्यों से प्रस्तावित शोधकार्य का वैशिष्ट्य, (vi) शोध प्रविधि, (vii) शोध शीर्षक की सार्थकता	
•	**विषय सूची**	**xx**
प्रथम अध्याय:	**वेदान्त दर्शन में भक्ति विमर्श**	**1-49**
1.1	वेदान्त दर्शन	2
1.2	मुक्ति का मार्ग/मोक्ष का साधन	4
1.3	भक्ति	6
1.3.1	भक्ति शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ	7
1.3.2	भक्ति का स्वरूप	8
1.3.3	शरणागति	13
1.3.4	उपासना	16
1.3.5	भक्ति: मुक्ति का सर्वोत्तम मार्ग	19
1.4	भक्ति के भेद	21
1.4.1	विभिन्न आचार्यों के मत	22
1.4.2	पराभक्ति और अपराभक्ति	24
1.4.3	नवधा भक्ति	30

1.4.4	एकादश आसक्तियाँ	34
1.4.5	भक्ति साध्य है या साधन?	34
	(i) श्रद्धा (ii) गुरुशुश्रुषा (iii) ओङ्कारजप	
1.4.6	शाङ्कर वेदान्त और भक्ति वेदान्त में अन्तर	39
1.5	भक्त	40
1.6	ईश्वर	43
द्वितीय अध्याय:	**कबीरदास की रचनायें एवं वेदान्त का निर्गुण भक्ति विमर्श**	**50-96**
2.1	वेदान्त का निर्गुण भक्ति विमर्श	50
2.1.1	आचार्य शङ्कर	55
2.1.2	आचार्य शङ्कर का जीवन परिचय	56
2.1.3	आचार्य शङ्कर का दार्शनिक सिद्धान्त	57
2.1.4	आचार्य शङ्कर का भक्ति दर्शन	58
2.2	कबीरदास	63
2.2.1	कबीरदास का जीवन परिचय	64
2.2.2	कबीरदास की रचनायें	67
2.2.3	कबीरदास की काव्यभाषा	68
2.2.4	सन्तों का भक्ति साहित्य	69
2.3	कबीरदास की रचनाओं में भक्तितत्त्व	70
2.3.1	कबीरदास: भक्ति-भावना की विशेषतायें	71
2.3.2	भक्ति	73
2.3.3	शरणागति	80
2.3.4	नवधा भक्ति	82

2.3.5	भक्ति के साधन	85
2.3.6	भक्त	86
2.3.7	ईश्वर	87
तृतीय अध्याय:	**सूरदास की रचनायें एवं वेदान्त का सगुण भक्ति विमर्श**	**97-127**
3.1	वेदान्त का सगुण भक्ति विमर्श	98
3.1.1	आचार्य वल्लभ	101
3.1.2	आचार्य वल्लभ का जीवन परिचय	102
3.1.3	आचार्य वल्लभ का दार्शनिक सिद्धान्त	103
3.1.4	आचार्य वल्लभ का पुष्टिमार्ग	104
3.2	सूरदास	106
3.2.1	सूरदास का जीवन परिचय	107
3.2.2	अष्टछाप	108
3.2.3	सूरदास की रचनायें	109
3.2.4	सूरदास की काव्यभाषा	110
3.2.5	कृष्णभक्ति साहित्य	111
3.3	सूरदास की रचनाओं में भक्तितत्त्व	111
3.3.1	सूरदास: भक्ति-भावना की विशेषतायें	112
3.3.2	भक्ति	114
3.3.3	भक्ति के साधन	119
3.3.4	भक्त	120
3.3.5	ईश्वर	120

चतुर्थ अध्याय:	**तुलसीदास की रचनायें एवं अद्वैत वेदान्त का भक्ति विमर्श**	**128-165**
4.1	अद्वैत वेदान्त का भक्ति विमर्श	129
4.2	तुलसीदास	133
4.2.1	तुलसीदास का जीवन परिचय	134
4.2.2	तुलसीदास की रचनायें	135
4.2.3	तुलसीदास की काव्यभाषा	136
4.2.4	रामभक्ति साहित्य	137
4.3	तुलसीदास की रचनाओं में भक्तितत्त्व	138
4.3.1	भक्ति	140
4.3.2	शरणागति	149
4.3.3	नवधा भक्ति	152
4.3.4	भक्ति के साधन	155
4.3.5	भक्त	157
4.3.6	ईश्वर	160
पञ्चम अध्याय:	**वेदान्त और भारतीय समाज**	**166-178**
▪	**उपसंहार**	**179-188**
▪	**सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची (Bibliography)**	**189-204**

I. प्राथमिक स्रोत (Primary Text)

(i) प्रत्यक्ष स्रोत

(ii) अप्रत्यक्ष स्रोत

II. द्वितीयक स्रोत (Secondary Text)

(i) स्वतन्त्रग्रन्थ

(ii) शोध-प्रबन्ध/ लघु शोध-प्रबन्ध

(iii) कोश ग्रन्थ

(iv) अन्तर्जालीय स्रोत

प्रथम अध्याय

वेदान्त दर्शन में भक्ति विमर्श

विषय विश्लेषण की सुविधा को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत अध्याय को कुल छः बिन्दुओं में विभाजित किया गया है- १. वेदान्त दर्शन, २. मुक्ति का मार्ग/मोक्ष का साधन, ३. भक्ति, ४. भक्ति के भेद, ५. भक्त और ६. ईश्वर। पुनः उपरोक्त बिन्दुओं को उप-बिन्दुओं में विभाजित किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय के प्रथम चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- वैदिक साहित्य और वेदान्त का सम्बन्ध क्या है? भारत की दार्शनिक पद्धति का विकास कैसे हुआ? वेदान्त किसे कहते हैं? वेदान्त का तात्पर्यार्थ क्या है? प्रस्थानत्रयी किसे कहते हैं? वेदान्तदर्शन के कितने सम्प्रदाय हैं? शाङ्करवेदान्त और भक्तिवेदान्त में मुख्य अन्तर क्या है?

प्रस्तुत अध्याय के द्वितीय चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है? मुक्ति किसे कहते हैं? मुक्ति कैसे मिलती है? मुक्ति के कितने मार्ग हैं? मुक्ति के मार्गों का प्रक्रियात्मक स्वरूप क्या है? ज्ञानमार्ग किसे कहते हैं? ज्ञानमार्गी की विशेषता क्या है? कर्ममार्ग किसे कहते हैं? कर्ममार्गी की विशेषता क्या है? भक्तिमार्ग की विशिष्टता क्या है?

प्रस्तुत अध्याय के तृतीय चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- भक्ति शब्द की निष्पत्ति कैसे होती है? भक्ति का स्वरूप क्या है? भक्ति का मूल स्रोत क्या है? भक्ति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है? शरणागति क्या है? भक्ति और शरणागति का सम्बन्ध क्या है? उपासना किसे कहते है? उपासना और भक्ति का सम्बन्ध क्या है? उपासना का प्रक्रियात्मक स्वरूप क्या है? भक्ति-साहित्य का मूल स्रोत क्या है? भक्ति-साहित्य का उद्भव एवं विकास कैसे हुआ?

उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र, शाण्डिल्यभक्तिसूत्र, नारदभक्तिसूत्र, भागवतपुराण, भक्तिरसायन, भक्तिमीमांसा आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका सहयोग प्रस्तुत अध्याय के लेखनकार्य में लिया गया। उपनिषदें वेदान्त का पर्याय हैं। इस अध्याय के लेखनकार्य का मूल आधार उपनिषद् और भगवद्गीता है। यथा अवसर अन्य ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है। विषय विश्लेषण को आसान बनाने के लिये भाष्य-ग्रन्थों का सहारा लिया गया है जैसे- शारीरकभाष्य, अणुभाष्य, श्रीभाष्य, आनन्दभाष्य, भक्तिचन्द्रिका, स्वप्नेश्वरभाष्य आदि प्रमुख भाष्य-ग्रन्थ हैं।

1.1 वेदान्त दर्शन

संचित ज्ञान राशि का नाम वेद है।[1] वैदिक साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।[2] वैदिक संस्कृति के केन्द्र में याग (यज्ञ) था। उपनिषद् वैदिक संहिता की दार्शनिक व्याख्या है। उपनिषद् की व्याख्या में दर्शन आये। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो भारतीय दर्शन का स्रोत उपनिषद् है। यहीं से भारतीय दार्शनिक पद्धति का प्रारम्भ हुआ। भारत की दार्शनिक परम्परा में षड्दर्शन प्रसिद्ध हैं- सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा।

उत्तरमीमांसा को वेदान्त दर्शन कहते हैं। वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक आचार्य बादरायण हैं।[3] श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार वेदान्त का कर्त्ता श्रीकृष्ण हैं।[4] वेदान्त शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग को वेदान्त कहते है।[5] **'वेदान्तोनाम उपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च।[6]'** अर्थात् (प्रमारूप ब्रह्मविद्या की) प्रमाण रूप उपनिषदें और उनके उपकारक शारीरकसूत्र (वेदान्तसूत्र या ब्रह्मसूत्र) आदि वेदान्त हैं। अनेक आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा और अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से वेदान्त का प्रतिपादन

---

[1] कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्। तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-३/१५)॥ अर्थात् वेदों में नियमित कर्म का विधान है और ये वेद साक्षात् श्रीभगवान् (परब्रह्म) से प्रकट हुए है। फलतः सर्वव्यापी ब्रह्म यज्ञकर्मों में सदा स्थित रहता है।

[2] ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसतानि॥ (बृहदारण्यकोपनिषद्- २/४/१०)॥ अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस (अथर्ववेद), इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और अर्थवाद हैं वे इस महद्भूत के ही निःश्वास हैं।

[3] वेदान्तदर्शन की आचार्य परम्परा बहुत लम्बी है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम इस परम्परा को दो कालखण्डों में विभाजित कर सकते हैं-

क. शङ्कराचार्य के पूर्ववर्ती आचार्य- बोधायन, उपवर्ष, गृहदेव, कपर्दी, भारुचि, भर्तृहरि, भर्तृमिश्र, ब्रह्मनन्दी, द्रविड़ाचार्य, ब्रह्मदत्त, भर्तृप्रपञ्च, सुन्दरपाण्ड्य, गौडपादाचार्य।

ख. शङ्करार्य के परवर्ती विद्वान्- सुरेश्वराचार्य, पद्मपादाचार्य, वाचस्पतिमिश्र, सर्वज्ञात्मुनि, अद्वैतानन्द, बोधेन्द्र, आनन्दबोधभट्टारकाचार्य, अमलानन्द, विद्यारण्य प्रकाशात्मयति विभुक्तात्मा, चित्सुखाचार्य प्रकाशानन्द, मधुसूदन सरस्वती, ब्रह्मानन्द सरस्वती, धर्मराजाध्वरीन्द्र, रामानुज वेदान्तदेशिक, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य।

[4] वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता- १५/१५)॥ अर्थात् मैं ही वेदों द्वारा जानने योग्य हूँ। निस्सन्देह मैं वेदान्त का संकलनकर्त्ता तथा समस्त वदों का जानने वाला हूँ।

[5] 'वेदानामन्तः सिद्धान्तः तत् प्रतिपादकत्वेनाप्युपनिषदां वेदान्त संज्ञा अन्वर्थ इति वक्तुं शक्यते।'
'वेदानाम् अन्तः इति वेदान्तः।' (वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या- ८)। इस व्युत्पत्ति द्वारा वेदान्त शब्द का व्यवहार मुख्य रूप से वेदों के अन्तिम भाग उपनिषदों के लिए होता है और उपचार से उनका उपकारक होने के कारण शारीरकसूत्र आदि को भी वेदान्त शब्द से अभिहित किया गया है- 'वेदशिरोभागे ब्रह्मप्रतिपादके उपनिषद्रूपे ग्रन्थभेदे तदुपकारके शारीरकसूत्रभाष्यादौ च उत्तरमीमांसाशब्दे।' (वाचस्पत्यम भाग ६, पृष्ठ संख्या- ४९६७)।

[6] वेदान्तसार पृष्ठ संख्या- २५।
'उपनिषद् एव प्रमाणमुपनिषत्प्रमाणम्। उपनिषदो यत्र प्रमाणमिति वा। तदुपकारीणि वेदान्तवाक्यसङ्ग्रहकाणि शारीरकसूत्रादीनि 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इत्यादीनि सूत्राणि। आदिशब्देन भगवद्गीताद्यध्यात्मशास्त्राणि गृह्यन्ते तेषामप्युपनिषच्छब्द वाच्यत्वादिति भावः।' (वेदान्तसार, सुबोधिनी टीका, (व्या.) आद्याप्रसाद मिश्र, पृ. २५)।

किया।[1] विषय वस्तु के प्रतिपादन (और तत्त्व सम्पादन) की दृष्टि से भगवद्गीता को उपनिषद् की संज्ञा दी गयी है।[2]

वेदान्तदर्शन का आधार प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र) है। वेदान्तदर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय हैं- शङ्कराचार्य का ब्रह्माद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, मध्व का द्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद, आचार्य वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद और चैतन्यमहाप्रभु का अचिन्त्यभेदाभेद। साधन-पथ की समानता के आधार पर इन सम्प्रदायों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- पहला शाङ्करवेदान्त और दूसरा भक्तिवेदान्त। पहले वर्ग में शङ्कराचार्य और उनके अनुयायियों को रखा जाता है तथा दूसरे वर्ग में रामानुज, मध्व, निम्बार्क, आचार्य वल्लभ एवं चैतन्यमहाप्रभु को रखा जाता है।

शाङ्करवेदान्त के अनुसार मुक्ति का साधन ज्ञान है। भक्तिवेदान्त के अनुसार मुक्ति का साधन भक्ति है। वस्तुतः भक्ति ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा मुक्ति का साधन बनती है।[3] शाङ्करवेदान्त का ब्रह्म निर्गुणब्रह्म है। भक्तिवेदान्त का ब्रह्म सगुणब्रह्म है। आचार्य शङ्कर के अनुसार मूलतत्त्व एक है। उसी को अद्वैततत्त्व या ब्रह्म भी कहते हैं। वह अपनी सामर्थ्य (शक्ति या माया) से अनेक रूपों में भासित होता है। वह परमतत्त्व (अद्वैततत्त्व) माया के कारण निर्गुण से सगुण

[1]

भाष्यकाराः	भाष्याणि	सिद्धान्तः	समयावधिः
१. श्रीशङ्कराचार्यः	शाङ्करभाष्यम् (शारीरकभाष्य)	अद्वैतम्	(७८८ – ८२० ई.)
२. श्रीरामानुजाचार्यः	श्रीभाष्यम्	विशिष्टाद्वैतम्	(१०१७ – १११७ ई.)
३. श्रीभाष्करचार्यः	भाष्करभाष्यम्	भेदाभेदः	(१००० ई.)
४. श्री मध्वाचार्यः	पूर्णप्रज्ञभाष्यम्	द्वैतम्	(१२३८ – १३१७ ई.)
५. श्रीनिम्बार्काचार्यः	सौरभभाष्यम् (वेदान्तपारिजात)	भेदाभेदः	(११०० ई.)
६. श्रीवल्लभाचार्यः	अणुभाष्यम्	शुद्धाद्वैतम्	(१४७९ – १५३२ ई.)
७. श्रीकण्ठः	शैवभाष्यम्	शैवविशिष्टाद्वैतम्	(१२७० ई.)
८. श्रीश्रीपतिः	श्रीकरभाष्यम्	वीरशैवविशिष्टाद्वैतम्	(१४०० ई.)
९. श्रीविज्ञानभिक्षुः	विज्ञानामृतभाष्यम्	अविभागाद्वैतम्	(१६०० ई.)
१०. श्रीवलदेवविद्याभूषणः	गोविन्दभाष्यम्	अचिन्त्यभेदाभेदः	(१७२५ ई.)
११. श्रीपञ्चाननतर्करत्नभट्टाचार्य	शक्तिभाष्यम्	स्वरूपाद्वैत	(१८६७ – १९४० ई.)

[2] सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥ (महाभारत)॥

'इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुने संवादे.....।' (प्रत्यध्यायान्त-पुष्पिका)।

[3] भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशतो तदनन्तरम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५५)॥

रूप धारण कर लेता है। शाङ्करवेदान्त और भक्तिवेदान्त का विस्तृत विवेचन इसी अध्याय के बीच में किया जायेगा।

1.2 मुक्ति का मार्ग/मोक्ष का साधन

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। उसके लिये कुछ लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। जिसकी प्राप्ति के लिये वह सतत् प्रयत्नशील रहता है। भारतीय मनीषियों ने इस लक्ष्य को पुरुषार्थ नाम दिया। पुरुषार्थों की संख्या चार है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष परमेश्वर का स्वरूप है। वह परमेश्वर का परमधाम है। परमेश्वर के परमधाम की यात्रा करने के लिये अनेक आध्यात्मिक मार्ग उपलब्ध होते हैं। यहाँ पर केवल प्रमुख मार्गों का ही विवेचन किया जायेगा। प्रमुख मार्गों की संख्या चार है- १. ज्ञानमार्ग, २. कर्ममार्ग, ३. योगमार्ग और ४. भक्तिमार्ग।[1]

(i) ज्ञानमार्ग

ज्ञानमार्ग को निवृत्तिमार्ग भी कहते हैं। यह मार्ग संन्यास आश्रम के लिये अनुकूल होता है। ज्ञानमार्ग ब्रह्मभावात्मक है। ज्ञानमार्गी के अन्दर न तो कर्त्तापन का भाव रहता है और न ही कर्त्तापन का अभिमान रहता है।[2] शङ्कराचार्य के अनुसार ज्ञानमार्गी का सर्वकर्मसंन्यास में अधिकार है।[3]

ज्ञानमार्गी अपने आपको परमात्मा से अभिन्न मानते हुये एकमात्र चेतन तत्त्व को सत् तथा शेष बुद्धि आदि जड़ पदार्थों को त्रिगुणों का परिणाम मात्र जानकर असत् समझता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि ज्ञानमार्गी अपने अपको शुद्ध-बुद्ध-नित्य-चेतन आत्मा समझता है तथा शरीर को प्रकृति एवं उसके गुणों का कार्य मानता है।[4] ज्ञानमार्गी (शारीरिक चेष्टारूप)

---

[1] ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना। अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१३/२४)॥

[2] 'नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।' (श्रीमद्भगवद्गीता-५/८)। ज्ञानमार्गी अपने को शुद्ध, बुद्ध, नित्य, चेतन आत्मा समझता है तथा शरीर को प्रकृति एवं उसके गुणों का कार्य मानता है। यही कारण है कि ज्ञानमार्गी में अकर्त्तापन का भाव होता है। 'आत्मनः कर्तृत्वाभावं पश्यन् न एव किञ्चिद् भिक्षाटनादिकं कर्म करोति।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-४/२२)। वह अपने में कर्त्तापन का अभाव देखने से (आत्मा को अकर्त्ता समझ लेने से) वास्तव में भिक्षाटनादि कुछ भी कर्म नहीं करता है।

[3] 'सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-५/१३)। सर्वकर्मसंन्यास का अर्थ यह है कि सभी कर्मों का मन से त्याग कर देना अर्थात् 'समस्त कर्म सत्त्वादि गुणों के कार्य हैं मैं कुछ नहीं करता' ऐसा मानते हुये उन कर्मों का मन से त्याग कर देना।

'तस्य सर्वकर्मसन्न्यासे एव अधिकारः कर्मणः अभावदर्शनात्।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-५/८)। अर्थात् ज्ञानमार्गी का सर्वकर्मसंन्यास में ही अधिकार है, कर्मफलत्याग में नहीं।

[4] अन्ये साङ्ख्येन योगेन साङ्ख्यं नाम-इमे सत्त्वरजस्तमांसि गुणा मया दृश्या अहं तेभ्यः अन्यः तद्व्यापारसाक्षिभूतो नित्यो गुणविलक्षण आत्मा इति चिन्तनम् एष साङ्ख्यो योगः तेन पश्यन्ति आत्मानम् आत्मना इति वर्तते। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१३/२४)।

कर्म में अकर्म देखता है। वह अपने समस्त कर्मों का मन से त्याग कर देता है। ज्ञानमार्गी की अन्य विशेषताओं का वर्णन भगवद्गीता में विस्तार से किया गया है।[1]

तत्त्वज्ञान द्वारा ज्ञानमार्गी के समस्त कर्मों का नाश हो जाता है।[2] क्योंकि आत्मज्ञानी व्यक्ति समस्त कर्म साधनों का त्याग कर चुका होता है। आत्मज्ञानी के लिये कोई भी कर्त्तव्य कर्म शेष नहीं रह जाता है। आचार्य शङ्कर ने ज्ञान को कर्म से श्रेष्ठ बताया है।[3] उनके अनुसार ज्ञान मुक्ति का साक्षात् कारण है।[4]

(ii) कर्ममार्ग

कर्ममार्ग को प्रवृत्तिमार्ग भी कहते हैं। यह मार्ग गृहस्थ आश्रम के लिये अनुकूल होता है। कर्ममार्ग आत्मभावात्मक है। कर्ममार्गी के अन्दर कर्त्तापन का भाव तो रहता है लेकिन कर्त्तापन का अभिमान नहीं रहता है।[5] शङ्कराचार्य के अनुसार कर्ममार्गी का कर्मफलत्याग और सर्वकर्मसंन्यास दोनों में अधिकार है। इसका अर्थ यह है कि कर्ममार्गी अपने परमलक्ष्य को प्राप्त करने के लिये क्रमशः (कर्मफलत्याग और सर्वकर्मसंन्यास) दोनों विधियों का आचरण करता है।

त्रिगुणों के परवश होने के कारण शरीरधारी मनुष्य एक क्षण भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है।[6] कर्म स्वभाव से ही बन्धनकारी होता है। लेकिन शास्त्रविहित विधि के अनुसार किया गया कर्म बन्धनकारी नहीं होता है। निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि सकामकर्म बन्धनकारी होता है और निष्कामकर्म बन्धनकारी नहीं होता है। निष्कामकर्म क्या है- **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥'**[7] निष्कामकर्म मुक्ति देने वाला होता है।[8]

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता- (१२वें अध्याय के श्लोक संख्या १३ से लेकर श्लोक संख्या २० तक) (१४वें अध्याय के श्लोक संख्या २२ से लेकर श्लोक संख्या २५ तक) (१८वें अध्याय के श्लोक संख्या ४९ से लेकर श्लोक संख्या ५५ तक)।

[2] यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/३७)॥

[3] ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन। (श्रीमद्भगवद्गीता-३/१)।

[4] इदम् एव सम्यग्ज्ञानं साक्षात् मोक्षप्राप्तिसाधनम् 'वासुदेवः सर्वमिति' आत्मैवेदं सर्वम् (बृहदारण्यकोपनिषद्-२/४/६) 'एकमेवाद्वितीयम्' (छान्दोग्योपनिशद्-६/२/१) इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यः न अन्यत्।

[5] 'मैं कर्म करता हूँ' इसका भाव कर्मयोगी में रहता है।

[6] शरीरधारीमनुष्य के लिये कर्मों का सम्पूर्णता से त्याग कर पाना असम्भव है।
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-३/५)॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः। यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/११)॥

[7] श्रीमद्भगवद्गीता- (२/४७)।

[8] गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/२३)॥ आसक्ति रहित कर्म का फल सहित नाश हो जाता है। निष्कामकर्मयोगी के सारे कर्म ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।
'कर्मबन्धः तं प्रहास्यसि ईश्वरप्रसादनिमित्तज्ञानप्राप्तेः।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-२/३९)। योगबुद्धि से युक्त हुआ तू (धर्माधर्म नामक) कर्मरूप बन्धन को ईश्वरकृपा से होने वाली ज्ञानप्राप्ति द्वारा नाश कर डालेगा।

कर्ममार्गी फलासक्ति रहित कर्म करता है वह सभी कार्यों को भगवान् का कार्य समझकर भगवान् की प्रसन्नता के लिये करता हुआ कर्मफल भगवान् को अर्पित कर देता है। शास्त्रविहित कर्म का विधिवत् आचरण करने के कारण मनुष्य का सारा पाप नष्ट हो जाता है। पापनाश से अन्तःकरण शुद्ध होता है। शुद्ध अन्तःकरण में ही ज्ञानोदय होता है।[1] यही ज्ञान मुक्ति का कारण बनता है। उपरोक्त विधि का निष्कर्ष यह है कि कर्म का पर्यवसान अन्ततः ज्ञान में हो जाता है।

(iii) योगमार्ग

योगमार्ग को राजयोग भी कहते हैं। **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'**[2] महर्षि पतञ्जलि ने समाधि का प्रयोग योग के पर्याय के रूप में किया है।[3] योगमार्ग के माध्यम से कैवल्य प्राप्त करने के लिये अभ्यास, वैराग्य और अष्टांगयोग का आचरण करना पड़ता है। योग की आवश्यकता ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनों के लिये पड़ती है। योग मुक्ति का एक स्वतन्त्र साधन भी है।

(iv) भक्तिमार्ग

भक्तिमार्ग कहता है कि विषय की तरफ से मुड़िये और अपने स्रोत की तरफ देखिये। दैनिक क्रिया करते हुये अपना ध्यान ईश्वर की तरफ लगाइये। भक्ति और अन्य मार्गों में परस्पर अङ्गाङ्गीभाव सम्बन्ध हो सकता है। इसके बाद भी भक्ति मुक्ति का एक स्वतन्त्र साधन है। भक्ति से मुक्ति मिलती है।[4] भक्तिमार्ग का विवेचन आगे विस्तार से किया जायेगा।

1.3 भक्ति

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है।[5] उसके लिये कुछ लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। जिसकी प्राप्ति के लिये वह सतत् प्रयत्नशील रहता है। भारतीय मनीषियों ने इस लक्ष्य को पुरुषार्थ

'कर्मणि मोक्षे अपि फले सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः सर्वकर्माणि।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-५/१०)। अर्थात् वह मोक्ष रूप फल की भी आसक्ति छोड़कर कर्म करता है।

[1] कर्मयोगेन कर्म एव योग ईश्वरार्पणबुद्ध्या अनुष्ठीयमानं घटनरूपं योगार्थत्वाद् योग उच्यते गुणतः तेन सत्त्वशुद्धिज्ञानोत्पत्तिद्वारेण च अपरे। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१३/४२)।

[2] योगसूत्र- (१/२)।

[3] 'योगः समाधिः।' तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि। (योगसूत्र)।

[4] मद्भक्ता यान्ति मानपि॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/२३)॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/५४)॥

न अहं प्रकाशः सर्वस्य लोकस्य केषाञ्चिद्। एव मद्भक्तानां प्रकाशः अहम् इति अभिप्रायः॥ (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/२५)॥

अर्थात् मैं अपने भक्तों के लिये ही प्रकट होता हूँ, अन्य के लिये नहीं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/२५)॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/१४)॥

[5] 'मननात् मनुष्यः।' इस व्युत्पत्ति के अनुसार मनुष्य मननशील प्राणी है।

नाम दिया।[1] पुरुषार्थों की संख्या चार है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष को परम पुरुषार्थ कहते हैं।[2] परम पुरुषार्थ ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। मोक्ष प्राप्त करने के बाद जीव आवागमन (पुनर्जन्म) के बन्धन से मुक्त हो जाता है[3] और परम सुख का अनुभव करता है।[4]

मोक्ष प्राप्त करने के बाद मनुष्य सांसारिकता से ऊपर उठ जाता है और व्यापक स्वभाव वाला हो जाता है। संसार का कोई भी कष्ट या आवेग उसे प्रताड़ित नहीं करता है। शास्त्रों में परम पुरुषार्थ मोक्ष को परमतत्त्व परमेश्वर का स्वरूप कहा गया है। उस परमेश्वर के परमधाम (मोक्ष) को प्राप्त करने के लिये अनेक आध्यात्मिक साधन उपलब्ध होते हैं। प्रयोग और परीक्षण के आधार पर तत्त्ववेत्ता[5] ऋषियों ने भक्तिमार्ग को अधिक महत्त्व दिया है।[6] भक्ति मोक्ष प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है।[7]

1.3.1 भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति परक अर्थ

भक्ति शब्द **'भज् सेवायाम्'** धातु से 'क्तिन' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। 'भज्' धातु हिस्से करना, वितरित करना, आश्रय लेना, सेवा करना, समर्पण करना आदि अर्थों में प्रयुक्त हुई है। 'क्तिन्' प्रत्यय का प्रयोग करण. अधिकरण और भाव तीन अर्थों में होता है। करण अर्थ

---

[1] पुरुष जिसे चाहता है उसे पुरुषार्थ कहते हैं। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सब जीव उत्कृष्ट सुख की इच्छा करते हैं। धर्म, अर्थ और काम साक्षात् सुख स्वरूप न होकर सुख के साधन है तथा मोक्ष साक्षात् सुख स्वरूप है।

[2] परम (निरतिशय) अर्थात् जिससे अधिक सुख नहीं और जिसका कभी क्षय नहीं होता ऐसे पुरुषार्थ सुख ही मोक्ष है मोक्ष की परम पुरुषार्थता '(सः) न च पुनरावर्त्तते।' (छान्दोग्योपनिषद्-८/१५/१)। इस श्रुति से सिद्ध है क्योंकि मोक्ष प्राप्तकर्त्ता या आत्मज्ञ पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेता है।

[3] 'सः न च पुनरावर्त्तते।' (छान्दोग्योपनिषद्-८/१५/१)।

'यदल्पं तन्मर्त्यम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१४/१)। अर्थात् जो अल्प या अपूर्ण है वह मरणशील या नाशवान् है और जो नाशवान् होता है वही दुःख का कारण होता है।

[4] 'यो वै भूमा तत्सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१३/१)।

[5] 'साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो वभूवुः।' (निरुक्त-१/२०)।

[6] मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१४/२६)॥

[7] मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी। (विवेकचूड़ामणि-३२)॥

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥

मामेवैष्यसि युकत्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥

तदाद्रष्टु स्वरूपावस्थानम्। (योगसूत्र)।

ब्रह्मसंस्थः अमृतत्त्वम् एति॥ (छान्दोग्योपनिषद्-२/२३/२)॥

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/१/३)॥

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्। (ब्रह्मसूत्र-१/१/७)।

भक्त्या जानातीति चेन्नाऽभिज्ञया साहाय्यात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/२/६)

में करने पर क्तिन् प्रत्यय ईश्वर प्राप्ति की साधक क्रियाओं का वाचक होगा।[1] अधिकरण अर्थ में करने पर 'क्तिन्' प्रत्यय अन्य सभी दशाओं की संज्ञा भक्ति होगी जिसमें भगवत्-भजन किया जाता है।[2] भाव अर्थ में करने पर भक्ति शब्द ('भजनं भक्ति' विग्रहानुसार) प्रेमाभक्ति का वाचक है।

'यस्य देवे परा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ।'[3] इस मन्त्र में देव प्रासाद से सिद्धि प्राप्ति बतलायी गयी है। सर्वप्रथम स्पष्टतया भक्ति का प्रतिपादन इस मन्त्र में मिलता है। उपनिषद् में भक्ति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मिलता है।

कोशकार के अनुसार **'भज् सेवायाम्'** से निष्पन्न भक्ति शब्द का अर्थ- **'भञ्जनं भक्तिः'** अर्थात् **'यस्मात् भञ्जनं भवति सैव भक्ति'। कस्य भञ्जनं- 'संसार बन्धनस्य- ईश्वर सेवायाः संसार सम्बन्धः छिन्नते'।**

1.3.2 भक्ति का स्वरूप

आम बोलचाल की भाषा में भक्ति का तात्पर्य- भगवान् या अपने इष्टदेव के लिये किया गया श्रद्धेय कर्म (जैसे पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन, दान, उपासना, तप, जप इत्यादि) से है। परन्तु आध्यात्मिक एवं शास्त्रीय दृष्टि से भक्ति का अर्थ थोड़ा भिन्न है। हृदयतत्त्व के माध्यम से भगवान् का सान्निध्य प्राप्ति और साक्षात्कार करने का प्रयास ही भक्ति है। भक्ति मन का एक प्रवाह है अर्थात् किसी निश्चित विषय पर मन को केन्द्रित करना भक्ति है।

भक्ति अन्तःकरण की वृत्ति विशेष है। अन्तःकरण की इस वृत्ति का विषय परमात्मा (परब्रह्म परमेश्वर) है। मुक्ति के प्रसंग में भक्ति का विषय केवल परब्रह्म होता है। अन्तःकरण की यह वृत्ति ईश्वर के अतिरिक्त लोक को भी अपना विषय बनाती है। अन्तःकरण की इस वृत्ति का विषय दो प्रकार का हो सकता है- पहला अलौकिक विषय और दूसरा लौकिक विषय। लोकविषयक अन्तःकरण की वृत्ति देव, गुरु, माता-पिता, सखा और पुत्र इत्यादि को अपना विषय बनाती है। जिसके फलस्वरूप देवभक्ति, गुरुभक्ति, मातृभक्ति, पितृभक्ति, सखाभक्ति और वात्सल्यभक्ति देखने को मिलती है। इस भक्ति को अपराभक्ति या गौणीभक्ति भी कहते हैं। परमेश्वर विषयक अन्तःकरण की वृत्ति को पराभक्ति कहते हैं।

---

[1] 'करण व्युत्पत्त्या भक्ति शब्देन श्रवण-कीर्तनादि साधनमभिधीयते।' (मन्जुसिंह द्वारा रचित लघुशोध प्रबन्ध 'भक्तिरस सिद्धान्त,दर्शन एवं अनुप्रयोग' के पृष्ठ संख्या.२ पर)।

[2] 'भजन्ति यस्यां दशायां सा भक्ति।' (मन्जुसिंह द्वारा रचित लघुशोध प्रबन्ध 'भक्तिरस सिद्धान्त,दर्शन एवं अनुप्रयोग' के पृष्ठ संख्या २ पर)।

[3] श्वेताश्वतरोपनिषद्- (६/२३)।

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते, तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥'[1] अर्थात् यह आत्मतत्त्व व्याख्यान से नहीं मिलता, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से मिलता है। यह आत्मा जिसे स्वीकार कर लेता है, उसे ही यह प्राप्त होता है, उसके सामने अपने स्वरूप को खोलकर रख देता है।

उपनिषद् में अनेक प्रकार की उपासनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। छान्दोग्योपनिषद् आत्मरति को भक्ति कहती है।[2] इसके साथ-साथ अन्य उपनिषदों में भी भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है[3]। उपनिषद् भक्तिमार्ग की यात्रा को सफल बनाने के लिये प्रभुकृपा या प्रसाद (भगवत्कृपा) को आवश्यक मानती है। प्रभुकृपा के बिना परमेश्वर का साक्षात्कार होना सम्भव नहीं है।[4] स्वयं श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि मुक्ति ज्ञान से नहीं बल्कि मेरी कृपा से मिलती है। मेरी भक्ति से मिलती है।[5]

भगवद्गीता की भक्ति निष्काम कर्म पर आधारित थी। लोकरक्षा निष्काम कर्म वाली भक्ति का मूल था। लोकरक्षा के लिये ही भगवान् अवतारित होते हैं।[6] आधुनिक भक्ति का स्वरूप गीता की भक्ति से स्पष्ट होता है। श्रीकृष्ण भक्ति को परिभाषित करते हुये कहते हैं- 'भगवान् में मन (चित्त) वाला, भगवान् की भजन करने वाला, भगवान् का पूजन करने वाला और भगवान् को ही नमस्कार करने वाला होना भक्ति कहलाता है।'[7] भगवद्गीता(१२/१) के अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है- पहली निर्गुणभक्ति और दूसरी सगुणभक्ति।[8]

श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार **'भजनं भक्तिः'** अर्थात् भजन का नाम भक्ति है।[9] भक्ति एक भजन-क्रिया है जिसका साध्य ईश्वर है। भक्ति को परिभाषित करते हुये आचार्य

---

[1] (कठोपनिषद्-२/२३) तथा (मुण्डकोपनिषद्-२/३/२)।

[2] आत्मा वै आत्मा इदं सर्व इति सा वा एषः एवं पश्य् एवं मन्वानः एवं विजानम् आत्मरतिः आत्मक्रीडा आत्ममिथुनः आत्मानन्दः सा स्वराट्॥ (छान्दोग्योपनिषद्)॥

[3] इह अमुत्र च फलभोग-विरक्तिम् अवाप्य। परमात्मनि एव मनः समाधाय तस्य भजनं भक्तिः॥ (गोपालपुर्वतापनीयोपनिषद्)॥

'यतो वाचा निवर्तन्ते।' (तैत्तिरीयोपनिषद्-२/४/९)।

'नैषा तर्केण मतिरापनेया।' (कठोपनिषद्-१/२/९)।

'अणोरणीयान्, महतो महीयान्।' (कठोपनिषद्-२/२०)।

[4] तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्यनः॥ (कठोपनिषद्- १/२/२०)

[5] तेषां अहं समुधर्त्ता मृत्युसंसारसागर। भवामि चिदाय मयि आवेशित चेतसाम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१२/७)॥

[6] यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/७)॥ श्रीमद्भगवद्गीता- (४/८)।

[7] 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥ 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥

[8] एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते। ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१२/१)॥

[9] श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (८/१०)। श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (१४/२६)।

शङ्कर कहते हैं कि **'आत्मदेवस्य उपासना एव भक्तिः'** अर्थात् आत्मदेव की उपासना ही भक्ति है। क्योंकि भक्ति ज्ञान के समकक्ष होकर अपने स्वरूप का अन्वेषण करती है। शङ्कराचार्य ने **'आत्मदेवस्य उपासना एव भक्तिः'** की व्याख्या में **'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिः'** को लिखा। **'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिः'** का अर्थ यह है कि जीव अपने वास्तविक स्वरूप को जानना चाहता है और ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध की खोज करना चाहता है। श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार भक्ति के दो भेद हैं- पराभक्ति और अपराभक्ति (या गौणीभक्ति)। '[1]

भगवान् के सतत चिन्तन, ध्यान, स्मरण, भगवान् पर अनन्य विश्वास और तत्परायण भजन का नाम उपासना है।[2] आचार्य शङ्कर के मत में चित्त की एकाग्रता ही उपासना का स्वरूप है।[3] सदानन्द के अनुसार 'सगुण ब्रह्म विषयक मानसिक व्यापार (या ध्यान) उपासना है।'[4] आचार्य शङ्कर ने भक्ति को उपासना के अर्थ में माना है। उपासना में जब बुद्धितत्त्व का प्राधान्य हो तो ज्ञानमार्ग (निर्गुण या अव्यक्तोपासना) और जब हृदयतत्त्व का प्राधान्य हो तो भक्तिमार्ग (सगुण या व्यक्तोपासना) कहलाता है।

आचार्य शंकर के मत में उपासना का प्रयोजन चित्तशुद्धि है। क्योंकि चित्त शुद्ध होने पर ही ब्रह्मसाक्षात्कार सम्भव है। कहने का तात्पर्य यह है कि **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः'** को आत्मसात् करने के लिये चित्त का शुद्ध होना आवश्यक है। चित्तशुद्धि उपासना से होती है। चित्त शुद्धि के अनेक उपायों में उपासना भी एक उपाय है। अनेक प्रकार की उपासना वर्णित है। उपासना का एक रूप पूजा भी है। आचार्य शङ्कर ने 'परापूजा' नामक स्तोत्र लिखा है। परापूजा करने से भगवत्कृपा मिलती है।

भगवत्कृपा से मुक्ति मिलती है। भक्त की भक्ति-भावना से प्रसन्न होकर भगवान् उसे बुद्धियोग प्रदान करते है। जिस के द्वारा भक्त भगवान् को तत्त्व से जान पाने में समर्थ हो जाता है। बुद्धियोग से भक्त की भेदबुद्धि नष्ट होती है। वह माया के बन्धन को पार कर जाता है।

---

[1] विवेकचूडामणि- (३२)।

[2] 'उप समीपे आस्यते- स्थीयते अनेन इत्युपासना।' (वेदान्तसार पृष्ट संख्या- ५०)।

[3] 'उपासनं तु यथाशास्त्रसमर्थितं किञ्चिदालम्बनमुपादाय तस्मिन् समानचित्तवृत्तिसन्तानकरणं तद्विलक्षणप्रत्ययानन्तरितमिति।' (छान्दोग्योपनिषद्भाष्यभूमिका)। अर्थात् उपासना तो शास्त्र सम्मत किसी आलम्बन को ग्रहण कर उसमें, विजातीय प्रत्ययों के व्यवधान से रहित, सजातीय चित्तवृत्तियों को प्रवाहित करना है।

[4] 'उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाररूपाणि शाण्डिल्यविद्यादीनि॥' (वेदान्तसार पृ. सं.-१४)॥

अन्ततः भक्त मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है। आचार्य शङ्कर के मत में भक्ति ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा मुक्ति का साधन बनती है।[1]

आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने भागवतपुराण में वर्णित भक्ति सम्बन्धी विचार का अनुमोदन करते हैं। आचर्य मधुसूदन सरस्वती के अनुसार- 'भक्ति एक ऐसी मानसिक अवस्था है जिसका प्रवाह ईश्वर की ओर उन्मुख है।'[2] भक्ति से चित्त द्रवित हो जाता है और वाणी गद्गद हो उठती है। द्रुतचित्त जब आनन्दपूर्ण भगवान् को ग्रहण कर लेता है, तब वह तद्रूप हो जाता है।[3] मधुसूदन सरस्वती ने भक्तिरसायन में चित्तद्रुति को महत्ता दी है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने भगवद्भक्तिरसायन में भक्ति की अवस्थाओं का क्रमबद्ध शैली में वर्णन किया है।[4]

भागवतमहापुराण (१/२/६) के अनुसार- 'भगवान् में हेतुरहित, निष्काम एवं एकनिष्ठायुक्त अनवरत प्रेम का नाम भक्ति है।' यही पुरुषों का परम धर्म है। इसी से आत्मा प्रसन्न होती है।[5] भागतमहापुराण में एक अन्य स्थल पर भक्ति की दूसरी परिभाषा भी मिलती है।[6] भागवतमहापुराण में नवधाभक्ति का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। सगुणभक्ति सेवा की दृष्टि से नौ प्रकार की होती है- श्रवण, कीर्तनादि नवधाभक्ति।[7] नवधाभक्ति का विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा।

आचार्य रामानुज के अनुसार **'स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः'** अर्थात् ईश्वर का स्नेह पूर्वक अनुध्यान भक्ति कहलाता है। यह प्रेमपूर्वक ध्यान प्रपत्ति और ध्रुवास्मृति अर्थात् भगवान् का तैलधारावत् अविच्छिन्न स्मरण होना चाहिये।

आचार्य मध्व के अनुसार **'ज्ञानपूर्वपरस्नेहो नित्यो भक्तिरितीर्यते'** अर्थात् भगवान् के प्रति ज्ञानपूर्वक अनन्य स्नेह ही भक्ति है। भक्ति को ध्यानरूपा मानते हैं और ध्यान को उन्होंने

---

[1] भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशतो तदनन्तरम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५५)॥

[2] येन केनापि साधनमार्गानुष्ठानेन सत्त्वशुद्धिं अवाप्य सर्वेश्वरं प्रति धारावाहिकरूपेण मनः यदि स्रवति सा भक्ति। (भक्तिरसायन)।

[3] द्रुतस्य भगवद्धर्मात् धारावाहिकतां गता। सर्वेशे मनसो वृत्तिः भक्तिरित्यभिधीयते॥ (भक्तिरसायन-१/३)॥

द्रुते चित्ते प्रविष्टा या गोविन्दाकारता स्थिरा। सा भक्तिरित्यभिहिता॥ (भक्तिरसायन- २/१)॥

[4] प्रथमम्हूतां सेवा, तद्द्यापात्रता ततः, श्रद्धाऽथ तेषां धर्मेषु, ततो हरिगुणश्रुतिः।

ततो इत्यंकुरुत्पत्तिः स्वरूपाधिगतिस्ततः, प्रेमबृद्धि परानन्दे, तस्याथ स्फूरणं ततः।

भगवद् धर्मनिष्ठदतस्स्वस्मिस्तद् गुणशालिता, प्रेम्णोऽथपरमा कोष्ठेत्युदिता भक्तिभूमिकाः। (भगवद्भक्तिरसायनम् पृ. ९१)।

[5] स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे। अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति॥ (भागवतमहापुराण-१/२/६)॥

[6] भगवद्-गुण-श्रवण मात्रेण यदि मनः रभसेन सागराभिमुखि-गङ्गेव भगवन्तम् अभिप्रवहति चेत् सा भक्ति॥(भागवतमहापुराण)॥

[7] भागवतपुराण- (७/५/२३-२४)।

भगवदितर विषयों के प्रति तिरस्कारपूर्वक भगवान् का अखण्ड स्मरण कहा है। भक्ति भगवत्कृपा का साधन है।

आचार्य निम्बार्क के अनुसार **'कृपाऽस्य दैन्यादि युजि प्रजायते यथा भवेत् प्रेम विशेषलक्षणा। भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिका परा'**।

आचार्य वल्लभ के अनुसार **'माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः'** अर्थात् 'भगवान् के माहात्म्य ज्ञानपूर्वक उनके प्रति सुदृढ़ सर्वातिशायी प्रेम ही भक्ति है और केवल उसी से मुक्ति सम्भव है। वल्लभ की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति हैं।

अचिन्त्यभेदाभेद सम्प्रदाय के अनुसार **'अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा'** अर्थात् भुक्ति एवं मुक्ति सभी प्रकार की इच्छाओं से शून्य कृष्ण का अनुकूल अनुशीलन भक्ति है।

शाण्डिल्यभक्तिसूत्र के अनुसार **'सा परानुरक्तिरीश्वरे'** अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति भक्ति है। भक्ति को दो प्रकार का माना है- साध्यभक्ति तथा साधनभक्ति। साध्यभक्ति ईश्वर के प्रति सर्वोत्कृष्ट अनुराग है एवं भजन, कीर्तन आदि नौ प्रकार की भक्ति साधन भक्ति है। साधन भक्ति पराभक्ति की प्राप्ति में हेतुरूपा है।

नारदभक्तिसूत्र के अनुसार **'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च'** अर्थात् भक्ति परमप्रेमरूपा तथा अमृतस्वरूपा है। भगवान् के प्रति समस्त आचारों को समर्पित कर देना तथा ईश्वर की क्षणमात्र विस्मृति होने पर अत्यन्त व्याकुल हो जाना ही भक्ति है- **'नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति'**।

भक्ति का स्वरूप निरूपण के सन्दर्भ में कुछ तथ्य निम्न है-

- वेदान्त की भक्ति चिन्तन परम्परा का बीज वेदों के प्रकृति प्रेम एवं वैदिक ऋचाओं की स्तुति, प्रार्थना आदि में देखा जा सकता है।
- मानव सभ्यता के साथ-साथ भक्ति का भी उद्गम हुआ। अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखकर भक्ति के लम्बे इतिहास को हम तीन चरणों में बाँट सकते हैं- १. वैदिक भक्ति, २. औपनिषदिक भक्ति या उपासना और ३. भगवद्गीता की भक्ति।
- वेदों में आत्मरक्षा, द्रव्यप्राप्ति, पुण्यप्राप्ति और पाप से छुटकारा पाने के लिये इष्ट देवों की पूजा, प्रार्थना, आराधना और स्तुति हुई है। वैदिक भक्ति के तीन अङ्ग हैं- स्तुति, प्रार्थना और उपासना।
- वैदिक भक्ति का तात्त्विक विवेचन उपनिषदों में किया गया। जिसके फलस्वरूप उपनिषदों में उपासना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

- भगवत्सम्बन्धी जिस भावना को वेद में भक्ति कहा गया वह उपनिषदों में आकर उपासना कहलायी। भगवत्सम्बन्धी यह भावना अन्ततः गीता में जाकर भक्ति के रूप में पुनर्स्थापित हुई।
- भक्ति का पुनरुत्थान भगवद्गीता में आकर हुआ। गीता में जिस भक्ति-भावना का सूत्रपात श्रीकृष्ण ने किया था उसका व्यापक विस्तार पुराणों में देखा गया।
- श्रीमद्भगवद्गीता की भक्ति महाभारत कालीन है। गीता की भक्ति निष्काम कर्म पर आधारित थी। लोकरक्षा निष्काम कर्म वाली भक्ति का मूल था। लोकरक्षा के लिये ही भगवान् का अवतार हुआ। वर्तमान भक्ति का स्वरूप गीता की भक्ति से स्पष्ट होता है।
- निष्कर्षतः भक्ति अपने इतिहास के आरम्भ में जिस एकाङ्गी स्वरूप को धारण किये हुये मिलती है समय के साथ-साथ वह परिष्कृत, परिमार्जित एवं बहु-आयामी स्वरूप वाली होती चली गयी। इसका सबसे जीवन्त उदाहरण श्रीमद्भगवद्गीता में उपलब्ध भक्ति और संतों की भक्ति परम्परा है।

1.3.3 शरणागति

शरणागत का शाब्दिक अर्थ है- 'शरण में आया हुआ'। किन्तु आध्यात्मिक सन्दर्भ में शरणागत का अर्थ- 'ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण से है'।[1] जो व्यक्ति प्रभु को अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिये तैयार है वही सच्चा शरणागत है। भगवान् को उनकी कृपा के बिना नहीं जाना जा सकता है। शरणागति प्रभुकृपा प्राप्त करने का एक साधन है।[2] शरणागति प्रभुकृपा का आधार है। शरणागति भक्ति की सर्वोच्च अवस्था है।

शरणागति भक्तिविशेष है। कुछ मायने में शरणागति भक्ति से विलक्षण है जैसे- भक्ति का अनुष्ठान जीवन पर्यन्त किया जाता है[3] जबकि शरणागति जीवन में एक ही बार की जाती है।[4] शरणागति की आवृत्ति नहीं होती है जबकि भक्ति की आवृत्ति प्रतिदिन करनी होती है। ब्रह्मसूत्र के अनुसार- भक्ति आमरण प्रतिदिन करनी पड़ती है।[5] उपरोक्त अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि शरणागति जीवन में एक ही बार की जाती है जबकि भक्ति प्रतिदिन और जीवन पर्यन्त की जाती है।

मोक्ष के लिये की जाने वाली शरणागति को लक्ष्य करके आचार्यों ने दो अभिमत प्रस्तुत किया है- पहला कपिकिशोरन्याय और दूसरा मार्जारकिशोरन्याय।

---

[1] तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६२)॥
[2] तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६२)॥
[3] 'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्।' (ब्रह्मसूत्र-४/१/१)।
[4] सुकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रत मम॥ (रामायण युद्धकाण्ड-६/१८/३३)॥
[5] आवृत्तिरसकृदुपदेशात्। (ब्रह्मसूत्र-४/१/१)।

कपिकिशोरन्याय

जैसे अपनी माँ की पेट से चिपका हुआ बन्दर का बच्चा अपनी माँ को कसकर पकड़े रहता है अगर किसी भी समय बच्चे की माँ को यह अनुभव होता है कि बच्चे की पकड़ ढीली पड़ रही है तो वह बच्चे को दृढ़ता से पकड़ने का संकेत करते हुये उसकी रक्षा करती है। ठीक वैसे ही शरणागत भक्त अपने पुरुषार्थ का आश्रय लेकर भगवान् को दृढ़ता से पकड़े रहता है और प्रभु उसकी रक्षा करते हैं।

मार्जारकिशोरन्याय

जैसे बिल्ली का बच्चा दृढ़ विश्वास से यह सोचकर अपनी माँ के सहारे बैठा रहता है कि वह जहाँ चाहे उसे ले जाय। शिशु इस विषय में कोई प्रयास (पुरुषार्थ) नहीं करता है। ठीक वैसे ही एकमात्र भगवान् का आश्रय लेने वाले ऐसे भक्त जो कि स्वयं कोई भी प्रयास नहीं करते और भगवान् के सहारे मार्जारकिशोरवत् बैठे रहते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा- **'मामेकं शरणं व्रज'** (मेरे शरण में आ जाओ अर्जुन!)।[1] भगवान् की आज्ञा को स्वीकार करते हुये अर्जुन ने बोला- **'करिष्ये वचनं तव'** (मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा)।[2] भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (९/२९-३३) में भगवत्-भजन के महत्त्व को दिखलाया और अर्जुन से भजन करने के लिये कहा।[3] भगवान् श्रीकृष्ण भजन के प्रकार को बताते हुये कहते हैं- **'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।'**[4]

अर्जुन शरणागत का सबसे अच्छा उदाहरण है। अर्जुन कहते हैं कि हे भगवान्! 'कहाँ और किस दिशा में जाना है, मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है, आप मेरा मार्गदर्शन करिये। मेरे जीवन का नियन्त्रण आपके हाथ में है। मैं सभी परिस्थियों में आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।' इस प्रकार कहते हुये अर्जुन ने अपने जीवन की लगाम भगवान् के हाथों में सौंप दिया और भगवान् की आज्ञा को जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानकर आगे बढ़े।

वैष्णव धर्म के आचार्यों ने शरणागति को छः भागों में विभाजित किया है- १. अनुकूल का संकल्प, २. प्रतिकूल का त्याग, ३. गोमृत्ववरण, ४. रक्षा का विश्वास, ५. आत्मनिक्षेप और

---

[1] सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६६)॥

[2] नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत। स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/७३)॥

[3] ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/२९)॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३०)॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रोस्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३२)॥

[4] मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥

६. कार्पण्य।[1] शरणागति के उपरोक्त अङ्ग अहिर्बुध्न्यसंहिता के अनुसार हैं। लक्ष्मीतन्त्रसंहिता में भी इन्हीं अङ्गों का उल्लेख हुआ है। कुछ आचार्यों ने शरणागति के सात विभाग किये हैं- १. दीनता, २. मनमर्षण, ३. भयदर्शन, ४. भर्त्सना, ५. मनोराज्य, ६. आश्वसना और ७. विचारणा। उपरोक्त अङ्गो को शरणागति की आधारशिला कहते हैं।

(i) अनुकूल का संकल्प: प्रभुप्राप्ति के पथ में जो साधन अनुकूल दिखायी पड़ते हैं, उन्हीं को अपनाने के लिये भक्त दृढ़ संकल्प करता है।[2]

(ii) प्रतिकूल का त्याग: प्रभु की प्राप्ति में जो साधन अवरोध उत्पन्न करते हैं, उनका परित्याग ही श्रेयस्कर समझना।[3]

(iii) गोप्तृत्ववरण: प्रभु के रक्षक स्वरूप का वरण करना, उसे ही अपने त्राता के रूप में स्वीकार करना।[4]

(iv) रक्षा का विश्वास: प्रभु की रक्षण शक्ति में विश्वास भक्त को प्रतिकूल परिस्थितियों में बल देता है।[5]

(v) आत्मनिक्षेप: भक्त सर्वात्मना अपने आपको प्रभु के हाथों में समर्पित कर देता है। प्रभु उसके लिये, जो कुछ उपयुक्त समझें, करें।[6]

(vi) कार्पण्य: भक्त का दैन्य भाव, उसकी विवश एवं कातर अवस्था में ही प्रभु के आगे प्रकट होता है। अपने दुख को भक्त प्रभु के समक्ष करुण क्रन्दन द्वारा उन्मुक्त करता है।[7]

शरणागत होने के लिये छः नियम बताये गये हैं। इन नियमों का पालन करके आप चेतना में व्याप्त ईश्वर की शरण में जा सकते हैं। प्रभु की शरण प्राप्त करने के लिये साधक में श्रद्धा और विश्वास का होना आवश्यक है। उपनिषद् में भगवान् को 'शरणागत वत्सल' कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि भगवान् अपने शरण में आये हुये भक्त से उतना ही प्यार करते हैं तथा उतना ही पालन-पोषण करते हैं जितना कि एक माँ-बाप अपनी सन्तान से करते हैं।

---

[1] अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। २८।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥२९॥
(अहिर्बुध्न्यसंहिता ३७।२८२,९)॥
उपरोक्त श्लोक ब्रह्माण्डपुराण (३/४१/७६-७७) में भी उपलब्ध होता है।
[2] ऋग्वेद- (८/६३/१०)। अथर्ववेद- (९/२/११)।
[3] ऋग्वेद- (४/१८/२)।
[4] ऋग्वेद- (१/५७/१)। ऋग्वेद- (८/६६/१३)।
[5] ऋग्वेद- (६/४५/३)। ऋग्वेद- (१/३०/८)। ऋग्वेद- (२/४१/१०)।
[6] ऋग्वेद- (१०/२१/४)। ऋग्वेद- (७/२९/३)।
[7] ऋग्वेद- (२/३३/७)। ऋग्वेद- (१०/३३/३)।

शरणागति अत्यन्त दुर्लभ स्थिति है।[1] भगवद्गीता में कृष्ण ने अर्जुन को समस्त साधना का उपदेश करने के अनन्तर, अन्त में शरणागति की ही आज्ञा देते हैं। सत्य की शरण में जाना ही शरणागति है अथवा अहंकार का त्याग ही शरणागति है। एक ब्रह्म ही सत्य है **(एकं ब्रह्म द्वितीयो नस्ति)**। यह आत्मा ही ब्रह्म है **(अयमात्मा ब्रह्म)**। निष्कर्ष यह है कि आत्मा ही सत्य है। आत्मा ही जीवन का एक लक्ष्य है। आत्मा की शरण ही शरणागति है।

भगवान् शरणागत की समस्त आपदाओं से रक्षा करते हैं। संसार की समस्त परेशानियों, दुःख और समस्याओं की एकमात्र औषधि शरणागति है। समस्त दुःखों की जड़ माया है। इस माया जाल को पार कर पाना बहुत कठिन है। इस माया जाल को पार करने का एकमात्र उपाय शरणागति है- **'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां॥'**[2]

1.3.4 उपासना

प्रभु के समीप बैठना, प्रभु के संदर्शन में जीवन व्यतीत करना ही उपासना है। ऐसा करने वाला उपासक प्रभु का अनुग्रहभाजन (कृपा-पात्र) बनता है। भगवान् के सतत् ध्यान, चिन्तन, स्मरण, भगवान् पर अनन्य विश्वास और तत्परायण भजन का नाम उपासना है।[3] शङ्कराचार्य के अनुसार 'चित्त की एकाग्रता ही उपासना का स्वरूप है।'[4] वेदान्तसार के अनुसार 'सगुणब्रह्म विषयक मानसिक व्यापार उपासना है।'[5] उपासना की सटीक परिभाषा श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य में मिलती है।[6] आचार्य शङ्कर के अनुसार उपासना का प्रयोजन अभ्युदय, निःश्रेयस् और कर्मफल की समृद्धि है।[7] वेदान्तसार के अनुसार उपासना

---

[1] बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/१९)॥

[2] श्रीमद्भगवद्गीता- (७/१४)।

[3] उप समीपे आस्यते- स्थीयते अनेन इत्युपासना। (वेदान्तसार पृष्ठ संख्या- ५०)।

[4] उपासनं तु यथाशास्त्रसमर्थितं किञ्चिदालम्बनमुपादाय तस्मिन् समानचित्तवृत्तिसन्तानकरणं तद्विलक्षणप्रत्ययानन्तरितमिति। (छान्दोग्योपनिषद्भाष्यभूमिका)।

शाण्डिल्यविद्या का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् (३/१४/१) में विस्तार से किया गया है।

[5] उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाररूपाणि शाण्डिल्यविद्यादीनि॥ (वेदान्तसार पृष्ठ संख्या-१४)॥

[6] उपासनं नाम यथाशास्त्रम् उपास्यस्य अर्थस्य विषयीकरणेन सामीप्यम् उपगम्य तैलधारावत् समानप्रत्ययप्रवाहेण दीर्घकालं यद् आसनं तद् उपासनम् आचक्षते। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१२/३)। शास्त्रोक्त विधि से उपास्यवस्तु को बुद्धि का विषय बनाकर, उसके समीप पहुँचकर, तैलधारा के तुल्य समान वृत्तियों के प्रवाह से, जो दीर्घकाल तक स्थिति है वह उपासना हैं।
उपासनं तु यथाशास्त्रसमर्थितं किञ्चिदालम्बनमुपादाय तस्मिन् समानचित्तवृत्तिसन्तानकरणं तद्विलक्षणप्रत्ययानन्तरितमिति। (छान्दोग्योपनिषद्भाष्यभूमिका)। उपासना तो शास्त्रसम्मत किसी आलम्बन को ग्रहणकर उसमें, विजातीय प्रत्ययों के व्यवधान से रहित, सजातीय चित्तवृत्तियों को प्रवाहित करना है।

[7] तत्र कानिचिद् ब्रह्मण उपासनान्यभ्युदयार्थानि, कानिचित् क्रममुक्त्यर्थानि, कानिचित् कर्मसमृद्ध्यर्थानि। (ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य-१/१/११)। अर्थात् ब्रह्म की कुछ (नामब्रह्म आदि) उपासनाएँ अभ्युदय के लिये हैं। कुछ (दहरादि उपासनाएँ) क्रम-मुक्ति के लिये हैं। कुछ (उद्गीथादि उपासनाएँ) कर्मफल की समृद्धि के लिये हैं।

का परमप्रयोजन 'चित्त की एकाग्रता' है और अवान्तरफल 'सत्यलोक की प्राप्ति' है।[1] आचार्य शङ्कर और वेदान्तसार दोनों मतों में प्रयोजन को लेकर कोई विरोध नहीं है।

आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति उपासना का पर्याय है। शङ्कराचार्य ने उपासना को भक्ति के अर्थ में माना है।[2] उपासना में जब बुद्धितत्त्व का प्राधान्य हो तो ज्ञानमार्ग (निर्गुण या अव्यक्तोपासना) और जब हृदयतत्त्व का प्राधान्य हो तो भक्तिमार्ग (सगुण या व्यक्तोपासना) कहलाती है। निर्गुण उपासना का उपास्यतत्त्व निर्गुणब्रह्म है और सगुण उपासना का उपास्यतत्त्व सगुणब्रह्म है।

निर्गुण उपासना को अव्यक्तोपासना कहते हैं। अव्यक्त का अर्थ है- 'इन्द्रिय अगोचर'।[3] अव्यक्तोपासना का अर्थ है- 'अव्यक्ततत्त्व की उपासना'। अव्यक्ततत्त्व हमारी समस्त इन्द्रियों की पहुँच से परे है। अतः अव्यक्ततत्त्व की उपासना ज्ञान से की जाती है। ज्ञान की खोज (ज्ञानयज्ञ) भी एक प्रकार की भक्ति है। इसलिए निर्गुण उपासना को ज्ञानमार्ग कहते हैं। क्योंकि इसमें ज्ञान की प्रधानता है। निर्गुण उपासना का उपास्यतत्त्व निर्गुणब्रह्म है।

निर्गुण, निर्विशेष एवं समस्त उपाधियों से रहित अक्षरब्रह्म परमात्मा की उपासना (ध्यान) करना निर्गुण उपासना हैं।[4] कहीं-कहीं पर निर्गुण निर्विशेष तत्त्व के लिये विशेषणों का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः ये विशेषण महापुरुषों द्वारा प्रदत्त हैं। महापुरुष लोग इन विशेषणों के माध्यम से मन्दबुद्धि साधक को परमतत्त्व का बोध करवाते हैं। निर्गुण उपासक की विशेषताओं का उल्लेख भगवद्गीता में किया गया है।[5] निर्गुण उपासक ज्ञानयज्ञ द्वारा ब्रह्म की उपासना करते हैं।[6] निर्गुण उपासना से मोक्ष प्राप्त होता है।[1]

उपासना क उपरोक्त त्रिविध प्रयोजनों का उल्लेख छान्दोग्योपनिषद् की भूमिकाभाष्य में भी हुआ हैं।

[1] एतेषां नित्यादीनां बुद्धिशुद्धिः परं प्रयोजनमुपासनानां तु चित्तैकाग्र्यम्। (वेदान्तसार पृष्ठ संख्या-१७)।

[2] 'भजसेवायाम्, धातु से निष्पन्न 'भक्ति' शब्द का अर्थ है- 'सेवा करना'। आचार्य शङ्कर ने 'भक्ति' और 'उपासना' दोनों शब्दों का प्रयोग 'सेवा' अर्थ में किया है। जैसे- 'भजन्ति सेवन्ते।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-९/१३) और 'उपासते सेवन्ते।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-९/१४)। इसका तात्पर्य यह है कि आचार्य शङ्कर ने उपासना को भक्ति के अर्थ में माना है।

[3] अव्यक्तत्वाद् अशब्दगोचरम् इति न निर्देष्टुं शक्यते अतः अनिर्देश्यम् अव्यक्तं न केन अपि प्रमाणेन व्यज्यते इति अव्यक्तं।' (श्रीमद्भगवद्गीताशांकरभाष्य-१२/३)।

[4] श्रीमद्भगवद्गीता- (अध्याय-१२ भूमिकाभाष्य)।

ये च अन्ये अपि त्यक्तसर्वैषणाः सन्न्यस्तसर्वकर्माणो यथाविशेषितं ब्रह्म अक्षरं निरस्तसर्वोपाधित्वाद् अव्यक्तम् अकरणगोचरम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१२/१)।

श्रीमद्भगवद्गीता- (९/१४)।

[5] श्रीमद्भगवद्गीता (बारहवें अध्याय के श्लोक संख्या १३ से लेकर अध्याय समाप्ति पर्यन्त)।

[6] ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/१५)॥

सगुण उपासना को व्यक्तोपासना कहते हैं। व्यक्त का अर्थ है- 'इन्द्रिय गोचर'। व्यक्तोपासना का अर्थ है- 'व्यक्ततत्त्व की उपासना'। सगुण उपासना का उपास्यतत्त्व सगुणब्रह्म है। सगुण उपासना में उपासक अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परमेश्वर की प्रत्यक्ष सेवा करता है। प्रत्यक्ष सेवा में ध्यान का बहुत महत्त्व है। सम्पूर्ण ऐश्वर्य एवं शक्तियों से युक्त तथा सत्त्वगुणरूप उपाधि वाले परमेश्वर की उपासना (ध्यान) करना सगुण उपासना है।[2]

सगुण उपासना का अनुष्ठान भगवद्गीता के श्लोक (११/५५) के अर्थ के अनुसार किया जाता है।[3] भगवद्गीता के दसवें अध्याय में भगवान् की दिव्य विभूतियों का वर्णन किया गया है। दिव्य विभूतियों का प्रयोजन सगुण उपासना है। ओङ्कार भगवान् की एक दिव्य विभूति है।[4] अतः ओङ्कारोपासना (जप या ध्यान) करने से साधक को मोक्ष प्राप्त होता है।[5] सगुण उपासक की विशेषताओं का उल्लेख भगवद्गीता में किया गया है।[6] सगुण उपासना का फल मोक्ष की प्राप्ति है।[7]

सामवेद उपासनाओं का वेद है। सामवेद के अधिकतर मन्त्र उपासना से सम्बन्ध रखते हैं। ओङ्कार की उपासना करने से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति होती है।[8] छान्दोग्योपनिषद् में उद्गीत की दृष्टि से ओङ्कारोपसना हुई है तथा उद्गीत की उपासना विधि को बताया गया है।[9] छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार उद्गीत, प्रणव या साम की उपासना अनेक प्रकार की है। शाण्डिल्यविद्यादि उपासनायें अपरब्रह्म की उपासनायें हैं।[10]

अन्तःकरण तत्त्वज्ञान का साधन है। शुद्ध अन्तःकरण में ही ज्ञानोदय सम्भव है। अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिये अनेक उपाय प्राप्त होते है। जिनमें से उपासना भी अन्तःकरण को शुद्ध करने का एक उपाय है। पवित्र अन्तःकरण में ज्ञानोदय होता है। विवेकज्ञान से मनुष्य के मन में वैराग्य पैदा होता है। यह वैराग्य मुक्तिमार्ग की यात्रा में सहायक होता है।

---

[1] सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः। ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१२/४)॥

[2] श्रीमद्भगवद्गीता- (अध्याय-१२ भूमिकाभाष्य)।

[3] नित्ययुक्ता अतीतानन्तराध्यायान्तोक्तश्लोकार्थन्यायेन सततयुक्ताः सन्त उपासते श्रद्धया परया प्रकृष्टया उपेतः। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१२/२)।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/५५)॥ अर्थात् ईश्वर के लिये कर्म करना, तत्परायण होना, उसकी भक्ति में रत रहना, प्रीति भाव रहित, सब भूतों में वैरभाव रहित होना।

[4] 'प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः।' (श्रीमद्भगवद्गीता-७/८)।

[5] 'ओङ्कारस्य उपासनं कालान्तरे मुक्तिफलम् उक्तम्।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-८/११)।

[6] श्रीमद्भगवद्गीता- (१२/२)।

[7] श्रीमद्भगवद्गीता- (१२/१०)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१२/२)। श्रीमद्भगवद्गीता- (११/५५)।

[8] आत्ययिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वान् अक्षरमुद्गीथमुपास्ते। (छान्दोग्योपनिषद्-१/१/७)।

[9] 'ओमित्येतदक्षरं उद्गीथ।' (छान्दोग्योपनिषद्-१/१/१)।

[10] छान्दोग्योपनिषद्- (३/१४/१)।

वैदिकभक्ति के तीन अङ्ग हैं- स्तुति, प्रार्थना और उपासना। वेद में अनेक तरह की उपासनाएँ मिलती हैं। वेदों के तत्त्व विवेचन के दौरान उपनिषद् में उपासना का स्वरूप स्पष्ट हुआ। परन्तु यहाँ पर उपनिषद् के ज्ञानकाण्ड ने भक्ति को जकड़ लिया। भक्ति का पुनरुत्थान भगवद्गीता में आकर हुआ। श्रीकृष्ण ने भक्ति को उसके आदर्शों तक पहुँचाया। कृष्ण ने जिस भक्ति-भावना का सूत्रपात गीता में किया था उसका व्यापक विस्तार पुराणों में देखा गया। भगवद्गीता में जिस भक्ति-भावना की प्रतिष्ठा हुई उसकी अविरल धारा पुराणों से होती हुई सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुई।

उपरोक्त विश्लेषण का निष्कर्ष यह कि भगवत्सम्बन्धी जिस भावना को वेद में भक्ति कहा गया। वह उपनिषदों में आकर उपासना कहलायी। अन्ततोगत्वा भगवत्सम्बन्धी यह भावना गीता में आकर भक्ति कहलायी।

1.3.5 भक्ति: मुक्ति का सर्वोत्तम मार्ग

मोक्ष परमेश्वर का स्वरूप है। वह परमेश्वर का परमधाम है। परमेश्वर के परमधाम की यात्रा करने के लिये अनेक आध्यात्मिक मार्ग उपलब्ध होते हैं। प्रमुख मार्गों की संख्या चार है- १. ज्ञानमार्ग, २. कर्ममार्ग, ३. योगमार्ग और ४. भक्तिमार्ग।[1]

भक्ति प्रत्येक व्यक्ति के लिये समान रूप से उपलब्ध है। भक्तिमार्ग पर चलने के लिये किसी भी प्रकार की योग्यता या पूर्वशर्त की अनिवार्यता नहीं है। इसलिये यह मार्ग सबसे सरल है, सुगम है, और सर्वश्रेष्ठ है। भक्तिमार्ग में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है। मुक्ति के अन्य तीन मार्गों की यात्रा कर पाना कठिन काम है क्योंकि उन मार्गों पर चलने के लिये उसकी योग्यता रखना अनिवार्य है। तीनो मार्गों की योग्यतायें निम्न प्रकार हैं-

(i) ज्ञानमार्ग

ज्ञानमार्ग को निवृत्तिमार्ग भी कहते हैं। ज्ञानमार्ग का सूत्रपात **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'**[2] के माध्यम से किया गया। ब्रह्मजिज्ञासा का अधिकारी वही व्यक्ति हो सकता है जो साधन-चतुष्टय से सम्पन्न हो। साधन चतुष्टय की योग्यता रखने के लिये वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करना आवश्यक होता है। वेदादि शास्त्रों का अध्ययन कर पाना एक सामान्य मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर की बात है।

(ii) कर्ममार्ग

---

[1] ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना। अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१३/२४)॥

[2] ब्रह्मसूत्र- (१/१/१)।

कर्ममार्ग को प्रवृत्तिमार्ग भी कहते हैं। कर्ममार्ग का सूत्रपात **'अथातो धर्मजिज्ञासा'**[1] के माध्यम से किया गया। कर्ममार्ग का अधिकारी वही व्यक्ति हो सकता है जिसने वेदवाक्यों का अध्ययन किया हो, जिसने विधिवाक्यों का अध्ययन किया हो, जिसके पास श्रौतकर्मज्ञान हो, जिसके पास गार्ह्यकर्मज्ञान हो इत्यादि। कर्ममार्ग पर चलने के लिये व्यक्ति के अन्दर फलासक्ति रहित कर्म करने की भावना का होना अनिवार्य है। निष्कामकर्म का आचरण करना बहुत दुष्कर होता है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कर्ममार्ग की यात्रा कर पाना एक सामान्य मनुष्य के लिये कठिन काम है।

(iii) योगमार्ग

योगमार्ग को राजयोग भी कहते हैं। **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'**[2] महर्षि पतञ्जलि ने समाधि का प्रयोग योग के पर्याय के रूप में किया है।[3] योगमार्ग के माध्यम से कैवल्य प्राप्त करने के लिये अभ्यास, वैराग्य और अष्टांगयोग का आचरण करना पड़ता है जो एक सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य के लिये सम्भव नहीं है। शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति योगासन नहीं कर सकता।

(iv) भक्तिमार्ग

ज्ञानमार्ग पर चलने के लिये विशेष योग्यता रखना अनिवार्य है। कर्ममार्ग पर चलने के लिये विशेष योग्यता रखना अनिवार्य है। योगमार्ग पर चलने के लिये विशेष योग्यता रखना अनिवार्य है। इन सबके विपरीत भक्तिमार्ग पर चलने के लिये किसी भी प्रकार की योग्यता रखना अनिवार्य नहीं है। इसी कारण से भक्तिमार्ग मुक्ति का सबसे सरल, सरस और सुगम मार्ग कहलाता है।

दुनियाँ का हर एक व्यक्ति आध्यात्मिक यात्रा करना चाहता है। भक्तिमार्ग की सुगमता को देखकर लोगों की रुचि भक्तिमार्ग की तरफ तेजी से बढ़ी। भक्तिमार्गीय सन्तों ने अधिक से अधिक लोगों के कल्याण के लिये व्यापक स्तर पर साहित्य का सृजन किया। उन्होंने क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से भक्ति का प्रचार-प्रसार तीव्रगति से किया।

भक्ति ने प्रत्येक व्यक्ति के लिये मुक्ति का मार्ग खोल दिया। भक्ति का दरवाजा सबके लिये खुला हुआ है। भक्तिमार्ग प्रत्येक व्यक्ति के लिये समान रूप से उपलब्ध है। भक्तिमार्ग सबके लिये आसानी से उपलब्ध है। भक्तिमार्ग में किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं है।

---

[1] जैमिनीयसूत्र- (१/१)।

[2] योगसूत्र- (१/२)।

[3] 'योगः समाधिः।' तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि। (योगसूत्र-३/३)।

भक्ति ने समाज को एकसूत्र में बाँधने का काम किया है। भक्तिमार्ग में छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, जाति-पाँति, गरीब-अमीर, कमजोर-बलशाली, विक्लांग, ज्ञानी-अज्ञानी, महिला-पुरुष आदि का कोई भेदभाव नहीं है। भगवद्गीता कहती है- **'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥'**[1] श्रीकृष्ण कहते हैं कि भगवद्भक्त शूद्र नहीं हो सकता- **'न शूद्रा भगवद्भक्ताः विप्रा भागवतास्मृताः। सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये हि अभक्ता जनार्दने॥'**[2]

भक्तिमार्ग मुक्ति का मार्ग है। भक्तिमार्ग भगवत्प्रेम का मार्ग है। भक्तिमार्ग शरणागति का मार्ग है। भक्तिमार्ग प्रभुकृपा का मार्ग है। भक्तिमार्ग प्रियत्व का मार्ग है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं- **'तस्माद् योगी भव अर्जुन'। तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥**[3] **योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥**[4]

1.4 भक्ति के भेद

विषय विश्लेषण की सुविधा को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत शीर्षक को तीन उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है- १. विभिन्न आचार्यो का मत, २. पराभक्ति और अपराभक्ति, ३. नवधा भक्ति। नारद, शाण्डिल्य, शङ्कराचार्य, वल्लभाचार्य, मधुसूदन आदि आचार्यों ने भक्ति के भेदों का वर्गीकरण अलग-अलग तरीके से किया है। उन्होंने भक्ति के भेदोपभेद और उसके स्वरूप को परिभाषित किया है। भक्ति के समस्त भेदोपभेद का अन्तर्भाव परा-अपरा भक्ति में करने का प्रयास किया गया है। तीसरे उपशीर्षक के अन्तर्गत यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार से नवधाभक्ति की गणना सगुणभक्ति (अपराभक्ति) में की जाती है।

प्रस्तुत शीर्षक में दो पूरक उपशीर्षक को भी शामिल किया गया है- १. भक्ति साध्य है या साधन?, २. एकादश आसक्तियाँ। इसमें यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि भक्ति साध्य और साधन दोनों है। भक्ति अपने अङ्ग साधनों की साध्य है तथा भक्ति मोक्ष का साधन है। अन्तिम उपशीर्षक में एकादश आसक्तियों की अवधारणा को बताया गया है।

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३२)।
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३२)॥
आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/२३)॥
अतो ह्यविपक्वभावानामपि तल्लोके॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/२४)॥
महापातकिनान्त्वार्तौ॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/२७)॥
[2] श्रीमद्भगव्द्गीता- ()।
[3] श्रीमद्भगवद्गीता- (६/४६)।
[4] श्रीमद्भगवद्गीता- (६/४७)।

1.4.1 विभिन्न आचार्यों के मत

नारदभक्तिसूत्र के अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है- पहली पराभक्ति और दूसरी गौणी ' या अपराभक्ति'। नारदभक्तिसूत्र में एक अन्य स्थल पर ऐसा कहा गया है कि एक प्रकार की होती हुई भी भक्ति एकादश भेदों वाली हो जाती है।[1] इनकी गणना एकादश आसक्तियों में भी की जाती है, जो भक्ति-भावना की परवर्ती होती हैं।

शाण्डिल्यभक्तिसूत्र के अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है- पहली मुख्या और दूसरी इतरा।[2] इतरा को गौणीभक्ति भी कहते है।[3] इस गौणीभक्ति के तीन भेद हैं- सात्त्विकी, राजसी और तामसी।[4]

भक्तिरसामृतसिन्धु के अनुसार मुख्य रूप से भक्ति के दो भेद हैं- पराभक्ति (सिद्धावस्था) और गौणीभक्ति।[5] गौणीभक्ति साधनावस्था के अन्तर्गत आती है। गौणीभक्ति के दो भेद हैं- वैधी और रागानुरागी। वैधीभक्ति में विधि-निषेध का अनुशरण होता है। रागानुरागीभक्ति प्रेम पर अवलम्बित है। रागानुरागीभक्ति को पराभक्ति की अन्तिम सीढ़ी माना गया है। रागानुरागीभक्ति के दो भेद हैं- कामाख्यारूपा और सम्बन्धरूपा।[6] गोपियों की भक्ति कामरूपाभक्ति थी। भगवान् और भक्त का सम्बन्धरूपा यह (सम्बन्धरूपाभक्ति) भक्ति चार भेदों वाली हैं- दास्य, सख्य, वात्सल्य और दाम्पत्य। दास्यभक्ति के आदर्श हनुमान् हैं। सख्यभक्ति के आदर्श उद्धव, अर्जुन और सुदामा हैं। वात्सल्यभक्ति के आदर्श नन्द, यशोदा और देवकी हैं। दाम्पत्यभक्ति के आदर्श राधा और रुक्मिणी हैं।

आचार्य वल्लभ भक्ति के दो भेद मानते हैं- विहिता और अविहिता।[7] वल्लभ की विहिताभक्ति नारद और रूपगोस्वामी की पराभक्ति के समकक्ष है। गौणीभक्ति रागानुरागीभक्ति के समकक्ष है। आचार्य वल्लभ का यह विभाजन भक्तिरसामृतसिन्धु के सदृश है।

श्रीमद्भागवत में नवधा-भक्ति का वर्णन मिलता है।[8] नवधाभक्ति का विस्तृत विवेचन आगे इसी अध्याय में किया जायेगा। मुक्ताफल नामक ग्रन्थ के रचनाकार आचार्य बोपदेव हैं। मुक्ताफल नामक ग्रन्थ ने भक्ति के भेदोपभेद का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। मुक्ताफल

---

[1] नारदभक्तिसूत्र- (८२)।
[2] शाण्डिल्यभक्तिसूत्र- (१०)।
[3] शाण्डिल्यभक्तिसूत्र- (२०)।
[4] शाण्डिल्यभक्तिसूत्र। शाण्डिल्य ने सात्त्विकी को जिज्ञासु भक्त, राजसी को आर्तभक्त और तामसी को अर्थार्थी भक्त के समान कहा। (नारदभक्तिसूत्र- ५६) और (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र- ७२)।
[5] भक्तिरसामृतसिन्धु- (पूर्वविभाग, लहरी- २)।
[6] 'सा भक्तिः साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता।' (भक्तिरसामृतसिन्धु, पूर्वविभाग, लहरी-२)।
[7] ब्रह्मसूत्राणुभाष्य- (३/३/३९)।
[8] श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (श्रीमद्भागतपुराण- ७/५/२३)।

के अनुसार मुख्य रूप से भक्ति दो प्रकार की होती है- पहली विहिता और दूसरी निषिद्धा। भक्तिमीमांसासूत्र नामक ग्रन्थ में भक्ति के भेदोपभेद का विस्तृत विवेचन किया गया है।

आचार्य शङ्कर ने गीता (१८/५४, ५५) के भाष्य में पराभक्ति और अपराभक्ति का संकेत किया है। उनके अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है- पहली पराभक्ति और दूसरी अपराभक्ति। आर्त, अर्थार्थी और जिज्ञासु भक्तों द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को अपराभक्ति कहते हैं। ज्ञानीभक्त द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को पराभक्ति कहते हैं।

उपरोक्त सभी मतों का विस्तृत अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि भक्ति के समस्त भेदोपभेद का अन्तर्भाव परा और अपरा भक्ति में किया जा सकता है। निष्काम भावना युक्त, ज्ञान लक्षण वाली, अनन्य प्रेम वाली, अनन्य भक्ति को पराभक्ति कहते हैं।[1] सगुण भक्त की भक्ति को अपराभक्ति कहते हैं। अपराभक्ति सकाम और रागात्मिका वृत्ति वाली है। अतः पराभक्ति को अपराभक्ति से श्रेष्ठ कहा जाता है। वस्तुतः पराभक्ति साध्यावस्था है और अपराभक्ति साधनावस्था है।

किरण शर्मा ने अपने शोधप्रबन्ध 'भक्ति-वेदान्त' में भक्ति के भेदों का विस्तृत विवेचन किया है।[2] अपने इस विवेचन में उन्होंने बहुत ही तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया है। उन्होंने भिन्न-भिन्न आधारों पर भक्ति के भिन्न-भिन्न भेद किये हैं-

(क) साधना पक्ष के आधार पर: नवधाभक्ति।

(ख) आलम्बन के आधार पर: निर्गुण और सगुण (भगवद्गीता बारहवाँ अध्याय)।

(ग) मानवीय वृत्तियों के अनुसार: १. सात्त्विक- मुक्ति कामना। २. राजसी- धनकुटुम्ब की इच्छा। ३. तामसी- दूसरों के अहित तथा शत्रुनाश। ४. निर्गुण- कामना रहित (मुक्ति की कामना से भी रहित)।

(घ) साधना भेद के अनुसार: १. वैधीभक्ति- शास्त्र विधि के अनुसार भजन। २. रागानुरागीभक्ति- लोभयुक्त विधि मार्ग से भजन।

(ङ) स्तर के आधार पर: १. गौणीभक्ति- साधनावस्था में गौणी तथा सिद्धावस्था में पराभक्ति। २. पराभक्ति- शाण्डिल्य और नारदभक्तिसूत्र के अनुसार।

---

[1] 'एवम्भूतो ज्ञाननिष्ठो मद्भक्तिं मयि परमेश्वरे भक्तिं भजनं पराम् उत्तमां ज्ञानलक्षणां चतुर्थीं लभते 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इति उक्तम्।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५४)।

[2] किरण शर्मा द्वारा लिखित 'भक्ति वेदान्त' नामक लघुशोध प्रबन्ध।

(च) भक्तों की दृष्टि से: १. आर्त्त, २. अर्थार्थी, ३. जिज्ञासु और ४. ज्ञानी।

(छ) भक्त की भावना के अनुसार: कृष्णराज कविराज ने चार भेद किये हैं- १. दास्यभावना, २. सख्यभावना, ३. वात्सल्यभावना और ४. श्रृंगारभावना।

(ज) प्रयोजनीय लक्ष्य की दृष्टि से: जीवगोस्वामी ने तीन भेद किये हैं- १. सकामभक्ति- अभिलाषा पूर्ति के लिये। २. कैवल्यकाम भक्ति- इसका उद्देश्य ऐक्य है। ३. भक्तिमात्रकाम भक्ति- लौकिक, अलौकिक कामना रहित भक्ति जिसका उद्देश्य एकमात्र ईश्वर की भक्ति करना।

(झ) रति भेद के अनुसार: १. शान्त, २. दास्य, ३. सख्य, ४. वात्सल्य और ५. मधुर।

(ञ) जीव भेद के अनुसार: वल्लभ के अनुसार भक्ति के दो भेद हैं- १. पुष्टिभक्ति- पुष्टि में मोक्ष प्राप्त। २. मर्यादाभक्ति- यह भजन पूजन साधनों से उपलब्ध होती है इसमें फल की अपेक्षा भक्ति की अपेक्षा होती है।

1.4.2 पराभक्ति और अपराभक्ति

भक्ति एक अनुराग है।[1] अनुराग का विषय परमात्मा (परब्रह्म परमेश्वर) है। मुक्ति के प्रसंग में भक्ति का विषय केवल परब्रह्म होता है। अनुराग ईश्वर के अतिरिक्त लोक को भी अपना विषय बनाता है। इस तरह से अनुराग का विषय दो प्रकार का हो सकता है- पहला अलौकिक विषय और दूसरा लौकिक विषय। लोकविषयक अनुराग देव, गुरु, माता-पिता, सखा और पुत्र इत्यादि को अपना विषय बनाता है। जिसके फलस्वरूप देवभक्ति, गुरुभक्ति, मातृभक्ति, पितृभक्ति, सखाभक्ति और वात्सल्यभक्ति देखने को मिलती है। इस भक्ति को अपराभक्ति या गौणीभक्ति भी कहते हैं। परमेश्वर विषयक अनुराग को पराभक्ति कहते हैं।

पराभक्ति को मुख्याभक्ति[2], साध्यभक्ति, शुद्धभक्ति, अनन्यभक्ति, अहैतुकीभक्ति, प्रेमाभक्ति, भावभक्ति, सहजाभक्ति, अव्यभिचारिणीभक्ति, आत्मविषयक ज्ञानस्वरूपा पराभक्ति और सिद्धभक्ति भी कहते हैं। अपराभक्ति को गौणीभक्ति एवं साधनभक्ति भी कहते हैं।

भक्त का आश्रय परमेश्वर हैं। ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों का त्याग अनन्यता कहलाती है।[3] जो भक्ति ईश्वर को छोड़कर अन्य किसी वस्तु में कभी नहीं होती है वह

[1] सा परानुरक्तिरीश्वरे। (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/१/२)।
[2] सा मुख्येतराऽपेक्षितत्वात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/२/१)॥
[3] तस्मिन्नननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च॥ (नारदभक्तिसूत्र-९)॥ अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता॥ (नारदभक्तिसूत्र-१०)॥

अनन्यभक्ति कहलाती है।[1] अनन्यभक्त को परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की उपलब्धि नहीं होती है। ईश्वर प्राप्ति के अनन्तर अन्य किसी इच्छा की आवश्यकता नहीं रह जाती है। ज्ञानीभक्त को अनन्यप्रेमी कहा जाता है।

भगवान् भाव प्रधान हैं- **'भावग्राही जनार्दनः।'** ईश्वर का अनन्यध्यान (एकाग्रध्यान) ही भाव है। भाव रहित भक्ति से मुक्ति नहीं मिल सकती है। जैसे- एक पक्षी मन्दिर के अन्दर निवास करता है। फिर भी वह मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। क्योंकि उस पक्षी के पास भक्ति-भाव का अभाव है।

प्रेमाभक्ति अर्थात् भगवत्-प्रेम। भक्ति प्रेमरूपा है। प्रेम भगवान् का रूप है और भगवान् प्रेमरूप हैं। प्रभु प्रेम के स्रोत एवं लय स्थान हैं। प्रेम से विमुख होना मतलब प्रभु से विमुख होना है। वल्लभाचार्य के शब्दों में- 'प्रेम वह सूत्र है जो पृथक् पड़े हुये दो सत्त्वों (तत्त्वों) को संयुक्त कर देता है।'[2] प्रेमाभक्ति एक अन्तरङ्ग अनुभूति है। प्रेमाभक्ति की अवस्था को प्राप्त करने के बाद ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रह जाता है।[3] इस अवस्था को प्राप्त करने वाला इसकी व्याख्या नहीं कर सकता है। क्योंकि प्रेमाभक्ति की अवस्था अनिर्वचनीय है।[4]

पराभक्ति प्रभु की कृपा से मिलती है। पराभक्ति एक चक्षु है जिससे ईश्वर साक्षात्कार होता होता है। साक्षात्कार के बाद भक्त उन्मत्त, तृप्त और आप्तकाम हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्यचक्षु दिया था। भक्ति प्रकाशस्वरूप है। यह प्रभुकृपा से प्राप्त होती है। भक्ति एक प्रकाश है जो एक अवस्था के बाद मिलता है।

---

[1] तेषां चतुर्णां मध्ये ज्ञानी तत्त्ववित् तत्त्ववित्त्वाद् नित्ययुक्तो भवति एकभक्तिः च अन्यस्य भजनीयस्य अदर्शनाद् अतः स एकभक्तिः विशिष्यते। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/१७)। मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१३/११)॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/२२)॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/१४)॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/५४)॥

[2] भागवतपुराण (दशम स्कन्ध का उत्तरार्द्ध ११, २५) के सुबोधिनीभाष्य में आचार्य वल्लभ लिखते हैं- 'प्रेमैव बन्धनम् इति भगवत्प्रेम्णैव सा बद्धा तिष्ठति।

[3] तत् प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव श्रृणोति, तदेव भाषयति, तदेव चिन्तयति॥ (नारदभक्तिसूत्र-५५)॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-६/३०)॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१०/९)॥)॥

[4] प्रकाशते क्वापि पात्रे॥ (नारदभक्तिसूत्र-५२)॥ गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम्॥ (नारदभक्तिसूत्र-५४)॥

नारदभक्तिसूत्र के अनुसार पराभक्ति ग्यारह रूपों में दिखायी दे सकती है। इन एकादश रूपों को एकादश आसक्तियाँ भी कहते हैं।[1] भगवद्भक्ति के आनन्द में संलिप्त भक्तों के ऐसे व्यवहार जो भक्ति-भावना के परवर्ती हो उनकी गणना आसक्तियों में की जाती है।

अपराभक्ति के अन्तर्गत नवधाभक्ति और देवभक्ति को रखा जाता है। अपराभक्ति के अङ्गों का उल्लेख श्रीमद्भगवद्गीता के नवम अध्याय (श्लोक सं. १३ से लेकर श्लोक सं. २९ तक) में विस्तार से किया गया है।[2] नारदभक्तिसूत्र (सूत्र सं. ५६ से लेकर सूत्र सं. ६० तक) में अपराभक्ति की व्याख्या की गयी है।[3] नवधाभक्ति अपराभक्ति में आती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि 'नवधाभक्ति ही अपराभक्ति का स्वरूप है।' नवधाभक्ति का विस्तृत विवेचन आगे इसी अध्याय में किया जायेगा।

देवभक्ति से मुक्ति मिलती है।[4] क्योंकि देवताओं की पूजा अप्रत्यक्षतः परमेश्वर की ही पूजा है।[5] अज्ञानी मनुष्य अपने अज्ञान के कारण देवताओं को परमेश्वर से पृथक् समझकर भजता है। यहाँ पर देवभक्ति की निन्दा की गयी है। क्योंकि देवभक्ति की गणना अपराभक्ति में की जाती है।[6] अपराभक्ति की गणना योग के अन्तर्गत की जाती है। भक्ति समाधि का अङ्ग है।[7]

आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है- पहली पराभक्ति और दूसरी अपराभक्ति। आर्तादिभक्तत्रय द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को अपराभक्ति कहते हैं और ज्ञानीभक्त द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को पराभक्ति कहते हैं। अपराभक्ति सकाम और रागात्मिका वृत्ति वाली होती है। पराभक्ति निष्काम भावना युक्त, ज्ञानलक्षण वाली और अनन्य प्रेम वाली होती है।[8] ब्रह्मभाव को प्राप्त हुये साधक को

---

[1] नारदभक्तिसूत्र- (८२)।

[2] अन्तराले तु शेषाः स्युरुपास्त्यादौ च काण्डत्वात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/३)॥ अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता ९/१३ से लेकर ९/२९ तक के बीच में अपराभक्ति और उसके अङ्गों का अभिधान किया गया है।

[3] गौणी त्रिधा, गुणभेदाद् आर्तादिभेदाद् वा॥ (नारदभक्तिसूत्र- ५६)॥ उत्तरस्मादुत्तरस्मात् पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति॥ (नारदभक्तिसूत्र-५७)॥ अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ॥ (नारदभक्तिसूत्र-५८)॥ प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात् (च)॥ (नारदभक्तिसूत्र-५९)॥ शान्तिरूपात् परमानन्दरूपाच्च॥ (नारदभक्तिसूत्र-६०)॥

[4] जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/९)॥

[5] येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः। तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वक॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/२३)॥

[6] देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/२३)॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/२१)॥

[7] ईश्वरप्रणिधानाद्वा। (योगसूत्र-१/२३)।

[8] सा इयं ज्ञाननिष्ठा आर्तादिभक्तत्रयापेक्षया परा चतुर्थी भक्तिः इति उक्ता। तया परया भक्त्या भगवन्तं तत्त्वतः अभिजानाति। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५५)। वही यह ज्ञाननिष्ठा आर्तादि भक्तियों की अपेक्षा से चतुर्थी परा भक्ति कही गयी है। उस

पराभक्ति मिलती है।[1] भक्त भक्ति के द्वारा भगवान् को तत्त्व से जान लेता है।[2] जिससे उसकी भेदबुद्धि निवृत्त हो जाती है। पराभक्ति से मुक्ति मिलती है।[3]

भक्तिवेदान्त के अनुसार साधन भी भक्ति है और मोक्ष (साध्य) भी भक्ति है। साधनभक्ति को अपराभक्ति और साध्यभक्ति को पराभक्ति कहते हैं। अपराभक्ति साधन है और पराभक्ति उसका साध्य है।

नारदभक्तिसूत्र के अनुसार पराभक्ति वह आनन्द है जो ईश्वर दर्शन के बाद उत्पन्न होता है। ईश्वर साक्षात्कार के बाद जो अनुभव उत्पन्न होता है वह अमृतस्वरूप है।[4] पराभक्ति की अवस्था सिद्धावस्था है। अतः ईश्वर साक्षात्कार के बाद साधक सिद्ध हो जाता है, अमृत हो जाता है, तृप्त (आप्तकाम) हो जाता है।[5] क्योंकि वह अवस्था पूर्णता की अवस्था है।

नारदभक्तिसूत्र अपराभक्ति को परिभाषित करते हुये कहता है- 'अपने हृदय के अन्दर निवास करने वाले भगवान् के प्रति होने वाला परमप्रेम ही भक्ति है।'[6] पूजा, स्मरण, कीर्तन, सेवा आदि को सम्पादित करना अपराभक्ति है। सम्पादन कार्य क्रियात्मक (चेष्टायुक्त) होता है। अतः साधनभक्ति भी क्रियात्मक है।[7]

मुक्ति केवल पराभक्ति से ही प्राप्त हो सकती है।[8] अपराभक्ति स्वतन्त्र रूप से मुक्ति तक पहुँचाने में सक्षम नहीं है। अपराभक्ति साधक को पराभक्ति तक ले जाती है। पराभक्ति साधक

(ज्ञाननिष्ठारूप) पराभक्ति से भगवान् को तत्त्व से जानता है। जिससे उसी समय ईश्वर और क्षेत्रज्ञ विषयक भेदबुद्धि पूर्ण रूप से निवृत्त हो जाती है। इसीलिये ज्ञाननिष्ठा रूप भक्ति से मुझे जानता है।

एवम्भूतो ज्ञाननिष्ठो मद्भक्तिं मयि परमेश्वरे भक्तिं भजनं पराम् उत्तमां ज्ञानलक्षणां चतुर्थी लभते 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इति उक्तम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५४)। अर्थात् ऐसा ज्ञाननिष्ठ पुरुष, मुझ परमेश्वर की ज्ञानरूप पराभक्ति को पाता है, अर्थात् 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इसमें जो चौथी भक्ति कही गयी है उसको पाता है।

[1] ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५४)॥

[2] भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशतो तदनन्तरम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५५)॥

[3] पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। (श्रीमद्भगवद्गीता-८/२२)। अर्थात् परमात्मा, अनन्य भक्ति से यानी आत्मविषयक ज्ञानरूप भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशतो तदनन्तरम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५५)॥

[4] अमृतस्वरूपा च॥ (नारदभक्तिसूत्र-३)॥

[5] यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति॥ (नारदभक्तिसूत्र-४)॥ यत् प्राप्य न किञ्चित् वाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति॥ (नारदभक्तिसूत्र-५)॥ यत् ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति॥ (नारदभक्तिसूत्र-६)॥

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-३/२२)॥

[6] सा त्वस्मिन परम प्रेमरूपा॥ (नारदभक्तिसूत्र-२)॥

[7] न क्रिया कृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत्॥ (१/१/७)॥

[8] परां कृत्वैव सर्वेषां तथा ह्याह॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/२९)॥

को मुक्ति तक पहुँचाती है। उपरोक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि अपराभक्ति साधन है पराभक्ति का और पराभक्ति साधन है मुक्ति का।

'भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥'[1] प्रस्तुत श्लोक पराभक्ति के स्वरूप की स्पष्ट व्याख्या करता है। पराभक्ति से मुक्ति मिलती है।[2] भगवद्गीता में सर्वत्र ऐसा कहा गया है कि पराभक्ति से मुक्ति मिलती है।[3] श्रीकृष्ण के प्रति व्रजगोपिकाओं की भक्ति एक पराभक्ति का उदाहरण है।[4]

शाण्डिल्यभक्तिसूत्र भक्तिचन्द्रिकाभाष्य के अनुसार मुक्ति का साधन पराभक्ति है। मुक्ति साध्य है और पराभक्ति उसका साधन है। पराभक्ति एक अन्तरङ्ग अनुभूति है जिससे मुक्ति मिलती है। पराभक्ति के साधन दो तरह के हैं- पहला अन्तरङ्गसाधन (ज्ञान) और दूसरा वहिरङ्गसाधन (अपराभक्ति)। ज्ञान पराभक्ति का अन्तरङ्गसाधन है। अपराभक्ति पराभक्ति का वहिरङ्गसाधन है।

शमदमादि ज्ञान के अङ्ग हैं। ज्ञान के लिये इन अङ्गों की आवश्यकता पड़ती है। ज्ञानाङ्गों के अभ्यास से सगुणब्रह्म दिखायी देता है। फिर भक्ति का उद्भव स्वयमेव होता है।[5] जबतक पराभक्ति की प्राप्ति न हो जाय तब तक श्रवण, मनन, निदिध्यासन, अनुष्ठान, ब्रह्मज्ञान आदि का विशुद्ध रूप से अभ्यास करते रहना चाहिये।[6]

अपराभक्ति पराभक्ति का वहिरङ्गसाधन है। अपराभक्ति के अन्तर्गत नवधाभक्ति की गणना की जाती है। अपराभक्ति की गणना योग के अन्तर्गत की जाती है। भक्ति समाधि का अङ्ग है।[7]

सभी प्रकार की अपराभक्ति पराभक्ति का कारण होती है। जैसे- सकारात्मकभाव अपराभक्ति के अन्तर्गत आता है। क्योंकि सकारात्मकभाव पुण्यकर्मों से उत्पन्न होता है। भगवद्गीता के

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/१३)।

[2] परां कृत्वैव सर्वेषां तथा ह्याह॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/२९)॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६८)॥

[3] सैकान्तभावे गीताऽर्थप्रत्यभिज्ञानात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/२८)॥

[4] यथा व्रजगोपिकानाम्॥ (नारदभक्तिसूत्र- २१)॥ या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खेङ्गनार्भकरुदितोक्षणमार्जनादौ। गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥ (भागवतपुराण-१०/४४/१५)॥

[5] तदङ्गानाञ्च॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/१/२)॥

[6] बुद्धिहेतुप्रवृत्तिराविशुद्धेरवघातवत्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/१/१)॥

[7] ईश्वरप्रणिधानाद्वा। (योगसूत्र-१/२३)।

अनुसार पुण्यकर्म वाले लोग भगवद्भजन करते हैं। भक्त चार प्रकार के हैं- १. आर्त २. जिज्ञासु ३. अर्थार्थी और ४. ज्ञानी।[1]

ज्ञान भक्ति का अन्तरङ्गसाधन है। आर्तादिभक्तत्रय की भक्ति ज्ञान (ज्ञानी भक्त की भक्ति) का साधन है। प्रथम तीन भक्तों की भक्ति से ज्ञानीभक्त की भक्ति को सम्पन्न किया जाता है। जिससे पराभक्ति का उद्भव होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रथम तीन भक्ति अन्तिम भक्ति (ज्ञान) को विकसित करती है और ज्ञान पराभक्ति तक ले जाता है। निष्कर्षतः आर्तादि अङ्ग है ज्ञान का और ज्ञान अङ्ग है पराभक्ति का।

मुक्ति केवल पराभक्ति से ही प्राप्त हो सकती है। आर्तादि प्रथम तीन भक्ति स्वतन्त्र रूप से मुक्ति तक पहुँचाने में सक्षम नहीं है। वस्तुतः प्रथम तीन के सहयोग से अन्तिम भक्ति साधक को पराभक्ति तक ले जाती है। पराभक्ति साधक को मुक्ति तक पहुँचाती है।

आर्तादिभक्तत्रय की भक्ति का फल दो प्रकार का है- पहला मुख्यफल (परमलक्ष्य) और दूसरा अतिरिक्तफल। पराभक्ति मुख्यफल है। तीनों का मुख्यफल एक है। तीनों का अतिरिक्तफल अलग-अलग है जैसे- दुःखनिवारणादि। आर्तादिभक्तत्रय नवधाभक्ति को सम्पादित करते हैं। स्मरण, कीर्तन, कथा, प्रायश्चित आदि का समावेश आर्तभक्ति में किया जाता है।[2]

आचार्य शङ्कर का मत उपरोक्त मत से भिन्न है। आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है- पहली पराभक्ति और दूसरी अपराभक्ति। आर्तादिभक्तत्रय द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को अपराभक्ति कहते हैं और ज्ञानीभक्त द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को पराभक्ति कहते हैं। अपराभक्ति सकाम और रागात्मिका वृत्ति वाली होती है। पराभक्ति निष्काम भावना युक्त, ज्ञानलक्षण वाली और अनन्य प्रेम वाली होती है। ब्रह्मभाव को प्राप्त हुये साधक को पराभक्ति मिलती है।[3]

अब यहाँ पर यह शङ्का करना उचित है कि महापापी व्यक्ति को भक्तिमार्ग की अनुमति मिलनी चाहिये अथवा नहीं? अगर मिलनी चाहिये तो उस भक्ति का स्वरूप क्या होगा? महापापी व्यक्ति को भक्ति-भावना सम्पादित करने की अनुमति दी गयी है। परन्तु महापापी व्यक्ति को मुक्ति विलम्ब से मिलेगी। महापापी व्यक्ति को आर्तभक्ति के सम्पादन की अनुमति मिलनी चाहिये।[4]

---

[1] चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतवर्षभ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/१६)॥

[2] स्मृतिकीर्त्योः कथादेश्चार्तौ प्रायश्चित्तभावात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/१९)॥

[3] ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५४)॥

[4] महापातकिनान्त्वार्तौ॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/२७)॥

1.4.3 नवधा भक्ति

पुराणों में नौ प्रकार की भक्ति बतायी गयी है।[1] जिसे नवधाभक्ति कहते हैं। नवधाभक्ति अर्थात् भक्ति नौ लक्षणों वाली है।[2] नवधाभक्ति के नौ रूप हैं- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।[3]

(i) श्रवण

भगवान् के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, तत्त्व, लीला और कथा इत्यादि को परम श्रद्धा पूर्वक अतृप्त मन से निरन्तर सुनना।[4]

(ii) कीर्तन

भगवान् के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, तत्त्व, रहस्य, लीला और पराक्रम आदि का आनन्द एवं उत्साह के साथ कीर्तन (उच्चारण) करना। कीर्तन करते-करते शरीर में रोमाञ्च होना, हृदय का प्रफुल्लित होना, कण्ठावरोध होना, अश्रुपात होना आदि कीर्तन की विशेषतायें हैं।[5] कीर्तन का महत्त्व भगवद्गीता में बताया गया है।[6] कीर्तन प्रत्यक्ष रूप से अनुराग पैदा करता है।[7]

---

[1] 'नवविधश्चैव पुराणादिषु।' (भक्तिमीमांसा- १/२/३)।

[2] इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ (भागवतपुराण-६/५/२४)॥

[3] श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (भागवतपुराण-७/५/२३)॥
श्रीमद्भागवत पुराण में प्रह्लाद जी ने कहा है- 'भगवान् विष्णु के नाम, रूप, गुण और प्रभाव आदि का श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान् की चरणसेवा, पूजन और वन्दन एवं भगवान् में दासभाव, सखाभाव और अपने को समर्पण कर देना- यह नौ प्रकार की भक्ति है।

[4] तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/३४)॥
श्रीमद्भगवद्गीता- (१३/२५)।

[5] स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/३६)॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तशच दृढव्रताः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/१४)॥

[6] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३०-३१)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६८-६९)।

[7] रागाऽर्थप्रकीर्तिसाहचर्याच्चेतरेषाम्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/२)॥

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/३६)॥

अनुराग (भक्ति) उत्पन्न करने के अनेक उपाय हैं जैसे- कीर्तन, श्रवण, मनन और स्मरण आदि। कीर्तन प्रत्यक्ष रूप से अनुराग उत्पन्न करता है। कीर्तन अर्थात गुणगान। स्तुति प्रभु के गुणों का कीर्तन है।

कथा अर्थात् कीर्तन। दूसरे शब्दों में 'ईश्वर के वैभव का वर्णन'। कथादिष्विति गर्गः॥ (नारदभक्तिसूत्र- १७)॥ कथा, प्रायश्चित, स्मरण और कीर्तन आदि की गणना आर्तभक्ति में की जाती है- 'स्मृतिकीर्त्योः कथादेश्वार्तौ प्रायश्चित्तभावात्॥' (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र- २/२/१९)॥

(iii) स्मरण

मन के अन्दर प्रभु के नाम का बार-बार उच्चारण करना। अनन्य भाव से नित्य, निरन्तर परमेश्वर का स्मरण करना।[1] उनके माहात्म्य और शक्ति का स्मरण कर उस पर मुग्ध होना। भगवान् के स्मरण से पाप, विघ्न, अवगुण और दुःखों का अत्यन्त अभाव हो जाता है।[2] स्मरण के महत्त्व को भगवद्गीता में बताया गया है।[3] भगवान् का स्मरण करना ही भक्ति का प्राण है।

(iv) पादसेवन

परमेश्वर के चरणों का आश्रय लेना। उन्हीं को अपना सर्वस्व समझना। परमेश्वर के चरणकमलों का चिरकाल तक चिन्तन करना चाहिए। भगवान् की चरणकमल रूपी नौका संसार-सागर से पार उतारने वाली है। पादसेवन में लक्ष्मी जी विशेष स्थान रखती हैं। प्रभु अमूर्त हैं, उनका पादसेवन करना सम्भव नहीं है। अतः प्रभु की मूर्ति बनाकर, मूर्ति के पैरों की सेवा करना चाहिये।[4]

(v) अर्चन

अर्चन अर्थात् सामान्य पूजा। मन, वचन और कर्म के द्वारा पवित्र सामाग्री से प्रभु के चरणों का पूजन करना।[5] मनुष्य अपने स्वाभाविक कर्मों के द्वारा भगवान् की पूजा करके परमसिद्धि

---

[1] यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/६)॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/१४)॥

[2] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/१३)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/५७)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/५८)।

[3] श्रीमद्भगवद्गीता- (६/३०)। श्रीमद्भगवद्गीता- (८/७-८)। श्रीमद्भगवद्गीता- (८/१४)। श्रीमद्भगवद्गीता- (९/२२)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१२/६-८)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/५७-५८)।

[4] सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः। नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/१४)॥

[5] पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/२६)॥ पत्रादेर्दानमन्यथा हि वैशिष्ट्यम्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/१५)॥

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/४६)॥ तथा श्रीमद्भगवद्गीता- (९/२७)।

चरणामृत: पादप्रक्षालन-पादोदकं भगवत प्रापुनाति सद्यः॥ (नृसिंह पुराण)॥ पादस्पर्शजलम् अर्थात् जिस जल से पैर धोया गया हो- पादोदकन्तु पाद्यमव्याप्तेः॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/१२)॥

प्रसाद: भगवान् का जूठन। भगवान् का भोग लगाने के उपरान्त बचा हुआ शेष खाद्य पदार्थ को प्रसाद कहते है- स्वयमप्यर्पितं ग्राह्यमविशेषात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/१३)॥ प्रसाद को श्रद्धा से ग्रहण करना चाहिये।

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः॥ (नारदभक्तिसूत्र- १६)॥ पराशर के अनुसार पूजा ही भक्ति है।

को प्राप्त हो जाता है।[1] भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'तू मेरा पूजन (अर्चन, पूजन या पूजा) करने वाला हो' फिर तू मेरे को ही प्राप्त होगा।[2]

(vi) वन्दन

वन्दन अर्थात् प्रार्थना।[3] समस्त चराचर भूतों को परमात्मा का स्वरूप समझकर परम आदर सत्कार के साथ पवित्र भाव से नमस्कार करना (उनकी सेवा करना)। भगवद्गीता (११/४०) में वन्दन का स्वरूप बताया गया है।[4] भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'तू मेरे को नमस्कार कर' फिर तू मेरे को ही प्राप्त होगा।[5]

(vii) दास्य

प्रभु को अपना स्वामी और अपने आपको प्रभु का दास (सेवक) समझकर परम श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा करना।[6] प्रभु की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित कर देना। भक्त के मन में सेवक का भाव होता है जो उसके अहंकार को नष्ट कर देता है। साधक का अहंकार शून्य होना भक्ति-भावना की पहली उपलब्धि होती है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'तू मेरा भक्त हो जा' फिर तू मेरे को ही प्राप्त होगा।[7]

(viii) सख्य

भगवान् के तत्त्व, रहस्य, महिमा को समझकर मित्र भाव से प्रेम करना। भगवान् को अपना परम मित्र समझकर, उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर देना।[8] सच्चे भाव से अपने पुण्य-पाप का निवेदन करना।[9] भक्ति जगत् की चरम साधना सख्यभावना में समाविष्ट होती है। क्योंकि सख्यभावना में उपास्य और उपासक दोनों का महत्त्व बराबर होता है। इन दोनों में से न तो कोई छोटा होता है और न ही कोई बड़ा होता है।

---

[1] स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/४६)॥

[2] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३४)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६५)।

[3] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३४)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६५)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१०/१२-१८)। श्रीमद्भगवद्गीता (ग्यारहवाँ अध्याय)।

[4] नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व। अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/४०)॥

[5] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३४)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६५)।

[6] कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-२/७)॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/३)॥

[7] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३४)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६५)।

[8] स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/३)॥
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६४)॥

[9] तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्। पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/४४)॥

(ix) आत्मनिवेदन

अपने आपको भगवान् के चरणों में हमेशा के लिये समर्पित कर देना और कुछ भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता न रखना।[1] जिस मनुष्य ने भगवान् का आश्रय लिया है वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।[2] भगवद्गीता में शरणागति का महत्त्व बताया गया है।[3] यह भक्ति की सर्वोत्तम अवस्था मानी गयी है।

नवधाभक्ति का आचरण करने वाले आदर्श भक्तों की सारणी इस प्रकार है- श्रवण-परीक्षित। कीर्तन-रजर्षि शुकदेव। स्मरण-प्रह्लाद। पादसेवन-लक्ष्मी। अर्चन-पृथुराजा। वन्दन-अक्रूर। दास्य-हनुमान्। सख्य-अर्जुन। आत्मनिवेदन-बलि राजा।

परीक्षितादि भक्तों ने आध्यात्मिक जगत् की यात्रा करने के लिये क्रमशः श्रवणादि नौ रूपों का चयन किया। ये लोग अपने-अपने साधना-क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ साधक माने जाते हैं। इन लोगों ने भक्ति-साधना के शिखर तक पहुँचने में सफलता प्राप्त किया। ये लोग अपने-अपने साधना-क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं। इन लोगों ने अपने-अपने साधना-क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। इन लोगों ने अपने परम लक्ष्य को प्राप्त किया। इस कारण से ये लोग हमारे लिये उदाहरण स्वरूप हैं।

मुख्य रूप से भक्ति के दो भेद हैं- पहला साधनभक्ति और दूसरा साध्यभक्ति। साधनभक्ति को अपराभक्ति और साध्यभक्ति को पराभक्ति भी कहते हैं। साधनभक्ति से साध्यभक्ति की प्राप्ति होती है।[4] नवधाभक्ति अपराभक्ति में आती है अर्थात् नवधाभक्ति को अपराभक्ति के अन्तर्गत रखा जाता है। अपराभक्ति और पराभक्ति के स्वरूप का विस्तृत विवेचन पीछे इसी अध्याय में किया जा चुका है।

आर्तादि भक्तत्रय नवधाभक्ति का आचरण करते हैं। नवधाभक्ति के अनुष्ठान का परिणाम भिन्न-भिन्न हो सकता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की प्रकृति सत्त्वादि गुण के भेद से

---

[1] तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१५/४)॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६६)॥

[2] तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६२)॥

[3] तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६२)॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६६)॥
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/१४)॥
श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३२)। श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३४)।

[4] मामुपेत्य पुनर्जन्मः दुःखालयमशाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/१५)॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५४)॥
इदं परमं गुह्यमं मद्भक्तेष्वभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६८)॥

अलग-अलग होती है। सत्त्वादि गुणों के भेद से भक्त तीन प्रकार के होते हैं- सात्त्विकभक्त, राजसिकभक्त और तामसिकभक्त।[1] प्रत्येक भक्त क्रमशः अपने उत्तरवर्ती वाले भक्त से श्रेष्ठ है।[2]

नवधाभक्ति में से किसी एक का भी अच्छी प्रकार से अनुष्ठान करने पर मनुष्य परम पद को प्राप्त हो जाता है;[3] फिर जो लोग सभी नौ रूपों का एक साथ अनुष्ठान करने वाले हैं उसके कल्याण में तो कहना ही क्या है?[4]

1.4.4 एकादश आसक्तियाँ

भगवद्भक्ति के आनन्द में संलिप्त भक्तों के ऐसे व्यवहार जो भक्ति-भावना के परवर्ती हो उनकी गणना आसक्तियों में की जाती है। नारदभक्तिसूत्र के अनुसार एक प्रकार की होती हुई भी भक्ति एकादश भेदों वाली है।[5] इनकी गणना एकादश आसक्तियों में भी की जाती है। जो भक्ति-भावना की परवर्ती होती हैं।

एक होते हुये भी भक्ति ग्यारह प्रकार की है- १. गुणमहात्म्यासक्ति, २. रूपासक्ति, ३. पूजासक्ति, ४. स्मरणासक्ति, ५. दास्यासक्ति, ६. सख्यासक्ति, ७. कान्तासक्ति, ८. वात्सल्यासक्ति, ९.तन्मयासक्ति, १०. आत्मनिवेदनासक्ति और ११. परमविरहासक्ति। नारदभक्तिसूत्र के अनुसार यह मत आचार्य सनत्कुमार, वेदव्यास, शुकदेव, शाण्डिल्य, गर्ग, विष्णु कौण्डिन्य, शेष, उद्धव, आरुणि, बलि हनुमत्, विभीषण को भी मान्य है।
नारदभक्तिसूत्र के अनुसार पराभक्ति ग्यारह रूपों में दिखायी दे सकती है। इन एकादश रूपों को एकादश आसक्तियाँ भी कहते हैं।[6] नारदभक्तिसूत्र में एक अन्य स्थल पर भक्ति के दो भेद किये गये हैं- पहला पराभक्ति और दूसरा अपराभक्ति। भक्तिवेदान्ती लोगों के लिये भक्ति ही उनका सर्वस्व है। ये लोग जीवन पर्यन्त भक्ति-रस का आनन्द लेना चाहते हैं। एक मत के अनुसार भक्तिवेदान्त के लोग पराभक्ति को मोक्ष के समकक्ष मानते हैं।

1.4.5 भक्ति साध्य है या साधन?

[1] गौणी त्रिधा, गुणभेदाद् आर्तादिभेदाद् वा॥ (नारदभक्तिसूत्र- ५६)॥
श्रीमद्भागवत पुराण- (३/२/९ और ७/२/१०)। श्रीमद्भगवद्गीता- (७/१६,१७)।
[2] उत्तरस्मादुत्तरस्मात् पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति॥ (नारदभक्तिसूत्र- ५७)॥
[3] ईश्वरतुष्टेरेकोऽपि बली॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/८)॥
[4] अप्रयोगानां यथाकालसम्भवो गृहादिवत्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-२/२/७)॥
[5] नारदभक्तिसूत्र- (८२)।
[6] नारदभक्तिसूत्र- (८३)।

अब प्रश्न यह है कि भक्ति साध्य है या साधन? भक्ति अपने अङ्ग साधनों की साध्य है[1] अर्थात् भक्ति के अङ्ग अनुष्ठानीय होने के कारण भक्ति के साधन कहे जाते हैं। भक्ति मुक्ति (मोक्ष) का साधन है[2] अर्थात् भक्ति का साध्य मुक्ति (मोक्ष) है।

भक्ति के अङ्ग भक्ति-भावना को सुदृढ़ करने के साधन हैं जो अनिवार्य हैं। भक्ति सीढ़ियों में अन्तिम सीढ़ी है तथा भक्ति के अंग, अन्य प्रारम्भिक सीढ़ियाँ हैं। भक्तिवेदान्त के अनुसार भक्ति अन्तिम सोपान है जिस पर आरूढ़ होकर जीव प्रभु को प्राप्त करता है। भक्तिवेदान्त के आचार्य भक्त के समस्त व्यवहारों का साध्य भगवद्भक्ति को मानते हैं।

श्रद्दा-विश्वास, गुरु-सेवा, ओङ्कार जप, यज्ञ-हवन, त्याग (तप और संयम), व्रत, कीर्तन, प्रभु का गुणगान करना, योगाभ्यास, यम (अहिंसा, अस्तेय, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) और नियम (शौच, संतोष, तप, ब्रह्मज्ञान और ईश्वरपरायणता) का आचरण करना इत्यादि भक्ति के अङ्ग हैं। ये अङ्ग अनुष्ठानीय होने के कारण भक्ति के साधन कहे जाते हैं ।[3] श्रद्धा, गुरुभक्ति, ओङ्कर-जप आदि भक्ति के प्रमुख अङ्ग हैं। इनका विस्तृत विवेचन निम्नवत् है-

(i) श्रद्धा

आस्तिक्य बुद्धि का नाम श्रद्धा है।[4] श्रद्धा भक्ति-भावना का मूलाधार है।[5] शङ्कराचार्य ने शास्त्र और गुरु के वचनों में श्रद्धा रखना परम आवश्यक बताया है।[6] श्रद्धा का प्रथम स्थान माता, पिता और गुरु होते हैं। इसीलिये उपनिषद् **'मातृ देवो भव', पितृ देवो भव'** का उद्घोष करती है।[7] श्रद्धा और विश्वास वह मूल मन्त्र है जिससे मनुष्य के अन्दर सेवाभाव और कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना जागृत होती है।

---

[1] श्रीमद्भागवत पुराण (३/२९/१५ से लेकर ३/२९/१९ तक) , नारदभक्तिसूत्र (सूत्र संख्या ३४ से लेकर सूत्र संख्या ५० तक तथा सूत्र संख्या ६१, ६२, ६३, ६४, ७४, ७६, ७८ और ७९), शाण्डिल्यभक्तिसूत्र (सूत्र संख्या १८, २१, २६, ४५, ४९, ५९, ६४, ६५, ७४, ८३, ८५ और ९६) में भक्ति के अङ्गों का विशद वर्णन किया गया है। भक्तिरसामृतसिन्धु (१/९) में उत्तम भक्ति के अङ्गों की चर्चा की गयी है।

[2] 'मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।' (विवेकचूड़ामणि-३२)। श्रीमद्भागवतपुराण (४/२०/२१) और श्रीमद्भगवद्गीता (११/४८, ५३ और ५४) में भक्ति को भगवत्प्राप्ति का उपाय बताया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण (११/४/१) के अनुसार भक्ति ही भगवत्प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।

[3] श्रीमद्भगवद्गीता- (१३/७ से लेकर १३/११ तक)। श्रीमद्भगवद्गीता- (८/११)। कठोपनिषद्- (१/२/१४,१५)।

[4] 'आस्तिक्यबुद्धिः श्रद्धा।' (छान्दोग्योपनिषद् शाङ्करभाष्य-७/९/१९)।
श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (९/२३)। श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (१७/१)।

[5] 'नैषा तर्केण मतिरापनेया।' (कठोपनिषद्-१/२/९)।
मुण्डकोपनिषद्- (१/२/११)। शतपथब्राह्मण- (२/३/२/३४)।

[6] शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यावधारणम्। सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते॥ (विवेकचूड़ामणि-२६)॥

[7] तैत्तिरीयोपनिषद्. शिक्षावल्ली, अनुवाक-११।

श्रद्धा मन की वह वृत्ति है जो दृश्य जगत् की विविधता के भीतर एकसूत्रता का दर्शन कराती है। यह तर्क द्वारा सम्भव नहीं है।[1] श्रद्धा के बिना मनुष्य का आन्तरिक विकास सम्भव नहीं है। श्रद्धा मनुष्य के अन्दर रहने वाले अहंकार का शमन करती है। मनुष्य को आध्यात्मिक जगत् की यात्रा करने के लिये भक्ति के साधनों में श्रद्धा, गुरु के वचनों में श्रद्धा और माता-पिता में श्रद्धा का होना आवश्यक है। भक्ति के अङ्ग साधनों का श्रद्धा पूर्वक अनुष्ठान करने के फलस्वरूप व्यक्ति भगवत्-साक्षात्कार की ओर अग्रसर होता है।[2]

आत्मा को जानने का प्रमुख साधन श्रद्धा है।[3] अविचल आत्मविश्वास आत्मतत्त्व तक पहुँचा देता है। श्रद्धा रहित व्यक्ति का नाश हो जाता है।[4] श्रद्धा तीन प्रकार की होती है- पहली सात्त्विकी श्रद्धा, दूसरी राजसी श्रद्धा और तीसरी तामसी श्रद्धा।[5]

सात्त्विकी श्रद्धा: ऐसी श्रद्धा (विश्वास) जो निष्कपट हो, भोलापन लिये हो और हमारी चेतना की पूर्णता से उत्पन्न हुई हो तो वह सात्त्विकी श्रद्धा है।

राजसी श्रद्धा: जब कोई व्यक्ति इच्छा और तृष्णा के तीव्र वेग के कारण श्रद्धा का सहारा लेता है तब इच्छापूर्ति की तीव्र पिपासा ही उसकी श्रद्धा को जीवित रखती है। यह राजसी श्रद्धा कहलाती है।

तामसी श्रद्धा: तामसी श्रद्धा आलस्य से उत्पन्न होती है। जैसे- उत्तरदायित्व का निर्वहन ना करना पड़े इससे बचने के लिये सब कुछ भगवान् की इच्छा पर छोड़ देना।

(ii) गुरुभक्ति

मानव जीवन की यात्रा बहुत लम्बी और कठिनाइयों से भरपूर है। जीवन की इन कठिनाइयों से बाहर निकलने के लिये एक अच्छे मार्गदर्शक की आवश्यकता पड़ती है। जब बात आध्यात्मिक जगत् वाली यात्रा करने की हो तो वहाँ पर गुरु एक पथप्रदर्शक की भूमिका निभाता है।[6] गुरु मार्ग में आने वाली कठिनाइयों से शिष्य को परिचित करा देता है। और शिष्य उस मार्ग पर आगे बढ़ने के लिये निरन्तर प्रयासरत रहता है।

---

[1] नैषा तर्केण मतिरापनेया। (कठोपनिषद्-१/२/९)।

[2] श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/३९)॥ श्रीमद्भगवद्गीता- (९/१३)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१७/२७)।

[3] नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा। अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते॥ (कठोपनिषद्-२/३/१२)॥

[4] अश्रद्धधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप। अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३)॥ श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (१७/२८)।

[5] त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा। सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१७/२)॥

[6] तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समितपांणी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ। (मुण्डकोपनिषद्)।

गुरु वचनों में विश्वास गुरु-शुश्रुषा कहलाती है। गुरु पथप्रदर्शक होता है। मुक्ति के चार मार्ग हैं- ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग। जो गुरु जिस मार्ग का विशेषज्ञ होता है वह उस मार्ग को प्रदर्शित करता है। वस्तुतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गुरु की आवश्यकता होती है। भारतीय जीवन मूल्यों में गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर बताया गया है।[1] इसीलिये श्वेताश्वतरोपनिषद् गुरु में पराभक्ति की बात कहती है।[2] शास्त्रों के अनुसार तत्त्वज्ञानी गुरु और योग्य शिष्य का मिलना बहुत ही दुर्लभ है।[3]

गुरु के वचनों में विश्वास, गुरु की ज्ञान परम्परा को आगे बढ़ाना, गुरु की सेवा करना, गुरु के चरणकमलों की वन्दना करना, गुरु को दण्डवत् प्रणाम करना, गुरु से आशीर्वाद लेना, गुरु के प्रति विनम्रभाव होना, गुरु के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना इत्यादि गुरुभक्ति कहलाती है।[4] गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर गुरु अपने शिष्य के ऊपर कृपा दृष्टि बरसाते हैं।[5] गुरु शिष्य को जड़ता से बाहर निकालता है और उसके लिये मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

(iii) ओङ्कार जप

ओ३म् परब्रह्म का वाचक है।[6] ओ३म् अव्यय पद है। उसका न तो कोई लिङ्ग है और न ही कोई वचन है। ओ३म् तीन मात्रा वाला परम पद है। ओङ्कार ही अक्षरब्रह्म है।[7] इस अक्षर द्वारा परमात्मा की उपासना करने से मुक्ति प्राप्त होती है। अतः ओङ्कार ही अक्षर नामक पद (प्राप्त करने योग्य स्थान) है।[8] 'प्रणव' 'ओ३म्' का पर्याय है- **'तस्य वाचकः प्रणवः।'**[9] छान्दोग्योपनिषद् में उद्गीत की दृष्टि से ओङ्कारोपसना वर्णित है।[10] ओङ्कार की उपासना करने से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति होती है।[11]

---

[1] गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णुः, गुरु देवा महेश्वरः। गुरु साक्षात् परम् ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

[2] यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद्-६/२३)॥ अर्थात् जिसकी परमेश्वर में परम भक्ति है, और जैसी भक्ति परमेश्वर में है, वैसी ही गुरू में भी है, उस महान् पुरुष के हृदय में ये कहे हुए रहस्य अर्थ प्रकाशित हो जाते हैं।

[3] कठोपनिषद्- (१/२/७,८,९)। मुण्डकोपनिषद्- (१/२/१२,१३)।

[4] तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता -४/३४)॥

[5] इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन। न चाशुश्रुषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूचयति॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६७)॥

[6] परस्य ब्रह्मणो वाचकरूपेण प्रतिमावत् प्रतीकरूपेण च। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-८/११)।

[7] ओमित्येकाक्षर ब्रह्म। (श्रीमद्भगवद्गीता-८/१३)।

[8] तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/११)॥ इस श्लोक में अक्षर नामक पद(स्थान) ही प्राप्त करने योग्य बताया गया है। अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ (श्रीमद्भग्वद्गीता-८/२१)॥

[9] प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः। (श्रीमद्भगवद्गीता-७/८)। प्रणव ओङ्कारः सर्ववेदेषु। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/८)।

[10] ओमित्येतदक्षरं उद्गीथ। (छान्दोग्योपनिषद्-१/१/१)।

[11] अत्ययिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वान् अक्षरमुदगीथमुपास्ते। (छान्दोग्योपनिषद्-१/१/७)।

ओ३म् प्रभु का निज नाम है।[1] नाम और नामी में अभेद सम्बन्ध होता है।[2] ओङ्कार जप का अर्थ परमात्मा को जपना। भक्ति जगत् में नाम जप का महत्त्व सभी ने स्वीकार किया है।[3] ओङ्कार जप का विधान गोपथब्राहमण एवं शथपथब्राह्मण में उल्लिखित है।[4] ओङ्कारोपसना (जप/ध्यान) करने से साधक को मोक्ष प्राप्त होता है।[5] भगवद्गीता कहती है कि भगवान् ही ओङ्कार हैं।[6] उपनिषद् के अनुसार ओङ्कार ही परब्रह्म और अपरब्रह्म है।[7] शाण्डिल्यविद्यादि उपासनायें अपरब्रह्म की उपासनायें हैं।[8]

'प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः।'[9] ओङ्कार निखिल वाङ्मय का आधार है। ओङ्कार ही अक्षरब्रह्म है। समस्त वैदिक वाङ्मय उसकी व्याख्या करते हैं।[10] भगवद्गीता कहती है कि भगवान् ही ओङ्कार हैं, भगवान् ही ऋग्वेद हैं, भगवान् ही सामवेद हैं और भगवान् ही यजुर्वेद हैं।[11] वेद रूप ब्रह्म इसी परमात्मा से पुरुष के निःश्वास की भाँति निःस्सृत होता है।[12] ओङ्कार का श्रवण, शंसन और गान क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से सम्बद्ध है।[13] वेद द्वारा प्रतिपादित समग्र तपश्चर्या का एकमात्र लक्ष्य ओ३म् है।[14]

---

[1] यजुर्वेद (४०/१७) में 'ओ३म् खं ब्रह्म' शब्दों के द्वारा उसी प्रभु के नाम का निर्देश किया गया है।
यजुर्वेद- (४०/१५)। मुण्डकोपनिषद्- (२/४)। प्रश्नोपनिषद्- (५/२)। छान्दोग्योपनिषद्- (१/१/१)।
परस्य ब्रह्मणो वाचकरूपेण प्रतिमावत् प्रतीकरूपेण च। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-८/११)।
ऊँ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः। (श्रीमद्भगवद्गीता-१७/२३)।

[2] अथ खलु यः उद्गीथः स प्रणवः, यः प्रणवः स उद्गीथः इति असौ वा आदित्यः उद्गीथः एष प्रणवः ओ३म् इति ह्येष स्वरन्नेति। (आर्षेयब्राह्मण-१/५/१)। अर्थात् यह जो आदित्य है, वह भी उद्गीथ है और वही प्रणव भी है।

[3] ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/१३)॥
ओ३म् क्रतो स्मर। (यजुर्वेद ४०वाँ अध्याय)। अर्थात् हे पुरुषार्थी तू ओम् का स्मरण कर।
तैत्तिरीयोपनिषद्- (प्रथम शिक्षाध्याय वल्ली का अष्टम अनुवाक)। मुण्डकोपनिषद्- (द्वितीय खण्ड के श्लोक ३,४ और ६)। छान्दोग्योपनिषद्- (१/२/३)।

[4] आर्षेयब्राह्मण- (१/१३/१,२,३)।

[5] यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत। (प्रश्नोपनिषद्-५/५)।
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/२१)॥
ओङ्कारस्य उपासनं कालान्तरे मुक्तिफलम् उक्तम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-८/११)।
तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/११॥ अक्षर नामक पद (स्थान) ही प्राप्त करने योग्य है।

[6] वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/१७)॥

[7] प्रणवोह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्चपरः स्मृतः।' (कठोपनिषद् और मुण्डकोपनिषद्)।
एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः। (प्रश्नोपनिषद्-५/२)।
'परस्य ब्रह्मणो वाचकरूपेण प्रतिमावत् प्रतीकरूपेण च परब्रह्मप्रतिपत्तिसाधनत्वेन मन्दमध्यमबुद्धीनां विवक्षितस्य ओङ्कारस्य उपासनं।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-८/११)।

[8] छान्दोग्योपनिषद्- (३/१४/१)।

[9]

[10] कठोपनिषद्- (१/२/१५,१६,१७)। तैत्तिरीयोपनिषद्- (प्रथम शिक्षाध्याय वल्ली का अष्टम अनुवाक)। मुण्डकोपनिषद्- (द्वितीय खण्ड के श्लोक ३,४ और ६)। छान्दोग्योपनिषद्- (१/२/३)।

[11] वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/१७)॥

[12] यस्मात् साक्षात् परमात्माख्याद् अक्षरात् पुरुषनिःश्वासवत् समुद्भूतं ब्रह्म। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-३/१५)।

[13] वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/१७)॥

[14] कठोपनिषद्- (१/२/१५,१६,१७)।

1.4.6 शाङ्कर वेदान्त और भक्ति वेदान्त में अन्तर

वेदान्तदर्शन का आधार प्रस्थानत्रयी है। अनेक आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा और अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से वेदान्त का प्रतिपादन किया। वेदान्तदर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय हैं- शङ्कराचार्य का ब्रह्माद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, मध्व का द्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद, आचार्य वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद और चैतन्यमहाप्रभु का अचिन्त्यभेदाभेद। साधन-पथ की समानता के आधार पर इन सम्प्रदायों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- पहला शाङ्करवेदान्त और दूसरा भक्तिवेदान्त।

- शाङ्करवेदान्त के अन्तर्गत शङ्कराचार्य और उनके अनुयायियों को रखा जाता है। शङ्कराचार्य अद्वैतत्त्व को मानते हैं। उनके अनुसार मुक्ति का एकमात्र साधन ज्ञान है।
- भक्तिवेदान्त के अन्तर्गत रामानुज, मध्व, निम्बार्क, आचार्य वल्लभ आदि को रखा जाता है। इन लोगों का सिद्धान्त 'सर्वं कृष्णमयं जगत्' की अवधारणा पर आधारित है। भक्ति ही इनका सर्वस्व है। इनके अनुसार भक्ति मुक्ति का एकमात्र साधन है।
- शाङ्करवेदान्त के स्रोत-ग्रन्थ उपनिषद्, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र हैं।
- भक्तिवेदान्त के स्रोत-ग्रन्थ उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र और भागवतपुराण हैं।[1]
- शाङ्करवेदान्त का ब्रह्म निर्गुणब्रह्म है।
- भक्तिवेदान्त का ब्रह्म सगुणब्रह्म है।
- भक्तिवेदान्त सगुण ब्रह्म को विष्णु, नारायण, कृष्ण इत्यादि नामों से पुकारता है।
- आचार्य शङ्कर के अनुसार मूलतत्त्व एक है। मूलतत्त्व निर्गुण है। जब वह माया से युक्त होता है तो निर्गुण से सगुण हो जाता है। वह अपनी सामर्थ्य (शक्ति/माया) से अनेक रूपों में भासित होता है। वह निर्गुण से सगुण रूप धारण कर लेता है।
- भक्तिवेदान्त में सब कुछ सत्य है। ब्रह्म भी सत्य है, जगत् भी सत् है और जीव भी सत्य है।
- शङ्करवेदान्त के मत में पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक के भेद से सत्ता तीन प्रकार की होती है। ब्रह्म की सत्ता पारमार्थिक होती है, जीव और जगत् की सत्ता व्यावहारिक होती है। शुक्ति में रजत की सत्ता प्रातिभासिक होती है।
- व्यवहारिक दृष्टि से देखा जाय तो भक्ति-भावना के सम्पादन में द्वैत का होना स्वाभाविक है। अद्वैतवाद के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म का विवर्त है। ब्रह्म के अतिरिक्त

[1] उपनिषद्- वैदिक परम्परा को प्रस्तुत करती है। भगवद्गीता- उपनिषद् के विचारों का सारांश है। ब्रह्मसूत्र- उपनिषद् के विचारो का व्यवस्थित रूप है। भागवतपुराण- ब्रह्मसूत्र का विस्तृत रूप है।

दूसरी कोई सत्ता नहीं है। भक्ति जनित द्वैतभाव ब्रह्मसाक्षात्कार के अनन्तर समाप्त हो जाता है।

- आचार्य शङ्कर के अनुसार मुक्ति प्राप्त करने के दो मार्ग हैं- पहला प्रवृत्तिमार्ग और दूसरा निवृत्तिमार्ग। प्रवृत्तिमार्ग का सम्बन्ध कर्मयोग से है तथा निवृत्तिमार्ग का सम्बन्ध ज्ञानयोग से है। भक्तियोग ज्ञानकर्मोभयात्मक होने से उभयनिष्ठ है अर्थात् अपराभक्ति कर्मयोग में और पराभक्ति ज्ञानयोग में समाविष्ट है।
- आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा मोक्ष का साधन है।
- भक्तिवेदान्त के अनुसार भक्ति मुक्ति का साक्षात् कारण है। मुक्ति चार प्रकार की होती है- सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य।
- भक्तिवेदान्त के आचर्यों ने अधिकांशतः सगुणभक्ति को पोषित किया।
- आचार्य शङ्कर ने अधिकांशतः अद्वैत की दृष्टि से भक्ति को पोषित किया।
- आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति का स्वरूप ज्ञान हैं। भक्ति ज्ञान और ज्ञान की एक प्रक्रिया है। निर्गुणतत्त्व की उपासना ज्ञान से की जाती है। निर्गुण उपासक ज्ञानयज्ञ द्वारा ब्रह्म की उपासना करता है। ज्ञान की खोज (ज्ञानयज्ञ) की भी एक प्रकार की भक्ति है।

1.5 भक्त

भक्ति-भावना के तीन आधार स्तम्भ हैं- पहला भक्ति, दूसरा भक्त और तीसरा भज्य। भजन-क्रिया को भक्ति कहते हैं। भक्ति एक क्रिया है जिसका साध्य ईश्वर है और आश्रय जीव है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि भक्ति विषय, आश्रय और सम्बन्ध रूपी अंशत्रय की अपेक्षा रखती है। जहाँ ईश्वर विषय है और जीव आश्रय है। ईश्वर और जीव दोनों की भजन (उपासना/भावना) के साथ प्रपत्ति सम्बन्ध है।

इस अध्याय में अबतक भक्ति और उसके अङ्गोपाङ्गों का विस्तृत विश्लेषण किया गया और अब भक्ति के द्वितीय स्तम्भ (भक्त) का विवेचन किया जायेगा। भक्त की विशेषताओं को बताते हुये छान्दोग्योपनिषद् कहती है- **'स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामाचारो भवति।'**[1] अर्थात् 'भक्त सर्वत्र प्रभु को देखता है, प्रभु का सतत् चिन्तन करता है।

[1] स वा एष एवं पश्यन् एवं मन्वानः एवं विजानन् आत्मरतिः आत्मक्रीडः आत्ममिथुनः आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामाचारो भवति। (छान्दोग्योपनिषद्-७/२५/२)। अर्थात् वह यह इस प्रकार देखने वाला, इस प्रकार मनन करने वाला तथा विशेष रूप से इस प्रकार जानने वाला आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन और आत्मानन्द होता है; वह स्वराट है; सम्पूर्ण लोकों में उसकी यथेच्छ गति होती है।

माम् एव सर्वप्रकारैःसर्वात्मना सर्वोत्साहेन भजते इति मद्भक्तः। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-११/५५)। अर्थात् जो लोग सब प्रकार से, सब इन्द्रियों द्वारा सम्पूर्ण उत्साह से मेरी भजन करते हैं वे लोग मेरे भक्त कहलाते हैं।

वह आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन, आत्मानन्दी तथा स्वराट् है। सम्पूर्ण लोकों में उसकी यथेच्छ गति होती है।'

भगवद्गीता के अनुसार भक्त चार प्रकार के होते हैं- आर्तभक्त, जिज्ञासुभक्त, अर्थार्थीभक्त और ज्ञानीभक्त। साधनपथ की उत्कृष्टता के आधार पर भक्तो की श्रेष्ठता आरोही क्रम में कुछ इस प्रकार है- १. आर्तभक्त, २. अर्थार्थीभक्त, ३. जिज्ञासुभक्त और ४. ज्ञानीभक्त।

(i) आर्त भक्त

आर्तभक्तों की श्रेणी के अन्तर्गत द्रौपदी और विभीषण जैसे भक्तों को रखा जाता है। आर्तभक्त दुःख निवारण के लिये भगवान् की भजन करते है। आर्तभक्त सांसारिक कष्टों की निवृत्ति के लिये भगवान् का आश्रय लेकर उनकी भजन करते हैं। दुःख निवृत्ति मनुष्य के आन्तरिक विकास का सहायक होती है।[1]

(ii) अर्थार्थी भक्त

अर्थार्थीभक्तों की श्रेणी के अन्तर्गत सुग्रीव और ध्रुव जैसे भक्तों को रखा जाता है। अर्थार्थीभक्त धन प्राप्ति की इच्छा वाले होते हैं। अर्थार्थीभक्त लोक अथवा परलोक के भोगों को प्राप्त करने के लिये एकमात्र भगवान् का आश्रय ग्रहण करते हैं। धनार्जन से मनुष्य के वाह्य सुखों की सिद्धि सम्भव होती है।[2]

(iii) जिज्ञासु भक्त

जिज्ञासुभक्तों की श्रेणी के अन्तर्गत परीक्षित और उद्धव जैसे भक्तों को रखा जाता है। जिज्ञासुभक्त भगवान् को तत्त्व से जानने की इच्छा रखते हैं। सांसारिकता की चिन्ता किये बिना, जिन पवित्र हृदय व्यक्तियों के मन में, सृष्टि के कारण और उसके रहस्य को जानने की उत्कट अभिलाषा होती है वे जिज्ञासुभक्त कहलाते हैं।[3]

(iv) ज्ञानी भक्त

ज्ञानीभक्तों की श्रेणी के अन्तर्गत शुकदेव और सनकादि जैसे भक्तों को रखा जाता है। ज्ञानीभक्त ब्रह्मवेत्ता (ब्रह्म की उपासना करने वाले) होते है। विरक्त स्वभाव वाले, निरन्तर

[1] आर्त आर्तिपरिगृहीतःतस्करव्याघ्ररोगादिना अभिभूत आपन्नो। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/१६)।

[2] अर्थार्थी धनकामो। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/१६)।

[3] जिज्ञासुः भगवत्तत्त्वं ज्ञातुम् इच्छति यः। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/१६)।

आत्मानन्द में लीन जिन व्यक्तियों की दृष्टि में एकमात्र परमात्मा के अतिरिक्त किसी की भी सत्ता नहीं रहती है वे ज्ञानीभक्त कहलाते हैं।[1]

श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्काभाष्य के अनुसार आर्तादिभक्तत्रय का सम्बन्ध अपराभक्ति से और ज्ञानीभक्त का सम्बन्ध पराभक्ति से है। भगवद्भक्त पुण्यकर्मकारी होते हैं।[2] अभक्त लोग भगवान् की शरण में नहीं आते हैं। इसका कारण यह है कि ये अभक्त लोग पापी, नराधम और मूढ़ स्वभाव वाले होते हैं।[3] ये लोग भगवान् की भजन नहीं करते हैं। अभक्त का नाश हो जाता है।[4]

भगवद्भक्त भगवान् के परमधाम को प्राप्त करते हैं।[5] भक्त की भक्ति-भावना से प्रसन्न होकर भगवान् उसे बुद्धियोग प्रदान करते हैं।[6] बुद्धियोग माया का नाश कर देता है[7] जिससे साधक को मोक्ष प्राप्त होता है। निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि भक्ति वह साधन है जिससे भगवत् साक्षात्कार होता है।[8] भक्ति वह साधन है जिससे भगवान् भक्त के समक्ष प्रकट होते है।[9] भक्ति वह साधन है जिससे भगवान् का दर्शन सम्भव हो पाता है।[10]

भगवद्भक्त पुण्यात्मा, नरश्रेष्ठ और उदार होते हैं।[11] इसीलिये सभी भगवद्भक्त भगवान् को प्रिय हैं[12] किन्तु ज्ञानीभक्त भगवान् को अत्यन्त प्रिय होता है। श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार आर्तादिभक्तत्रय अज्ञानी तथा उदार होते हैं।[13] इसका कारण यह है कि इन भक्तों

---

[1] ज्ञानी विष्णोः तत्त्ववित् च। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/१६)।

[2] चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। (श्रीमद्भगवद्गीता-७/१६)।

चतुर्विधाः चतुष्प्राकारा भजन्ते सेवन्ते मां जनाः सुकृतिनः पुण्यकर्माणो हे अर्जुन!। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-११/५५)।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/२८)॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा। अनित्यसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३३)॥

[3] न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/१५)।

[4] संसृतिरेषामभक्तेः स्यान्नाज्ञानात्करणत्वासिद्धेः॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-३/२/६)॥

[5] मद्भक्ता यान्ति मानपि॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/२३)॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/१४)॥

[6] तं येन मामुपयान्ति ते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१०/१०)॥

[7] दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/१४)॥

[8] मद्भक्ता यान्ति मानपि॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-७/२३)॥

[9] न अहं प्रकाशः सर्वस्य लोकस्य केषाञ्चिद्। एव मद्भक्तानां प्रकाशः अहम् इति अभिप्रायः। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/२५)। अर्थात् मैं केवल अपने भक्तों के लिये ही प्रकट होता हूँ, अन्य सभी के लिये नहीं।

[10] भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/५४)॥

[11]

[12]

[13] आरुरुक्षोः कर्म कारणम् आरूढस्य योगस्थस्य शम एव कारणम्। उदाराः त्रयः अपि अज्ञाः, ज्ञानी तु आत्मा एव मे मतम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/६६)।

में कर्त्तापन का अभिमान रहता है अर्थात् 'मैं कर्म करता हूँ' यह भावना इन भक्तो में होती है। जबकि यह भावना ज्ञानीभक्त के अन्दर नहीं होती है।[1]

ज्ञानीभक्त को अनन्यभक्त भी कहते हैं।[2] ज्ञानीभक्त भगवान् को अत्यन्त प्रिय होते हैं। इसका कारण यह है कि भगवान् ज्ञानीभक्त की आत्मा हैं[3] और ज्ञानीभक्त भगवान् की आत्मा है।[4] यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि अपनी आत्मा सबको प्रिय होती है अतः दोनों एक दूसरे को प्रिय हैं। ज्ञानीभक्त त्रिगुणों के प्रभाव से ऊपर उठ चुका होता है।[5] संसार में ज्ञानीभक्त (महात्मा) अत्यन्त दुर्लभ होते हैं।[6] ज्ञानीभक्त भगवद्भक्ति में इतना तल्लीन हो जाता है कि वह अपने योगक्षेम की परवाह नहीं करता है। ज्ञानी का योगक्षेम भगवान् स्वयं वहन करते हैं।[7]

1.6 ईश्वर

भजन-क्रिया का साध्य ईश्वर है। भक्ति-भावना ईश्वर के अस्तित्व पर आश्रित है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने वाला भक्त प्रतिक्षण ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करता है। भक्त के लिये उसका ईश्वर ही उसका सर्वस्व है। वह एक क्षण के लिये भी ईश्वर से अलग नहीं होना चाहता है।[8] दर्शनशास्त्र के आचार्यों ने अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास किया है।[9]

---

[1] आरुरुक्षोः कर्म कारणम् आरूढस्य योगस्थस्य शम एव कारणम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/६६)।

[2] तेषां चतुर्णां मध्ये ज्ञानी तत्त्ववित् तत्त्ववित्त्वाद् नित्ययुक्तो भवति एकभक्तिः च अन्यस्य भजनीयस्य अदर्शनाद् अतः स एकभक्तिः विशिष्यते। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/१७)।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः। नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/१४)॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५५)॥

त्रैगुण्यविषया वेद निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। (श्रीमद्भगवद्गीता-२/४५)।

[3] प्रियो हि यस्माद् अहम् आत्मा ज्ञानिनः अतः तस्य अहम् अत्यर्थं प्रियः। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/१७)।

[4] स च ज्ञानी मम वासुदेवस्य आत्मा एव इति मम अत्यर्थं प्रियः। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/१७)।

श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (९/२२)।

[5] त्रैगुण्यविषया वेद निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। (श्रीमद्भगवद्गीता-२/४५)।

[6] त्रैगुण्यविषया वेद निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। (श्रीमद्भगवद्गीता-२/४५)। यह बात बहुत कम लोग समझ पाते हैं कि 'वासुदेव ही सब कुछ हैं' तथा यह सम्पूर्ण जगत् आत्म स्वरूप वासुदेव ही हैं। इस बात को केवल ज्ञानी महात्मा ही समझ सकते हैं।

[7] योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/२२)॥

[8] भक्त भक्ति-भावना में लीन रहता है। ईश्वर भक्त के लिये प्राण हैं, जीवन हैं, जीवन का आधार हैं।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१०/९)॥

'जीवनं सर्वभूतेषु।' (श्रीमद्भगवद्गीता-७/९)।

[9] यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेतिघोरमुतेमाहुर्नैषोऽस्तीत्येनम्। सो अर्यःपुष्टीर्विज इव आमिनाति, श्रद्धस्मै धत्त स जनास इन्द्रः॥ (ऋग्वेद-२/१२/५)॥ जिस ईश्वर के सम्बन्ध में मनुष्य प्रश्न करते हैं कि वह कहाँ है? चर्म चक्षुओं से न दिखाई पड़ने पर कहने लगते हैं कि वह है ही नहीं। वह ईश्वर ऐसे अश्रद्धालु, अविश्वासी पुरुषों के सामने भयावह परिस्थितियों की अवतारणा में दिखायी देने लगता है। इसी प्रकार निम्न स्थलों पर भी ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है जैसे-

ईश्वर है। उसके नाम और रूप अनेक हैं। **'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति।'**[1] इस श्रुति के अनुसार एकमात्र परमसत्ता स्वरूप परमेश्वर ही सत् है। जिसे (ओ३म्, तत्, सत्, ब्रह्म, भगवान्, नारायण, ईश्वर, महेश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, कृष्ण, विष्णु, राम, शिव इत्यादि) अनेक नामों से पुकारा जाता है। वह देवों का भी देव है। वह आत्माओं का भी आत्मा है। अज्ञानी पुरुष भगवान् के विभिन्न नाम और रूप को भगवान् से पृथक् समझकर भजता है। जिसके कारण वह व्यक्ति भक्ति के वास्तविक फल से वंचित रह जाता है।[2]

भगवान् का नामकरण उनके गुणों के आधार पर हुआ है। भगवान् के सभी नाम जीवात्मा पर घटित हो सकते हैं लेकिन 'ओ३म्' इसका अपवाद है। ओ३म् प्रभु का निज नाम है।[3] नाम और नामी में अभेद सम्बन्ध होता है। अतः ओङ्कारोपासना से मुक्ति मिलती है।[4] 'प्रणव' 'ओ३म्' का पर्याय है।[5] उपनिषद् के अनुसार ओङ्कार ही परब्रह्म और अपरब्रह्म है।[6] ओङ्कार

त्रिपादोऽस्यामृतं दिवो। (ऋग्वेद-१०/९०)।

कार्यायोजनधृत्यादेः प्रदात्प्रत्ययतः श्रुतेः। वाक्यात्संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः॥ (न्यायकुसुमाञ्जलि ५/१)॥

न्यायसूत्र- (४/१/१९-२१)। उद्योतकरकृत न्यायवार्तिक- (८०/९४०/६०)। ब्रह्मसूत्रभाष्यम्- (२/७/१८)। शाङ्करभाष्य पृ.- २२१।

[1] एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति। (ऋग्वेद-१/१६४/४६)।

एकैव आत्मा बहुधा स्तूयते। (निरुक्त)। एक ही आत्मा विभिन्न देवताओं के नाम से स्तुत हुआ है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्ससुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ (ऋग्वेद-१/१६४/४६)॥ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥(*यजुर्वेद*-३२/१)॥

या देवानां नामधः एक एव। (अथर्ववेद-२/१/३)।

अग्निर्वै सर्वा देवताः। विष्णुः सर्वा देवताः। (ऐतरेयब्राह्मण)। एक ही दिव्य तत्त्व अन्य समस्त दिव्य तत्त्वों का वाचक बन जाता है।

ऋग्वेद- (२/१)। कठोपनिषद्- (५/१२)। मनुस्मृति- (१२/१२३)।
[2]

[3] यजुर्वेद (४०/१७) में 'ओ३म् खं ब्रह्म' शब्दों के द्वारा उसी प्रभु के नाम का निर्देश किया गया है।

यजुर्वेद- (४०/१५)। मुण्डकोपनिषद्- (२/४)। प्रश्नोपनिषद्- (५/२)। छान्दोग्योपनिषद्- (१/१/१)।

परस्य ब्रह्मणो वाचकरूपेण प्रतिमावत् प्रतीकरूपेण च। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-८/११)।

[4] यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत। (प्रश्नोपनिषद्-५/५)।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/२१)॥

ओङ्कारस्य उपासनं कालान्तरे मुक्तिफलम् उक्तम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-८/११)।

तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/११॥ अक्षर नामक पद (स्थान) ही प्राप्त करने योग्य है।
[5] प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः। (श्रीमद्भगवद्गीता-७/८)। प्रणव ओङ्कारः सर्ववेदेषु। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-७/८)।
[6] प्रणवोह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्चपरः स्मृतः।' (कठोपनिषद् और मुण्डकोपनिषद्)।
एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः। (प्रश्नोपनिषद्-५/२)।

निखिल वाङ्मय का आधार है। ओ३म् अव्यय पद है। उसका न तो कोई लिङ्ग है और न ही कोई वचन है। ओङ्कार ही अक्षरब्रह्म है।[1] समस्त वैदिक वाङ्मय उसकी व्याख्या करता है।[2] वेद इसी परमात्मा से पुरुष के नि:श्वास की भाँति नि:स्सृत होता है।[3]

उपनिषद् परमतत्त्व परमात्मा के स्वरूप को परिभाषित करती है- **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'**[4] और **'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।'**[5] (दोनों ही स्वरूप लक्षण हैं।) तथा **'जन्माद्यस्ययतः।'**[6] और **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति।**[7] **यत्प्रयन्ति अभिसंविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्म।'** (दोनों ही तटस्थ लक्षण हैं।)। सच्चिदानन्द स्वरूप वाले परब्रह्म परमात्मा के अनन्त गुण हैं- सत्, चित्, आनन्द, अनादि, अनन्त, अद्वितीय, अनिर्वचनीय, परमप्रकाश, शाश्वत, सनातन, आप्तकाम, स्वयंभू, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, नियामक, अकर्त्ता, भोक्ता इत्यादि।[8] किसी भी पदार्थ के गुण उसके स्वरूप को समझने में सहायक होते हैं। उपरोक्त गुण परमात्मा के स्वरूप को समझने में सहायक है।

'परस्य ब्रह्मणो वाचकरूपेण प्रतिमावत् प्रतीकरूपेण च परब्रह्मप्रतिपत्तिसाधनत्वेन मन्दमध्यमबुद्धीनां विवक्षितस्य ओङ्कारस्य उपासनं।' (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-८/११)।
[1]

[2] कठोपनिषद्- (१/२/१५,१६,१७)। तैत्तिरीयोपनिषद्- (प्रथम शिक्षाध्याय वल्ली का अष्टम अनुवाक)। मुण्डकोपनिषद्- (द्वितीय खण्ड के श्लोक ३,४ और ६)। छान्दोग्योपनिषद्- (१/२/३)।

[3] यस्मात् साक्षात् परमात्माख्याद् अक्षरात् पुरुषनिःश्वासवत् समुद्भूतं ब्रह्म। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-३/१५)।

[4] तैत्तिरीयोपनिषद्- (२/१/१)।

[5] तैत्तिरीयोपनिषद्- (३/६)।

[6] ब्रह्मसूत्र- (१/१/२)।

[7] तैत्तिरीयोपनिषद्- (३/१/१)।

[8] ब्रह्म

'वृहि वृद्धौ' अर्थात् सर्वव्यापक, विभु और सर्वशक्तिमान् है। 'वृहत्तमत्त्वात् ब्रह्म' अर्थात् बर्धनशील है।

सत्

त्रिकालाबाधित अर्थात् जो तत्त्व (भूत-वर्तमान्-भविष्य) तीनो काल में अपरिवर्तनीय हो। अस्तित्व के भाव का मूल सत् है अर्थात् जो विद्यमान है वह सत् है।

सत्यमिति यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति तत्सत्यम्। (तैत्तिरीयोपनिषद् शांङ्करभाष्य-२/१/१)। यद्विषया बुद्धिः न व्यभिचरति तत् सत्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-२/१६)। विद्यमानम् असत् च यत्र नास्ति इति बुद्धिः। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-११/३७)।

तत्सत्यं स आत्मा। (छान्दोग्योपनिषद्-६/८/७)। तस्य ह व एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यम्। (छान्दोग्योपनिषद्-६/९/४)। सत्रैव बोधो बोध एव च सत्ता। (ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य- ३/२/२१)।

चित्

चेतन या ज्ञानस्वरूप। ज्ञानस्वरूपता से जडता की निवृत्ति होती है। यह अनुभव करने वाली शक्ति है। इसी से भूतप्राणियों में चेतना का प्राकट्य होता है- 'भूतानामस्मि चेतना।' (श्रीमद्भगवद्गीता-१०/२२)।

'आत्मानमेवलोकमुपासीत।' (बृहदारण्यकोपनिषद्)। यहाँ पर लोक शब्द के द्वारा ज्ञानस्वरूपता का बोध होता है। ब्रह्म के लिए ज्ञान शब्द का प्रयोग कर्तृत्वादि कारणों की निवृत्ति के लिये हुआ है।

आनन्द

आनन्द स्वरूप है। चित् या ज्ञान की पूर्णता के कारण भगवान् आनन्द स्वरूप वाले हैं। वह पूर्ण है। पूर्णता में ही आनन्द होता है। अपूर्णता ही दुःख होता है।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। (तैत्तिरीयोपनिषद्-३/६)। 'कं ब्रह्म, 'खं ब्रह्म।' (छान्दोग्योपनिषद्-४/१०/५)। यो वै भूमा तत्सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्। (छान्दोग्योपनिषद्-७/१३/१)।

अनन्त

अनन्त, अन्त रहित, असीम, सीमा रहित। देशकाल की सीमा से परे है। देशकाल की सीमा के बन्धन से रहित है। वह सीमाओं का अतिक्रमण करके स्थित है।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः। नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/५)॥

अद्वितीय

अद्वय, अपरिमित। परमतत्त्व की स्वतन्त्र सत्ता हेतु उसे अद्वितीय माना गया है। अगर परमतत्त्व के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु और होगी तो वह परिमित कहलायेगा। द्वैत होने से स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है क्योंकि दोनों तत्त्वों में कोई न कोई सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता।

'एकमेवाद्वितीयम्।' (छान्दोग्योपनिषद्-६/२/१)।

स्वयंभू

उसका कोई कारण नहीं है अपितु वह सबका कारण है। अगर उसका कारण माना जायेगा तो वह परतन्त्र और सापेक्ष हो जायेगा। जिससे अनवस्था उत्पन्न होगी।

वह तप की महिमा से प्रकट हुआ- हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्॥ (यजुर्वेद-१३/४)॥

वह अपनी लीला से प्रकट होते हैं- श्रीमद्भगवद्गीता- (२/२१-२५)।

सर्वव्यापक

वह ब्रह्माण्ड के कण-कण में व्याप्त है एवं ब्रह्माण्ड को अतिक्रान्त करके भी व्याप्त है। ब्रह्माण्ड उसकी महिमा का एक अंश है। उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। ब्रह्माण्ड में व्याप्त होते हुये भी वह ब्रह्माण्ड से लिप्त नहीं है। क्योंकि वह संसर्ग रहित है।

सर्वज्ञ

वह ब्रह्माण्ड में सर्वव्याप्त है। सर्वव्याप्त होने के कारण वह ब्रह्माण्ड को सर्वात्मभाव से जानता है। अतः वह सर्वज्ञ कहलाता है। द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः। (श्रीमद्भगवद्गीता-११/२०)।

श्रीमद्भगवद्गीता- (१३/१३)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१५/१९)। बृहदारण्यकोपनिषद्- (३/९/२६)।

अनिर्वचनीय

वह वाणी का विषय नहीं है क्योंकि वाणी उसी को विषय बना सकती है जो इन्द्रिय ग्राह्य गुणों वाला होता है और प्रभु इन्द्रिय ग्राह्य गुणों से रहित है। 'यतो वाचा निवर्तन्ते।' (तैत्तिरीयोपनिषद्-२/४/९)।

सर्वशक्तिमान्

वह सर्वशक्तिमान् है। मानव और देवता उसकी शक्ति की माप नहीं कर सकते हैं- न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्च न शवसी अन्तमापु। (ऋग्वेद-१/१००/१५)।

पूर्ण

ईश्वर पूर्ण है। उसे अन्य किसी की आवश्यकता नहीं है। पूर्णता में ही आनन्द है। वह आनन्दस्वरूप है। पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते। (अथर्ववेद-१०/८/३९)।

'यदल्पं तन्मर्त्यम्।' (छान्दोग्योपनिषद्-७/१४/१)। जो अल्प या अपूर्ण है वह नाशवान् (मरणशील) है। नाशवान् (नश्वरता) ही दुःख का कारण होता है। क्योंकि जो अपूर्ण होता है वह दूसरे पर निर्भर होता है। अतः अपूर्णता में ही दुःख है।

प्रकाशमय

वह सत्त्वगुण के प्रकाश से भी अधिक प्रकाशमय और सूक्ष्म हैं। वह सभी प्रकार के तेज एवं ज्योतियों का स्रोत है। सर्वोत्तम ज्योति, प्रकाशमय एवं तेजःपुञ्ज स्वरूप हैं। ब्रह्माण्ड भी अपने सूक्ष्मतम रूप में प्रकाशमय है।

आप्तकाम

आप्तकाम, कामनाशून्य, इच्छा रहित। वह कामनाशून्य है। इस सृष्टि में उसके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है। जो कर्त्ता होता है वही कामनावान् होता है। आत्मा अकर्त्ता है अतः वह कामनाशून्य है। आत्मा में षड्भावविकार का अभाव होने के कारण आत्मा अकर्त्ता है- आत्मनो जन्मादिषड्विक्रियाभावाद् अकर्त्ता आत्मा इति। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-२/१०)।

स्वतन्त्र

वह सबका आधार होते हुए भी स्वयं निराधार है।

निरपेक्ष

परमेश्वर को अपनी सत्ता या ज्ञान के लिये किसी की आवश्यकता नहीं है।

अमृत

प्रभु मृत्यु, देश और काल की सीमा से परे है अर्थात् अमृत है। वह नित्य है।

अप्रमेय

अप्रमेय, प्रमाणातीत, अविज्ञेय, अचिन्त्य, दुर्विज्ञेय। प्रत्यक्षादि प्रमाणों की पहुँच से परे होने के कारण अप्रमेय है। सूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय है। इन्द्रियगोचर न होने के कारण अचिन्त्य है। आत्मा का ज्ञान बहुत ही दुष्कर है अतः दुर्विज्ञेय है।

अप्रमेयस्य न प्रमेयस्य प्रत्यक्षादिप्रमाणैः अपरिच्छेद्यस्य इत्यर्थः। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-२/१८)।

अनादि

जिसका कोई प्रारम्भ न हो। अनादि का कोई कारण नहीं होता है।

सनातन

ब्रह्म द्विविध है- परब्रह्म और अपरब्रह्म। मुण्डकोपनिषद् में परब्रह्म और अपरब्रह्म का विस्तार से वर्णन किया गया है।[1] सृजनात्मक शक्तियों से युक्त और सृष्टि करने के लिये प्रवृत्त ईश्वर को अपरब्रह्म कहते हैं। त्रिगुणातीत और नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाली परमसत्ता को परब्रह्म कहते हैं। परब्रह्म निरपेक्ष होता है। त्रिगुणातीत होता है। अपरब्रह्म सापेक्ष होता है। शाण्डिल्यादि उपासनायें अपरब्रह्म की उपासनायें हैं।

परमतत्त्व परमात्मा निराकार होते हुये भी द्विविध रूप वाले हैं- पहला निर्गुण और दूसरा सगुण। वह परमतत्त्व प्रकृति और जीव के गुणों से ऊपर होने के कारण निर्गुण कहलाता है और अपने स्वाभाविक गुणों से युक्त होने के कारण सगुण कहलाता है। ईशावास्योपनिषद् में उपहित (आच्छादित) और अनुपहित (अनाच्छादित) के भेद से निर्गुण और सगुण ब्रह्म का वर्णन किया गया है।[2] ईशावास्योपनिषद् का यह विभाजन उपाधि भेद पर आधारित है। महापुरुषों ने परमतत्त्व को अनेक विशेषण प्रदान किया है। अकरणगोचर ब्रह्म को विशेषण

जो सदा से ही है। सनातन का कोई कारण नहीं होता है।

अव्यय

जिसका कभी व्यय न हो। क्योंकि यह अनादि है।

निर्विकारी

निर्विकार, अविक्रिय। अवयव रहित होने के कारण अविक्रिय है। आत्मा एक है अर्थात् अवयव रहित है। जन्ममरणवान् विकारी कहलाता है। आत्मा क्रिया के षड्भावविकार का अभाव है।

शाश्वत

सदा रहने का नाम शाश्वत है। आत्मा शरीर के विकारों से रहित है। विकार अर्थात् किया के षड्भाव विकार(अपक्षयादि)।

अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१३/१२)॥ अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः। शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१३/३१)॥ कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः। सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/९)॥ त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परमं निधानम्। त्वमव्ययःशाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/१८)॥ श्रीमद्भगवद्गीता- (२/२४)। श्रीमद्भगवद्गीता- (२/२०)।

श्रीमद्भगवद्गीता- (२/१७,२१,२५)। 'मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम्॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-४/१३)॥ 'नायं हन्ति न हन्यते।' (श्रीमद्भगवद्गीता-२/१९)। 'न जायते।' (श्रीमद्भगवद्गीता-२/२०)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१०/४२)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१२/२,८)। अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः। शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१३/३१)॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः। सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/९)॥ बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च। सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१३/१५)॥ अणोरणीयान्, महतो महीयान्। (कठोपनिषद्-२/२०)।

[1] मुण्डकोपनिषद्- (२/२/८)।

[2] स पर्यगात् शुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ (यजुर्वेद-४०/८ या ईशावाश्योपनिषद्-८)॥ निर्गुणब्रह्म- अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरम्, अपापविद्धम्। सगुणब्रह्म- शुक्रम्, शुद्धम्, कविः, मनीषी, परिभूः और स्वयंभूः।

प्रदान करने का प्रयोजन यह है कि इन विशेषणों के माध्यम से कोई महापुरुष मन्दबुद्धि साधक को परमतत्त्व का बोध करा सकता है।[1]

श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य का अध्ययन करने पर यह बात सामने आती है कि उपास्यतत्त्व तीन तरह का हो सकता है- १. निर्गुण निराकार, २. सगुण निराकार और ३. सगुण साकार। समस्त विशेषणों से रहित अक्षरब्रह्म परमात्मा को निर्गुण निराकार कहते हैं। विशेषणों से युक्त परन्तु आकार रहित उपास्यतत्त्व को सगुण निराकार कहते हैं। शरीरधारी के समान प्रतीत होने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को सगुण साकार कहते हैं।

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य (अध्याय-१२ का भूमिकाभाष्य)।

तथापि इह मन्दबुद्धीनां दिक्-देशादि भेदवद् वस्तु इत्येवं भाविता बुद्धिर्न शक्यते सहसा परमार्थविषया कर्तुमिति अनधिगम्य च ब्रह्म न पुरुषार्थसिद्धिरिति तदधिगमाय हृदयपुण्डरीक देश उपदिष्टव्यः॥' (छान्दोग्योपनिषद् शाङ्करभाष्य-८/१/)॥

द्वितीय अध्याय

कबीरदास की रचनायें एवं वेदान्त का निर्गुण भक्ति विमर्श

विषय विश्लेषण की सुविधा को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत अध्याय को कुल तीन बिन्दुओं में विभाजित किया गया है- १. वेदान्त का निर्गुण भक्ति विमर्श, २. कबीरदास, और ३. कबीरदास की रचनाओं में भक्तितत्त्व। पुनः उपरोक्त बिन्दुओं को उप-बिन्दुओं शीर्षकों में विभाजित किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय के प्रथम चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- उपनिषद् के अनुसार मूलतत्त्व क्या है? मूलतत्त्व का स्वरूप क्या है? निर्गुणब्रह्म क्या है? सगुणब्रह्म क्या है? निर्गुण और सगुण में क्या अन्तर है? वह निर्गुण से सगुण रूप कब धारण करता है? वह निर्गुण से सगुण रूप कैसे धारण करता है? निर्गुण से सगुण रूप धारण करने का प्रयोजन क्या है?

प्रस्तुत अध्याय के द्वितीय चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- शङ्कराचार्य कौन थे? आचार्य शङ्कर का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं जीवन यात्रा कैसी थी? शङ्कराचार्य को ज्ञानी आचार्य क्यों कहते हैं? उनके अनुसार ज्ञान मुक्ति का कैसा कारण है? उनके अनुसार भक्ति मुक्ति का कैसा कारण है? शङ्कराचार्य के अनुसार भक्ति और ज्ञान में कैसा सम्बन्ध है? आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति का स्वरूप क्या है? आचार्य शङ्कर का दार्शनिक सम्प्रदाय क्या है? ब्रह्माद्वैतवाद किसे कहते हैं?

प्रस्तुत अध्याय के तृतीय चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- कबीरदास कौन थे? कबीरदास का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं जीवन यात्रा कैसी थी? कबीर के जीवन में गुरु का महत्त्व क्या था? भारत की चिन्तन परम्परा में सन्तों का योगदान क्या था? सन्त साहित्य परम्परा में कबीरदास का योगदान क्या था? वेदान्त विचार को विस्तार देने में क्षेत्रीय भाषा की भूमिका क्या थी? कबीरदास की काव्य रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय क्या-क्या है? कबीरदास के निर्गुणब्रह्म का स्वरूप क्या है?

कबीर-ग्रन्थावली, उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र, भागवतपुराण आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका सहयोग प्रस्तुत अध्याय के लेखनकार्य में लिया गया। कबीरदास की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। कबीरदास की काव्य रचनाओं की प्रामाणिकता और पाठभेद को लेकर बहुत विवाद है। 'कबीर-ग्रन्थावली' को कबीरदास की काव्य रचनाओं का सबसे प्रामाणिक

संकलन माना जाता है। इस अध्याय के लेखनकार्य का मूल आधार 'कबीर-ग्रन्थावली' और उपनिषद् है। यथा अवसर अन्य ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है। विषय विश्लेषण को आसान बनाने के लिये आलोचनात्मक-विधा के ग्रन्थों का सहारा लिया गया है जैसे- डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कबीर' नामक ग्रन्थ आदि।

2.1 वेदान्त का निर्गुण भक्ति विमर्श

वेदान्तदर्शन का आधार प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र) है। उपनिषद् प्रस्थानत्रयी का मूल है। भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र उपनिषद् की व्याख्या हैं। अब प्रश्न यह है कि निर्गुणब्रह्म और सगुणब्रह्म क्या है? वेदान्त में इसका प्रारम्भ कहाँ से और कैसे होता है?

'एकमेवाद्वितीयम्' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' मूलतत्त्व एक है और निर्गुण है। कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ भी एकत्व का रूप है वह निर्गुण है और उसी को कठोपनिषद् में कहा गया है- **'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥'**[1] अर्थात् मूलतत्त्व शब्द रहित है, रूप रहित है, रस रहित है, गन्ध रहित है। मन्त्रार्थ के सार को जानने के लिये हम जो भी साधन अपनाते हैं, उसको पाने के प्रति आपके मन में जो भाव है तथा उसका अनुभव करने का जो भाव है उसको निर्गुण कहते हैं।

उदाहरण- **'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।'**[2] आत्मा को प्रवचन से नहीं जाना जा सकता, तर्क से नहीं जाना जा सकता, सुनने से नहीं जाना जा सकता है। अगर आत्मा को प्रवचन से नहीं जाना जा सकता, तर्क से भी नहीं जाना जा सकता, सुनने से भी नहीं जाना जा सकता तो फिर कैसे जाना जा सकता है- **'यमेवैष वृणुते, तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥'**[3] अर्थात् जब जिज्ञासु व्यक्ति आत्मा को वरण कर लेता है तो आत्मा उसके लिये अपने रहस्य को खोल देता है।

आत्मा को जानना ही जिसके जीवन का लक्ष्य है। ब्रह्म को जानना ही जिसके जीवन का लक्ष्य है। उसके जीवन के इस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रकृष्ट साधन भक्ति है। आचार्य शङ्कर कहते हैं कि **'मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी'**।[4] भक्ति दो प्रकार की होती है- १.निर्गुणभक्ति और २.सगुणभक्ति। आचार्य शङ्कर निर्गुणभक्ति भक्ति के विषय में कहते हैं-

[1] कठोपनिषद्- (१/३/१५)।
[2] (कठोपनिषद्-२/२३) तथा (मुण्डकोपनिषद्-२/३/२)।
[3] (कठोपनिषद्-२/२३) तथा (मुण्डकोपनिषद्-२/३/२)।
[4] विवेकचूड़ामणि- (३२)।

'स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते'।[1] अर्थात् अपने स्वरूप का अनुसंधान करना जैसे- मैं कौन हूँ? कहाँ से आया? ब्रह्म और आत्मा में क्या सम्बन्ध (अभेद) है? ब्रह्म और आत्मा किस रूप में एक है? इसका अनुभव करना या इसकी जिज्ञासा करना भी भक्ति है।

भक्ति का दूसरा रूप यह है कि कृष्ण, हनुमान्, राम आदि कोई भी देवी-देवता जो हमें अच्छे लगते हैं हम उनको अपना आराध्य बना लेते हैं। फिर उन्हीं के लिये सारा काम करते हैं। वह सुखी रहें, उनको हम देखें, उनसे बात करें, इस प्रकार का जो लक्ष्य है उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जो साधन अपनाते हैं उसमें नवधाभक्ति प्रमुख है।

उन्हीं का स्मरण करते हैं, उन्हीं का कीर्तन करते हैं, उन्हीं की सेवा करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे जितने भी क्रिया-कलाप हैं वह उनको प्रसन्न करने के लिये हैं। यही सगुणभक्ति है।

हम अपने आराध्य के स्वरूप और व्यक्तित्व से प्रभावित हैं। उनके लिये हम अपना सब कुछ अर्पित करते हैं। व्यवहार में भी ऐसा कई बार देखा जाता है कि कोई व्यक्ति किसी को बहुत अच्छा लगता है। फिर उसको उस व्यक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखायी देता। उसको लगता है कि मैं जो कुछ भी हूँ सब उसके लिये हूँ क्योंकि उसको उसमें खुशी मिलती है। वह उसके लिये सबसे ज्यादा प्रसन्नता की चीज है और उसकी प्रसन्नता इसी में है कि मैं उसके लिये काम करूँ। सगुणभक्ति में भी यही होता है कि आपका आराध्य आपके लिये क्या करता है इस बात को आप कभी नहीं सोचते। आप उसके लिये हर समय लगे रहते हैं क्योंकि आपको उसी में खुशी मिलती है।

निर्गुण और सगुण के बीच बहुत सूक्ष्म अन्तर है। इस अन्तर को तात्त्विक दृष्टि से समझने के लिये यहाँ पर 'सूरसागर' के 'उद्धव-गोपी संवाद' नामक प्रसङ्ग का सहारा लिया गया है-

यमुना नदी के किनारे एक तरफ मथुरा है तो दूसरी तरफ वृन्दावन है। भगवान् श्रीकृष्ण का बचपन वृन्दावन में गुजरा था। बारह वर्ष की उम्र के बाद भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन से मथुरा चले जाते हैं। वृन्दावन की गोपिकायें भगवान् श्रीकृष्ण के वियोग-बिरह में रो-रो कर पागल हो जाती हैं। गोपिकायें यमुना नदी के तट पर बैठकर रात-दिन रोती रहती थीं। गोपिकायें उस रास्ते से मथुरा को जाने वाले पथिकों द्वारा कृष्ण के लिये संदेश भेजती रहती थी कि आप वापस लौट आइये हम लोग आपके लिये बहुत परेशान हैं।

इस पूरे घटनाक्रम से परेशान होकर उद्धव जी ने कृष्ण से बोला कि ये लड़कियाँ आपको क्या समझती रहती हैं? इनको ऐसा क्यों लगता है कि आप जाकर मिलेंगे तभी खुशी होंगी।

[1] विवेकचूड़ामणि- (३२)।

जबकि आप तो निर्गुण निराकार हैं, आप तो सर्वत्र विद्यमान हैं, आपने सिर्फ शरीर धारण किया हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी को अपना संदेशवाहक बनाकर गोपिकाओं के पास भेजते हैं।

गोपिकाओं को समझाते हुये उद्धव जी बोले कि आप लोग क्यों रो रहे हैं? कृष्ण जी आप लोगों को छोड़कर चले गये तो क्या हो गया? वह तो सर्वव्यापी हैं, अनश्वर हैं, सब जगह हैं, कण-कण में व्याप्त हैं। भगवान् सिर्फ शरीर धारण किये हुये हैं जबकि यह शरीर उनका वास्तविक स्वरूप नहीं है। आप लोग उनके शरीर को लेकर व्यर्थ में रोते रहते हैं। आप लोग अज्ञानी हैं।

गोपिकायें उद्धव से बोलती हैं कि ये बात तो हमें भी पता है कि भगवान् कण-कण में व्याप्त हैं। हम लोग इसलिये नहीं रो रहे हैं कि देह वाले कृष्ण मथुरा चले गये बल्कि हम लोग इसलिये रो रहे हैं कि हमें उनके वियोग में रोना अच्छा लगता है। इसमें हमें खुशी मिलती है। इसलिये हम बैठकर रो रहे हैं।

उपरोक्त कहानी के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि भक्ति क्या है? निर्गुणभक्ति क्या है? सगुणभक्ति क्या है? ज्ञान और अहंकार में भेद क्या है? उद्धव निर्गुणभक्त माने जाते हैं। गोपिकायें सगुणभक्त मानी जाती हैं। उपरोक्त कहानी में निर्गुण-ज्ञानीमार्गी उद्धव जी को अपने ज्ञानी होने का अहंकार हो गया था। इस कहानी के अनुसार ज्ञान क्या है- भगवान् श्रीकृष्ण गोपिकाओं के साथ भी हैं, सर्वव्यापी भी हैं फिर भी कृष्ण के वियोग में रोने में उनको खुशी मिलती है।

दो तरह की चीजें हैं- पहली सगुण साकार तथा दूसरी निर्गुण निराकार। जो कोई भी आराध्य देव हमें अच्छे लगते हैं, बिना किसी शर्त के। अच्छे लगने की कोई ऐसी शर्त या कारण नहीं है कि क्यों अच्छे लगते हैं। हमें अच्छे लगते हैं, उनके लिये कोई भी काम करना हमारे लिये सुखकारी होता है। इस प्रकार की जो भक्ति है वह सगुणभक्ति है।

मैं क्या हूँ? मूलतत्त्व क्या है? संसार का मूलतत्त्व निर्गुण निराकार है। कठोपनिषद् कहती है- **'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।'**[1] अर्थात् मूलतत्त्व शब्द रहित है, स्पर्श रहित है, रूप रहित है, गन्ध रहित है। उपनिषद् कहती है- **'अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।'**[2] अर्थात् मूलतत्त्व अनादि है, अनन्त है, महान् है, ध्रुव (अटल) है, इसका अनुभव करने से व्यक्ति मृत्यु के मुख से बाहर आ जाता है। जो मूलतत्त्व है वह रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि सबसे परे है। कहने का तात्पर्य यह है कि शास्त्र द्वारा बतायी

[1] कठोपनिषद्- (१/३/१५)।
[2] कठोपनिषद्- (१/३/१५)।

गयी प्रविधि के माध्यम से रात-दिन इसी के चिन्तन में रहें। वह चिन्तन से परे है फिर भी हमें उसी का चिन्तन करना चाहिये। आत्मसाक्षात्कार करने की यह प्रविधि निर्गुणभक्ति है।

कठोपनिषद् कहती है कि- **'यमेवैष वृणुते, तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥**[1] अर्थात् जब आप उसी का वरण कर लेते हैं। वरण करने का अर्थ है- **'अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।'**[2] वह अदृष्ट है, अव्यवहार्य है, अचिन्त्य है, अव्यपदेश्य (उसका कोई नाम नहीं है) है, आत्मा के रूप में सारतत्त्व में विद्यमान है, वही शान्त है, वही शिव है, वही अद्वैत है, वही आत्मा है, उसी का अनुभव करना चाहिये।

यह तो निर्गुण निराकार है फिर भी उसकी जिज्ञासा करना। शास्त्र द्वारा बतायी गयी विधि के माध्यम से आगे बढ़ना, धीरे-धीरे उसका अनुभव करना, आत्मसाक्षात्कार करना। यह जो प्रविधि है इसको निर्गुणभक्ति कहते हैं।

विवेकचूड़ामणि के अनुसार मोक्ष का सबसे प्रकृष्ट साधन भक्ति है। अब यहाँ पर जिज्ञासा होती है कि वह भक्ति क्या है? आचार्य शङ्कर कहते हैं- **'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते'**[3] अर्थात् अपने स्वरूप का अनुसंधान करना जैसे- मैं कौन हूँ? कहाँ से आया? ब्रह्म और आत्मा में क्या सम्बन्ध (अभेद) है? ब्रह्म और आत्मा किस रूप में एक है? इसका अनुभव या इसकी जिज्ञासा करना भी भक्ति है।

निराकार और साकार एक ही बात है। निर्गुण ही सगुण बन जाता तथा सगुण ही निर्गुण बन जाता है। आचार्य शङ्कर के अनुसार मूलतत्त्व निर्गुण है लेकिन वही निर्गुण अपनी शक्ति के द्वारा सगुण हो जाता है और जब शक्ति को समेट लेता है तो फिर से निर्गुण हो जाता है।

ठीक उसी प्रकार जैसे हम जाग्रत या स्वप्नावस्था में होते हैं तो सगुण रहते हैं। जब हम सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं तो हम अपने ही नाम, रूप को भूल जाते हैं। जब हम गहरी नींद में चले जाते हैं तो उस समय न तो हमारा कोई नाम है, न तो कोई रूप है, हम हैं बस इसी बात का अनुभव होता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जाग्रत या स्वप्नावस्था में रहने पर हम भी सगुण हैं। हमको लगता है कि हमारा भी रङ्ग है, रूप है, सब कुछ है। परन्तु जब हम सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं तो उस समय सब कुछ समाप्त हो जाता है और हम निर्गुण हो जाते हैं।

---

[1] (कठोपनिषद्-२/२३) तथा (मुण्डकोपनिषद्-२/३/२)।

[2] माण्डूक्योपनिषद्- (१/१/७)।

[3] विवेकचूड़ामणि- (३२)।

निर्गुण ही सगुण बनता है। सगुण ही निर्गुण बनता है। इसी को ध्यान में रखकर ऋषि ने कहा- **'एकोऽहं बहुस्याम।'**[1] जो एक है वही अपनी शक्ति के द्वारा बहुत हो जाता है और जो बहुत है फिर एक ही होता है। एक का अनेक हो जाना या अनेक का एक रहना, यह भी निर्गुण से सगुण है और सगुण से निर्गुण है।

निर्गुण रूप को आधार बनाकर कबीरदास अपने भक्ति-दर्शन को आगे बढ़ाते हैं। जो सगुण रूप है जिसको कहते हैं कि माया से उपहित चैतन्य ईश्वर हो जाता है। ऐसे सगुण साकार को मानने वाले सूरदास हैं। सूरदास सगुणभक्ति के उपासक हैं और कबीरदास निर्गुणभक्ति के उपासक हैं।

भगवद्गीता के अनुसार भक्त चार प्रकार के होते हैं- आर्तभक्त, अर्थार्थीभक्त, जिज्ञासुभक्त और ज्ञानीभक्त। ज्ञानीभक्त विशिष्ट है। ज्ञानीभक्त और भगवान् में कोई भेद नहीं है। भगवान् कहते हैं कि ज्ञानी (ज्ञानीभक्त की आत्मा के रूप में) मैं ही हूँ। कहने का अर्थ यह है कि **'एकमेवाद्वितीयम्'** अर्थात् वह ब्रह्म जिसको शङ्कराचार्य अद्वैत कहते हैं, वही ब्रह्म का निर्गुण रूप है। उसी को गीता में ज्ञानीभक्त कहा है। उसी को लेकर कबीरदास अपना पूरा दर्शन आगे बढ़ाते हैं।

2.1.1 आचार्य शङ्कर

वेदान्तदर्शन का आधार प्रस्थानत्रयी है। अनेक आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा और अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से वेदान्त का प्रतिपादन किया। आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र पर 'शारीरकभाष्य' नामक भाष्य का प्रणयन किया जिसमें आत्मा के स्वरूप पर विचार किया गया है। आचार्य शङ्कर का दार्शनिक सिद्धान्त ब्रह्माद्वैतवाद है।

आचार्य शङ्कर के अनुसार मूलतत्त्व एक है। उसी को अद्वैततत्त्व या ब्रह्म भी कहते हैं। मूलतत्त्व निर्गुण है। जब वह माया से युक्त होता है तो निर्गुण से सगुण हो जाता है। वह अपनी सामर्थ्य (शक्ति या माया) से अनेक रूपों में भासित होता है। वह परमतत्त्व (अद्वैततत्त्व) अपनी माया के कारण निर्गुण से सगुण रूप धारण कर लेता है।

आचार्य शङ्कर ने एकमात्र ब्रह्म को परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। यह सृष्टि ब्रह्म का विवर्त है। उन्होंने जीव-जगत् का अस्तित्व नहीं माना है। वे इनको रज्जु में सर्प की भाँति भ्रम मानते हैं। माया को ब्रह्म की शक्ति माना है।

[1] ऋग्वेद- ।

शाङ्करवेदान्त के मत में पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक के भेद से सत्ता तीन प्रकार की होती है। ब्रह्म की सत्ता पारमार्थिक होती है। जीव और जगत् की सत्ता व्यावहारिक होती है। शुक्ति में रजत की सत्ता प्रातिभासिक होती है।

आचार्य शङ्कर के अनुसार मुक्ति प्राप्त करने के दो मार्ग हैं- १. प्रवृत्तिमार्ग और २. निवृत्तिमार्ग। भक्ति ज्ञानकर्मोभयात्मक होने से उभयनिष्ठ है। अपराभक्ति का सम्बन्ध प्रवृत्तिमार्ग से है तथा पराभक्ति का सम्बन्ध निवृत्तिमार्ग से है।

आचार्य शङ्कर अद्वैतवादी आचार्य हैं। उन्होंने अद्वैत की दृष्टि से भक्ति को पोषित किया है। शङ्कराचार्य निर्गुणभक्ति की बात करते हैं। निर्गुणभक्ति में ज्ञान की प्रधानता होती है। आचार्य शङ्कर के अनुसार ज्ञान मुक्ति का साक्षात् कारण है। शङ्कराचार्य के अनुसार भक्ति मुक्ति प्राप्त करने में सहायक होती है। वस्तुतः भक्ति ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा मुक्ति का साधन बनती है।

व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो भक्ति-भावना के सम्पादन में कम से कम दो सत्ता का होना स्वाभाविक है। भक्ति जनित द्वैतभाव ब्रह्मसाक्षात्कार के अनन्तर समाप्त हो जाता है। आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति का स्वरूप ज्ञान है। भक्ति; ज्ञान और ज्ञान की एक प्रक्रिया है। ज्ञान की खोज (ज्ञानयज्ञ) भी एक प्रकार की भक्ति है। निर्गुणतत्त्व की उपासना ज्ञान से की जाती है। निर्गुण उपासक ज्ञानयज्ञ के द्वारा ब्रह्म की उपासना करता है।

2.1.2 आचार्य शङ्कर का जीवन परिचय

भारतीय दर्शन के इतिहास में आचार्य शंकर का स्थान अप्रतिम है। वे अद्वैतवेदान्त के प्रवर्तक हैं। आचार्य शंकर दक्षिण भारत के निवासी थे। इस विषय में सभी विद्वान् एकमत हैं। इनकी जन्मभूमि के रूप में कालड़ी एवं चिदम्बर इन दोनों स्थानों का उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु कालड़ी को ही अधिक मान्यता प्राप्त है।

आचार्य शंकर की रचनाओं में कहीं भी उनके समय का निर्देश नहीं किया गया है। न ही उनके साक्षात् शिष्यों की रचनाओं में उनके काल का उल्लेख किया गया है। आचार्य के आविर्भाव के सम्बन्ध में अनेक मत प्राप्त हुए हैं। जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि- 'इनका जन्म ई. पू. पाँचवीं शताब्दी से लेकर ई. की आठवीं शताब्दी के मध्य कभी हुआ होगा।'

शंकराचार्य के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में प्रधान रूप से माधवाचार्यकृत 'शंकर दिग्विजय' और आनन्दगिरि का 'शंकर विजय' ही उपलब्ध होते हैं। शंकराचार्य के पिता का नाम शिवगुरू तथा माता का नाम आर्याम्बा था। भगवान् शङ्कर के आराधना के फलस्वरूप ही भगवत्पाद का जन्म हुआ। इनका उपनयन संस्कार पाँचवें वर्ष में हुआ। आठ वर्ष की अवस्था

में ही उन्होनें वेदाध्ययन एवं बारहवें वर्ष में सर्वशास्त्राभ्यास समाप्त कर दिया। ब्रह्मचर्यावस्था में ही तीव्र वैराग्य का उदय होने के कारण इन्होनें संन्यास ग्रहण कर लिया। गोविन्दपादाचार्य से शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर काशी जाकर भाष्य रचना की। तदनन्तर वैदिक धर्म की स्थापना में संलग्न हो गये। इसी क्रम में उन्होनें दिग्विजय यात्रा की।

आचार्य शंकर ने चार मठों की स्थापना की।

- उन्होनें मैसूर प्रान्त में तुंगभद्रा नदी के तट पर श्रृंगेरी मठ की स्थापना की। तथा सुरेश्वराचार्य को वहाँ का मठाधीश नियुक्त किया। यही आचार्य शंकर को अपनी माता के देहान्त की सूचना मिलने का उल्लेख भी प्राप्त होता है। जहाँ से वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने लिए कालड़ी आये और माता का अन्तिम संस्कार किया।
- तत्पश्चात् इन्होनें जगन्नाथपुरी गोवर्धन की स्थापना की तथा पद्मपादाचार्य को वहाँ का मठाधीश नियुक्त किया।
- गुजरात द्वारका में शारदाय की स्थापना कर हस्तमलकाचार्य को वहाँ का मठाधीश बनाया।
- बद्रीकास्तम में ज्योतिर्मठ की स्थापना कर के त्रोटकाचार्य को वहाँ का मठाधीश बनाया। यहाँ से वे केदार क्षेत्र चले गये, जहाँ पर उनका देहवसान हुआ।

इस प्रकार की व्यवस्था के पीछे उनका उद्देश्य था कि उनके अनन्तर भी वर्णाश्रम धर्म वेदान्त के सुदृढ़ आश्रय में सुरक्षित रहे। इन मठों के अध्यक्ष शंकराचार्य के प्रतिनिधि होने के कारण प्रतिनिधि शंकराचार्य कहलाते हैं।

2.1.3 आचार्य शङ्कर का दार्शनिक सिद्धान्त

शङ्कराचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त ब्रह्माद्वैतवाद है। आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र पर 'शारीरकभाष्य' नामक भाष्य का प्रणयन किया। शारीरक शब्द का अर्थ है- 'शरीर में रहने वाली आत्मा'। शारीरकभाष्य में मुख्य रूप से आत्मा के स्वरूप पर विचार किया गया है।

आचार्य शङ्कर ने एकमात्र ब्रह्म को परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने जीव-जगत् का अस्तित्व नहीं माना है। वे इनको रज्जु में सर्प की भाँति भ्रम मानते हैं। माया को ब्रह्म की शक्ति माना है। माया के योग से निर्विशेष ब्रह्म सगुण रूप में अभिव्यक्त होता है, इस अवस्था में उसे जगत् का कारण मानते हैं। जीव- जगत् का अस्तित्व न रहने से उनके सम्बन्ध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अद्वय तत्त्व की स्थापना के कारण इस मत को अद्वैतवाद भी कहा जाता है।

2.1.4 आचार्य शङ्कर का भक्ति दर्शन

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। उसके लिये कुछ लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। जिसकी प्राप्ति के लिये वह सतत् प्रयत्नशील रहता है। भारतीय मनीषियों ने इस लक्ष्य को पुरुषार्थ नाम दिया। पुरुषार्थों की संख्या चार है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है, परम पुरुषार्थ है, परमेश्वर का परमधाम है।[1] श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्य के अनुसार मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त करने के दो मार्ग हैं-

(i) प्रवृत्तिमार्ग

(ii) निवृत्तिमार्ग

भक्ति ज्ञानकर्मोभयात्मक होने से उभयनिष्ठ है। अपराभक्ति का सम्बन्ध प्रवृत्तिमार्ग से तथा पराभक्ति का सम्बन्ध निवृत्तिमार्ग से है।

(i) प्रवृत्तिमार्ग

भगवान् ने जगत् को रचकर इसके पालन करने की इच्छा से प्रवृत्तिमार्ग और उससे अलग ज्ञान एवं वैराग्य लक्षण वाले निवृत्तिमार्ग को ग्रहण करवाया। कर्ममार्गी फलासक्ति रहित कर्म करता है वह सभी कार्यों को भगवान् का कार्य समझकर भगवान् की प्रसन्नता के लिये करता हुआ कर्मफल भगवान् को अर्पित कर देता है। कर्म स्वभाव से ही बन्धनकारी होता है। लेकिन शास्त्रविहित विधि के अनुसार किया गया कर्म बन्धनकारी नहीं होता है। निष्कामकर्म मुक्ति देने वाला होता है।[2]

(ii) निवृत्तिमार्ग

भगवान् ने जगत् को रचकर इसके पालन करने की इच्छा से प्रवृत्तिमार्ग और उससे अलग ज्ञान एवं वैराग्य लक्षण वाले निवृत्तिमार्ग को ग्रहण करवाया। ज्ञानमार्गी अपने आपको परमात्मा से अभिन्न मानते हुये एकमात्र चेतन तत्त्व को सत् तथा शेष बुद्धि आदि जड़ पदार्थों को त्रिगुणों का परिणाम मात्र जानकर असत् समझता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि ज्ञानमार्गी

---

[1] 'सः न च पुनरावर्त्तते।' (छान्दोग्योपनिषद्-८/१५/१)।
'यदल्पं तन्मर्त्यम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१४/१)।
'यो वै भूमा तत्सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१३/१)।

[2] गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/२३)॥ आसक्ति रहित कर्म का फल सहित नाश हो जाता है। निष्कामकर्मयोगी के सारे कर्म ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।
कर्मबन्धः तं प्रहास्यसि ईश्वरप्रसादनिमित्तज्ञानप्राप्तेः। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-२/३९)। योगबुद्धि से युक्त हुआ तू (धर्माधर्म नामक) कर्मरूप बन्धन को ईश्वरकृपा से होने वाली ज्ञानप्राप्ति द्वारा नाश कर डालेगा।
कर्मणि मोक्षे अपि फले सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः सर्वकर्माणि। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-५/१०)। अर्थात् वह मोक्ष रूप फल की भी आसक्ति छोड़कर कर्म करता है।

अपने आपको शुद्ध-बुद्ध-नित्य-चेतन आत्मा समझता है तथा शरीर को प्रकृति एवं उसके गुणों का कार्य मानता है।[1]

प्रवृत्तिमार्ग को कर्ममार्ग भी कहते हैं। निवृत्तिमार्ग को ज्ञानमार्ग भी कहते हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में दोनों मार्गों का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। प्रथम अध्याय में यह प्रक्रिया भी बतायी गयी है कि किस तरह से दोनों मार्ग साधक को मोक्ष तक पहुँचाते हैं। अतः दोनों मार्गों के विषय में विस्तार से जानने के लिये प्रथम अध्याय का अवलोकन करें।

श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त करने के दो मार्ग हैं। पहला प्रवृत्तिमार्ग और दूसरा निवृत्तिमार्ग। भक्ति ज्ञानकर्मोभयात्मक होने से उभयनिष्ठ है। अपराभक्ति का सम्बन्ध प्रवृत्तिमार्ग से तथा पराभक्ति का सम्बन्ध निवृत्तिमार्ग से है। श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है[2]-

(i) अपराभक्ति

(ii) पराभक्ति

(i) अपराभक्ति

आर्तादिभक्तत्रय द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को अपराभक्ति कहते हैं। अपराभक्ति सकाम और रागात्मिका वृत्ति वाली होती है।[3] सगुणभक्त द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को अपराभक्ति कहते हैं। पराभक्ति साध्यावस्था है और अपराभक्ति साधनावस्था है। अपराभक्ति को साधनभक्ति भी कहते हैं।

(ii) पराभक्ति

---

[1] अन्ये साङ्ख्येन योगेन साङ्ख्यं नाम-इमे सत्त्वरजस्तमांसि गुणा मया दृश्या अहं तेभ्यः अन्यः तद्व्यापारसाक्षिभूतो नित्यो गुणविलक्षण आत्मा इति चिन्तनम् एष साङ्ख्यो योगः तेन पश्यन्ति आत्मानम् आत्मना इति वर्तते। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१३/२४)।

[2] सा इयं ज्ञाननिष्ठा आर्तादिभक्तत्रयापेक्षया परा चतुर्थी भक्तिः इति उक्ता। तया परया भक्त्या भगवन्तं तत्त्वतः अभिजानाति। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५५)।

एवम्भूतो ज्ञाननिष्ठो मद्भक्तिं मयि परमेश्वरे भक्तिं भजनं पराम् उत्तमां ज्ञानलक्षणां चतुर्थी लभते 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इति उक्तम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५४)।

[3] सा इयं ज्ञाननिष्ठा आर्तादिभक्तत्रयापेक्षया परा चतुर्थी भक्तिः इति उक्ता। तया परया भक्त्या भगवन्तं तत्त्वतः अभिजानाति। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५५)। वही यह ज्ञाननिष्ठा आर्तादि भक्तियों की अपेक्षा से चतुर्थी परा भक्ति कही गयी है। उस (ज्ञाननिष्ठारूप) पराभक्ति से भगवान् को तत्त्व से जानता है। जिससे उसी समय ईश्वर और क्षेत्रज्ञ विषयक भेदबुद्धि पूर्ण रूप से निवृत्त हो जाती है। इसीलिये ज्ञाननिष्ठा रूप भक्ति से मुझे जानता है।

एवम्भूतो ज्ञाननिष्ठो मद्भक्तिं मयि परमेश्वरे भक्तिं भजनं पराम् उत्तमां ज्ञानलक्षणां चतुर्थी लभते 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इति उक्तम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५४)। अर्थात् ऐसा ज्ञाननिष्ठ पुरुष, मुझ परमेश्वर की ज्ञानरूप पराभक्ति को पाता है, अर्थात् 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इसमें जो चौथी भक्ति कही गयी है उसको पाता है।

ज्ञानीभक्त द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को पराभक्ति कहते हैं। पराभक्ति निष्काम भावना युक्त, ज्ञान लक्षण वाली और अनन्य प्रेम वाली होती है।[1] पराभक्ति साध्यावस्था है और अपराभक्ति साधनावस्था है। पराभक्ति अपराभक्ति से श्रेष्ठ होती है। भक्त भक्ति के द्वारा परमेश्वर को तत्त्वतः जान लेता है। अतः साधक को मोक्ष प्राप्त हो जाता है।[2]

(iii) भक्ति का स्वरूप

श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार **'भजनं भक्तिः'** अर्थात् भजन का नाम भक्ति है।[3] भक्ति एक भजन-क्रिया है जिसका साध्य ईश्वर है। भक्ति को परिभाषित करते हुये आचार्य शङ्कर कहते हैं कि **'आत्मदेवस्य उपासना एव भक्तिः'** अर्थात् आत्मदेव की उपासना ही भक्ति है। क्योंकि भक्ति ज्ञान के समकक्ष होकर अपने स्वरूप का अन्वेषण करती है। शङ्कराचार्य ने **'आत्मदेवस्य उपासना एव भक्तिः'** की व्याख्या में **'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिः'** को लिखा। **'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिः'** का अर्थ यह है कि जीव अपने वास्तविक स्वरूप को जानना चाहता है और ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध की खोज करना चाहता है।

आचार्य शंकर के मत में उपासना का प्रयोजन चित्तशुद्धि है। क्योंकि चित्त के शुद्ध होने पर ही ब्रह्मसाक्षात्कार सम्भव है। कहने का तात्पर्य यह है कि **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः'** को आत्मसात् करने के लिये चित्त का शुद्ध होना आवश्यक है। चित्तशुद्धि उपासना से होती है। चित्तशुद्धि के अनेक उपायों में से उपासना भी एक उपाय है। अनेक प्रकार की उपासना वर्णित है।

आचार्य शङ्कर ने 'परापूजा' नामक स्तोत्र लिखा है।[4] यह स्तोत्र निर्गुण ज्ञानमार्ग की अवधारणा पर आधारित है। परापूजा का आचरण करने से भगवत्कृपा मिलती है। आचार्य शङ्कर पूर्वपक्ष की शैली को अपनाते हुये परापूजा का विधान बताते हैं[5]-

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि।

---

[1] सा इयं ज्ञाननिष्ठा आर्तादिभक्तत्रयापेक्षया परा चतुर्थी भक्तिः इति उक्ता। तया परया भक्त्या भगवन्तं तत्त्वतः अभिजानाति। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५५)।

एवम्भूतो ज्ञाननिष्ठो मद्भक्तिं मयि परमेश्वरे भक्तिं भजनं पराम् उत्तमां ज्ञानलक्षणां चतुर्थी लभते 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इति उक्तम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५४)।

[2] पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। (श्रीमद्भगवद्गीता-८/२२)।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५४)॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशतो तदनन्तरम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५५)॥

[3] श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (८/१०)। श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (१४/२६)।

[4] परापूजा स्तोत्र, स्तोत्ररत्नावली पृष्ठ संख्या- (२६९)।

[5] परापूजा स्तोत्र, स्तोत्ररत्नावली पृष्ठ संख्या- (२६९)।

स्थितेऽद्वितीयभावेऽस्मिन्कथं पूजा विधीयते॥१॥

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।

स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः॥२॥

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।

अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम्॥३॥

निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च।

निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलङ्कारो निराकृतेः॥४॥

निरञ्जनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः।

निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह॥५॥

विश्वानन्दपितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते।

स्वयंप्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादिभासकः॥६॥

प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः।

वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते॥७॥

स्वयंप्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः।

अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत्॥८॥

एवमेव परापूजा सर्वावस्थासु सर्वदा।

एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः॥९॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,

पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।

सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,

यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥१०॥

पूजा का स्वरूप बताते हुये शङ्कराचार्य कहते हैं- **'यत्-यत् कर्म करोमि तत्-तत् अखिलम् शम्भो तव आराधनम्।'**[1] अर्थात् हम अपने जीवन में जो भी काम करते रहते हैं वह सब आपकी आराधना है। **'आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं, पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः। सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो, यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥'**[2]

आचार्य शङ्कर ने भक्ति को उपासना के अर्थ में माना है। उपासना में जब बुद्धितत्त्व का प्राधान्य हो तो ज्ञानमार्ग (निर्गुण या अव्यक्तोपासना) और जब हृदयतत्त्व का प्राधान्य हो तो भक्तिमार्ग (सगुण या व्यक्तोपासना) कहलाता है।

निर्गुण उपासना को अव्यक्तोपासना कहते हैं। अव्यक्ततत्त्व हमारी समस्त इन्द्रियों की पहुँच से परे है।[3] अतः अव्यक्ततत्त्व की उपासना ज्ञान से की जाती है। ज्ञान की खोज (ज्ञानयज्ञ) भी एक प्रकार की भक्ति है। इसलिए निर्गुण उपासना को ज्ञानमार्ग कहते हैं। निर्गुण उपासना में ज्ञान की प्रधानता होती है। निर्गुण उपासक ज्ञानयज्ञ के द्वारा ब्रह्म की उपासना करता है।[4] निर्गुण उपासना का उपास्यतत्त्व निर्गुणब्रह्म है। निर्गुण, निर्विशेष एवं समस्त उपाधियों से रहित अक्षरब्रह्म परमात्मा की उपासना (ध्यान) करना निर्गुण उपासना है।[5]

अन्तःकरण तत्त्वज्ञान का साधन है। शुद्ध अन्तःकरण में ही ज्ञानोदय सम्भव है। अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिये अनेक उपाय प्राप्त होते हैं। जिनमें से उपासना भी अन्तःकरण को शुद्ध करने का एक उपाय है। पवित्र अन्तःकरण में ज्ञानोदय होता है। विवेकज्ञान से मनुष्य के मन में वैराग्य पैदा होता है। यह वैराग्य मुक्तिमार्ग की यात्रा में सहायक होता है।

---

[1] शिवमानसपूजा- (४)। स्तोत्ररत्नावली पृष्ठ संख्या- (२०)।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/२७)॥

[2] शिवमानसपूजा- (४)। स्तोत्ररत्नावली पृष्ठ संख्या- (२०)।

[3] निर्गुण उपासना को अव्यक्तोपासना कहते हैं। अव्यक्त का अर्थ है- 'इन्द्रिय अगोचर'। अव्यक्तोपासना का अर्थ है- 'अव्यक्ततत्त्व की उपासना'।

[4] ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/१५)॥

[5] श्रीमद्भगवद्गीता- (अध्याय-१२ भूमिकाभाष्य)।

ये च अन्ये अपि त्यक्तसर्वैषणाः सन्न्यस्तसर्वकर्माणो यथाविशेषितं ब्रह्म अक्षरं निरस्तसर्वोपाधित्वाद् अव्यक्तम् अकरणगोचरम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१२/१)।

श्रीमद्भगवद्गीता- (९/१४)।

भक्तिमार्ग कहता है कि विषय की तरफ से मुड़िये और अपने स्रोत की तरफ देखिये। दैनिक क्रिया करते हुये अपना ध्यान ईश्वर की तरफ लगाइये। भक्ति और अन्य मार्गों में परस्पर अङ्गाङ्गीभाव सम्बन्ध हो सकता है। इसके बाद भी भक्ति मुक्ति का एक स्वतन्त्र साधन है।

2.2 कबीरदास

ऐतिहासिक दृष्टि के आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया जाता है- आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल। मध्यकाल को भक्तिकाल भी कहते हैं। भक्तिकाल की काव्य रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय भक्तितत्त्व है। मध्यकालीन भक्ति की दो धारायें हैं- निर्गुणभक्ति और सगुणभक्ति। निर्गुणभक्ति धारा की दो शाखायें हैं- पहली ज्ञानाश्रयी शाखा और दूसरी प्रेमाश्रयी शाखा। सन्त कबीरदास ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं।

कबीरदास के गुरु रामानन्द थे। स्वामी रामानन्द वेदान्तदर्शन के आचार्य हैं। अनेक आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा और अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से वेदान्त का प्रतिपादन किया। रामानन्द ने ब्रह्मसूत्र पर 'आनन्दभाष्य' नामक भाष्य का प्रणयन किया। रामानन्द ने 'श्रीसम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया। इसको रामानन्दी या वैरागीसम्प्रदाय भी कहते हैं। रामानन्द का दार्शनिक सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत (राममय जगत् की भावधारा) है।

रामानन्द राम को ईश्वर, लक्ष्मण को जीव और सीता को प्रकृति की संज्ञा भी देते हैं। सीता और राम की भक्ति के प्रचार ने समाज को पवित्र मर्यादा मार्ग, कर्त्तव्य पालन तथा सदाचार का पुनीत संदेश भी दिया। वैरागीसम्प्रदाय के लोग सीता और राम को अपना आराध्य मानते हैं तथा श्रीवैष्णवसम्प्रदाय के लोग लक्ष्मी और नारायण को अपना आराध्य मानते हैं।

रामानन्द की भक्ति धारा द्विमुखी हो गयी- १.निर्गुणभक्ति धारा और २.सगुणभक्ति धारा। निर्गुणभक्ति धारा में निर्गुण निराकार रामभक्ति लोकप्रिय हुई। कबीरदास निर्गुणभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि हैं।[1]

कबीरदास का जन्म इतिहास के ऐसे काल में हुआ था जब हमारे देश में चारो तरफ अशान्ति और अव्यवस्था का बोलबाला था। विदेशी आक्रमणों से देश की जनता पस्त थी। अनेक धर्म और मत-मतान्तर समाज में प्रचलित थे। आर्थिक दशा बड़ी दयनीय थी। ऐसे कठिन समय में जन्म लेकर सन्त कबीर ने देश की जनता को ज्ञान का नवीन ज्योतिर्मय मार्ग दिखाया।

[1] कबीरपन्थ की बारह प्रमुख शाखायें प्रसिद्ध हैं- जिनके संस्थापक नारायणदास, श्रुतिगोपाल साहब, साहबदास, कमाली, भगवान दास, जागोदास, जगजीवनदास, गरीबदास, तत्त्वाजीवा आदि शिष्य प्रमुख हैं।

कबीरदास का जन्म ऐसे वातावरण में हुआ था जब सामाजिक बुराइयाँ आसमान छू रही थी, भेदभाव अपने चरम पर था। कबीरदास ने समाज के अन्तर्विरोधों को यथार्थ के स्तर पर अनुभव किया और सामाजिक परिवर्तन के लिये अपनी कविताओं में शंखनाद किया। कबीरदास ने विधि-निषेध का रास्ता अपनाते हुये सामाजिक बुराइयों की घोर निन्दा की।

कबीरदास निर्गुणब्रह्म के उपासक थे। कबीर ने ब्रह्म के लिये राम, हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया है परन्तु वे सभी नाम ब्रह्म के पर्यायवाची हैं। कबीरदास ज्ञानमार्गी सन्त थे। ज्ञानमार्ग में गुरु का महत्त्व सर्वोपरि होता है। कबीर स्वच्छन्द विचारक थे, उन्होंने समाज में व्याप्त रूढ़ियों, आडम्बरों का विरोध किया।

कबीरदास ने अपना सारा ज्ञान देशाटन तथा साधु-सन्तों की संगति से प्राप्त किया था। कबीरदास पढ़े-लिखे नहीं थे परन्तु दूर-दूर के प्रदेशों की यात्रा कर, साधु-सन्तों की संगति में बैठकर सभी धर्मों तथा सम्पूर्ण समाज का गहरा अध्ययन किया। कबीरदास ने अपने अनुभव को मौखिक कविता के रूप में लोगों को सुनाया।

कबीरदास पढ़े-लिखे नहीं थे। कबीरदास ने अपने चिन्तन दृष्टि को विकसित करने के लिये साधु-सन्तों का सहारा लिया, गुरु का सहारा लिया। कबीरदास ने अपने गुरु से गूढ़तत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया। कबीरदास ने वेदान्त के गूढ़ चिन्तन को क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। इस प्रकार से कबीरदास ने वेदान्त चिन्तन को विस्तार दिया।

भक्ति ने वेदान्त की चिन्तन परम्परा को सहज रूप में प्रस्तुत किया। भक्ति ने लोगों को वेदान्त की तरफ आकर्षित किया। कबीरदास ने वेदान्त के चिन्तन को भक्ति के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। भक्ति ने वेदान्त के चिन्तन को विस्तार दिया। वेदान्त के चिन्तन की अविरल धारा नित्य निरन्तर आगे बढ़ती गयी।

2.2.1 कबीरदास का जीवन परिचय

'कबीर' शब्द का अर्थ अरबी भाषा में 'महान्' होता है।[1] कबीरदास के अन्य नाम सन्तकबीर, कबीरा, कबीर साहब आदि हैं। कबीरदास का जन्म सन् १३९८ ई. में जेष्ठ पूर्णिमा के दिन लहतारा (काशी: वर्तमान में वाराणसी जनपद, उ.प्र.) नामक स्थान पर हुआ था। कबीरदास का पालन-पोषण नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने किया था। कबीरदास का विवाह

[1] 'महसीन मानी' के अनुसार 'कबीर' शब्द का अर्थ अरबी भाषा में 'महान्' होता है।
'कबीं राति अनुगच्छति इति कबीरः।' इसका अर्थ है- 'क्रान्तद्रष्टा'।

लोई नामक कन्या के साथ हुआ था। इनके कमाल नामक एक पुत्र और कमाली नामक एक पुत्री थी। कबीरदास के शिष्य का नाम कामात्य था। कबीरदास के गुरु स्वामी रामानन्द थे।[1]

सन्त कबीरदास का प्रामाणिक जीवनवृत्त आज तक उपलब्ध नहीं हो सका। कबीरदास के जीवन के विषय में जानने के लिये किंवदन्तियों, जनश्रुतियों, साम्प्रदायिक ग्रन्थों का सहारा लेना पड़ता है। कबीरदास के जन्म के विषय में यह बात प्रचलित है कि इनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था जिसको रामानन्द ने भूल वश गर्भवती होने का आशीर्वाद दे दिया था। विधवा ब्राह्मणी लोक-लज्जा के डर से इस नवजात को लहतारा नामक तालाब के पास फेंक आयी। संयोगवश नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को ये मिले और उन्होंने इनका पालन-पोषण किया। बाद में चलकर यही बालक कबीर कहलाया। कुछ लोगों के मत में कबीरदास नीरू और नीमा की वास्तविक सन्तान थे। कतिपय विद्वानों के मत में कबीरदास जन्म से मुस्लिम थे।

कबीरदास के अनुयायियों ने 'कबीरपंथ' नामक सम्प्रदाय बनाया।[2] कबीरपंथ की मान्यता के अनुसार कबीरदास का जन्म काशी के लहरतारा नामक तालाब में उपजे मनोहर पुष्प (कमलपुष्प) के ऊपर बालक के रूप में हुआ था। कबीरपंथ के लोग कबीरदास को एक अलौकिक अवतारी पुरुष मानते हैं तथा उनके सम्बन्ध में बहुत सारी चमत्कारपूर्ण कथायें भी सुनी जाती है। कबीरपंथ में कबीर को बाल-ब्रह्मचारी और विराणी माना जाता है। कबीरपंथियों के अनुसार कामात्य कबीर का शिष्य था तथा कमाली और लोई दोनों कबीर की शिष्या थीं। मुस्लिम कबीरपंथियों का कहना है कि कबीरदास जन्म से मुस्लिम थे। मुस्लिम कबीरपंथियों का कहना है कि कबीरदास ने सूफी फकीर शेख तकी से दीक्षा लिया था।

कबीरदास स्वामी रामानन्द को अपना गुरु बनाना चाहते थे। रामानन्द ने कबीरदास को अपना शिष्य बनाने से मना कर दिया। स्वामी रामानन्द प्रतिदिन सुबह चार बजे गङ्गा स्नान करने के लिये जाया करते थे। कबीरदास को यह बात पता थी कि रामानन्द किस मार्ग से होकर गङ्गा स्नान करने के लिये जाते हैं। कबीरदास जानबूझ कर (पञ्चगङ्गा) घाट की सीढ़ियों पर लेट गये। रामानन्द गङ्गा स्नान करने के लिये सीढ़ियों से उतर ही रहे थे कि रामानन्द का पैर कबीरदास के शरीर पर पड़ गया। रामानन्द के मुख से अचानक 'राम-राम'

---

[1] कबीर इति विख्यातः स पुत्रो मधुराननः।३९।
सप्ताब्दवपुर्भूत्वा गोदुग्धपानतत्परः।
रामानन्दं गुरुं मत्वा रामध्यानपरोऽभवत्॥४०॥
भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व ३५५ के बाद चतुर्थ खण्ड अध्याय १७

[2] कबीरपन्थ की बारह प्रमुख शाखायें प्रसिद्ध हैं- जिनके संस्थापक नारायणदास, श्रुतिगोपाल साहब, साहबदास, कमाली, भगवान दास, जागोदास, जगजीवनदास, गरीबदास, तत्त्वाजीवा आदि शिष्य प्रमुख हैं।

निकल पड़ा। उसी 'राम-राम' को कबीरदास ने दीक्षा मान लिया और रामानन्द को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीरदास कहते हैं- **'काशी में परगट भये, रामानन्द चेताये।'**

कबीरदास की शिक्षा-दीक्षा का अच्छा प्रबन्ध न हो सका। कबीरदास का पैतृक व्यवसाय कपड़े बुनना (सूत काटना) था।[1] कबीरदास अपने पैतृक व्यवसाय के काम को करते थे तथा साथ ही साथ साधु-संगति और ईश्वर के भजन में लगे रहते थे। गृहस्थ आश्रम में रहते हुये भी कबीरदास ने अपने आपको प्रभु भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचाया और यही सन्देश पूरी दुनियाँ को दिया।

दादू, नानक, पीपा, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि लोग कबीरदास से प्रभावित थे। ऐसा कहा जाता है कि कबीरदास का पुत्र कमाल कबीर के मत का विरोधी था।[2] ऐसा भी कहा जाता है कि कमाल आजीवन ब्रह्मचारी रहे जिसके कारण कबीर का वंश आगे नहीं बढ़ पाया। कबीरदास की यश और कीर्ति ने वृद्धावस्था में उन्हें बहुत कष्ट दिया। सिकन्दर लोदी ने कबीर के ऊपर बहुत अत्याचार किया, वह कबीर को पानी में फेंकवा दिया, कबीर के ऊपर तीन बार हाथी दौड़ाया गया, परन्तु प्रभु की कृपा से कबीरदास सुरक्षित बच गये।

कबीरदास की मृत्यु सन् १५१८ ई. के आस-पास मानी गयी है। कबीरदास के मृत्यु स्थान को लेकर विद्वानों के बीच मतभेद है। विद्वानों के अनुसार इनका मृत्यु स्थान पुरी, मगहर या रतनपुर (अवध) हो सकता है। अधिकांश विद्वान् ऐसा मानते हैं कि कबीरदास की मृत्यु मगहर (वर्तमान में सन्तकबीर नगर जिला, उ.प्र.) नामक स्थान पर हुई थी।[3] मगहर में कबीर की मजार व समाधि है जिसे हिन्दू-मुस्लिम दोनों पूजते हैं।

ऐसी मान्यता है कि कबीरदास की मृत्यु के पश्चात् उनके अन्तिम संस्कार को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। हिन्दू कहते थे कि उनका अन्तिम संस्कार हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार होगा और मुसलमान कहते थे कि उनका अन्तिम संस्कार मुस्लिम रीति-रिवाज के अनुसार होगा। विवाद के चलते शव के ऊपर से चादर हट गयी तो लोगों ने देखा कि वहाँ पर शव नहीं थी बल्कि शव के स्थान पर फूलों का ढेर पड़ा था। उसमें से आधे फूलों को हिन्दू लोग अपने साथ ले गये और आधे फूलों को मुसलमान लोग अपने साथ ले गये। हिन्दुओं ने अपने रीति-रीवाज के अनुसार और मुसलमानों ने अपने रीति-रीवाज के अनुसार उन फूलों का अन्तिम संस्कार किया।

---

[1] कबीरदास ने स्वयं को जुलाहे के रूप में प्रस्तुत किया है- जाति जुलाहा नाम कबीरा बनि बनि फिरो उदासी।

[2] बूडा वंश कबीर का उपज्यौ पूत कमाल। हरि सिमरन छाँड़ि कै, घर लै आया माल॥ (दोहा-१८५, पृष्ठ संख्या-२६३)॥

[3] सकल जनम सिवपुरी गंवाया। मरती बार मगहर की बासी॥ (१०३, पृष्ठ संख्या-२९५)॥

2.2.2 कबीरदास की रचनायें

कबीर मूलतः भक्त थे। कबीर साधु-सन्तों की संगति और ईश्वर के भजन-चिन्तन में लगे रहते थे। कबीरदास की मृत्यु के पश्चात् कबीर के शिष्यों ने उनके उपदेश को 'बीजक' नाम से संग्रहीत किया। कबीरदास पढ़े-लिखे नहीं थे। कबीर का उद्देश्य कवि बनना नहीं था। कबीर का उद्देश्य कविता करना नहीं था। कबीरदास अपने अनुभव को मौखिक रूप में लोगों को सुनाया करते थे। कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है।

बीजक के तीन भाग हैं- १.साखी, २.सबद (पद) और ३.रमैनी। बीजक में कुल साखियों की संख्या ८०९ है। सबद के अन्तर्गत ४०३ पद संकलित हैं। 'गुरुग्रन्थसाहिब' में कबीर के २२७ पद और २४० साखियाँ सम्मिलित हैं।

कबीरदास की शिक्षाओं और सिद्धान्तों का निरूपण साखी में हुआ है। अधिकांश साखियाँ दोहा छन्द में लिखी गयी हैं। 'साखी' शब्द संस्कृत भाषा के 'साक्षी' शब्द का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ होता है- 'प्रत्यक्ष ज्ञान, आँखों देखी या ठीक प्रकार से समझी हुई बात'। कबीर ने अपने अनुभवी ज्ञान के आधार पर साखी को लिखा है। ज्ञान, भक्ति, सहज कल्याण, सदाचार आदि से सम्बन्धित विचार को स्पष्ट करने के लिये कबीरदास कहते हैं- **'साखी आखी ज्ञान की'**।

सबद के अन्तर्गत पद नामक काव्य रचनायें संकलित हैं। सबद गेय पद हैं। सबद के पद विषय गाम्भीर्य और संगीतात्मकता से परिपूर्ण हैं। कबीर ने सबद में भक्ति-भावना, समाज-सुधार और रहस्यवादी भावनाओं का वर्णन किया है। इसमें कबीर के प्रेम और अन्तरङ्ग साधना की अभिव्यक्ति हुई है। सबद में उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है। रमैनी चौपाई छन्द में है। रमैनी में कबीरदास का रहस्यवाद तथा दार्शनिकता प्रकट की हुई है। सबद और रमैनी गाये जाने वाले गीतों (या भजन) के रूप में हमारे समाज प्रचलित हैं।

कबीरदास की काव्य रचनाओं में पाठभेद की समस्या बहुत अधिक पायी जाती है। कबीर की काव्य रचनायें 'कबीर-ग्रन्थावली' नामक पुस्तक में संकलित हैं। कबीरग्रन्थावली के सम्पादक डॉ. श्यामसुन्दरदास हैं। कबीरग्रन्थावली को कबीर की काव्य रचनाओं का सबसे प्रामाणिक संकलन माना जाता है।

कबीरदास के नाम से प्राप्त होने वाले ग्रन्थों की संख्या निश्चित नहीं है। विद्वानों ने ग्रन्थों की संख्या भिन्न-भिन्न बतायी है जैसे- एच.एच. विल्सन के अनुसार कबीर के नाम पर कुल आठ ग्रन्थ हैं, विशप जी.एच. वेस्टकॉट ने कबीर के ८४ ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत किया है, रामदास गौड़ ने 'हिन्दुत्व' में ७१ पुस्तकें गिनायी हैं।

2.2.3 कबीरदास की काव्यभाषा

भारतीय परम्परा को ज्ञान परम्परा कहते हैं। वेदों में निहित ज्ञान उपनिषद्, भगवद्गीता और पुराण के माध्यम से होता हुआ सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक संस्कृत में निहित ज्ञान पहले लौकिक संस्कृत में आया और फिर जन साधारण की भाषा (ब्रजभाषा, अवधीभाषा इत्यादि) में अभिव्यक्त हुआ। भाषा विचार और भाव अभिव्यक्ति का माध्यम अवश्य है परन्तु भारतीय परम्परा में भाषा की अपेक्षा विचार, भाव और उसकी अभिव्यक्ति को ज्यादा महत्त्व दिया गया है।

कबीरदास की काव्यभाषा को 'सधुक्कड़ी' या 'पंचमेल खिचड़ी' कहा जाता है। कबीर की भाषा में ब्रज, अवधी (पूरबी), भोजपुरी, पंजाबी, राजस्थानी और अरबी-फारसी के शब्दों का मेल देखा जा सकता है। कबीरदास की काव्यभाषा में स्थानीय बोलचाल के शब्दों की प्रधानता है।

कबीर ने अपनी भाषा को सरल और सुबोध रखा जिससे कि उनके विचार आम जनता तक आसानी से पहुँच सके। कबीरदास पढ़े-लिखे नहीं थे। कबीर की भाषा अपरिष्कृत, अकृत्रिम, अनगढ़ है। उसमें कृत्रिमता का नाम नहीं है। स्थानीय बोलचाल के शब्दों की प्रधानता है। कबीर की भाषा में भाव प्रकट करने की सामर्थ्य बहुत तेज है। काव्यानुभूति उच्चकोटि की है। कबीर की सशक्त भावाभिव्यक्ति से प्रभावित होकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को **'वाणी का डिक्टेटर'** कहा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी' कहा है। श्यामसुन्दरदास ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा है। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार कबीर की भाषा पंजाबीपन के नजदीक है। कबीरदास अपनी भाषा के विषय में लिखते हैं कि **'बोली हमारी पूरब की हमें लखैं नहीं कोय।'**

अनपढ़ होते हुये भी कबीर ने जनता पर जितना गहरा प्रभाव डाला, उतना प्रभाव बड़े से बड़े विद्वान् भी नहीं डाल सके। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं- 'कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। इसी व्यक्तित्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोता को बलपूर्वक आकृष्ट करती हैं। इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक सम्भाल नहीं पाता और रीझकर कबीर को 'कवि' कहने में संतोष पाता है।'

क्षेत्रीय भाषा ने वेदान्त के चिन्तन को विस्तार दिया। कबीर ने वेदान्त के चिन्तन को क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। कबीर ने वेदान्त चिन्तन परम्परा को सहज रूप

में प्रस्तुत किया। कबीर ने आम लोगों को वेदान्त की तरफ आकर्षित किया। कबीर ने निर्गुणभक्ति की धारा को बढ़ावा दिया।

2.2.4 सन्तों का भक्ति साहित्य

भारतीय परम्परा को ज्ञान परम्परा कहते हैं। भारत की ज्ञान परम्परा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की मजबूत आधारशिला है। भारतीय ज्ञान परम्परा दुनियाँ की सबसे प्राचीन ज्ञान परम्परा है। भारतीय ज्ञान परम्परा दुनियाँ की सबसे सशक्त ज्ञान परम्परा है। भारतीय ज्ञान परम्परा भारत की पहचान है।

विदेशी आक्रान्ता लोग भारतीय ज्ञान परम्परा को छिन्न-भिन्न करके भारत को कमजोर बनाना चाहते थे। विदेशी आक्रमणों से देश की जनता पस्त हो रही थी। देश में चारो तरफ अशान्ति और अव्यवस्था का बोलबाला था। विदेशी आक्रान्ता लोग भारतीय ज्ञान परम्परा को छिन्न-भिन्न करने की कोशिश कर रहे थे परन्तु उनकी कोशिशें असफल रही। छिन्न-भिन्न होने के बजाय भारतीय ज्ञान परम्परा और भी अधिक मजबूती से उभरकर सामने आयी। भारतीय ज्ञान परम्परा को मजबूती प्रदान करने में भारत के सन्तों ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

महाराष्ट्र में नामदेव, ज्ञानेश्वर और तुकाराम, गुजरात में माळण, भीष्म और केशवहृदयराम, असम में शङ्करदेव और राम सरस्वती, बंगाल में महाप्रभु चैतन्य और चण्डीदास, उड़ीसा में जगन्नाथदास और बलराम तथा उत्तर भारत में रामानन्द के बारह शिष्यों ने इस परम्परा को आगे बढाया। तमिल प्रान्त में कृष्ण भक्त अळवार और आचार्य अपनी भक्ति-भावना के लिये प्रसिद्ध थे।

सन्तों ने क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से भारत की ज्ञान परम्परा को जन-जन तक पहुँचाया। सन्तों ने भक्ति के माध्यम से वेदान्त की चिन्तन परम्परा को जन-जन तक पहुँचाया। भक्ति ने समाज को एकसूत्र में बाँधने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। सन्तों ने भक्ति साहित्य के माध्यम से समाज को एकजुट करने का प्रयास किया।

रामानन्द ने भक्ति का तेजी से प्रचार-प्रसार किया।[1] भक्ति को दक्षिण भारत से उत्तर भारत में लाने का काम रामानन्द ने किया। रामानन्द ने सम्पूर्ण भारत को भक्ति-भावना से सिञ्चित किया। रामानन्द ने उत्तर भारत और दक्षिण भारत की भक्ति परम्पराओं में समन्वय स्थापित किया।

[1] सीता और राम की भक्ति के प्रचार ने समाज को पवित्र मर्यादा मार्ग, कर्त्तव्य पालन तथा सदाचार का पुनीत संदेश भी दिया। वैरागी सम्प्रदाय के लोग सीता और राम तथा श्री वैष्णव सम्प्रदाय के लोग लक्ष्मी और नारायण को आराध्य मानते हैं। रामानन्द राम को ईश्वर, लक्ष्मण को जीव और सीता को प्रकृति की भी संज्ञा देते हैं।

रामानन्द ने पूजा सम्बन्धी अनुष्ठानों के स्थान पर भजन का प्रचार किया। संस्कृत के स्थान पर लोकभाषाओं की प्रतिष्ठा की। रामानन्द ने भक्ति के क्षेत्र में सबको एक धरातल पर खड़ा कर दिया। रामानन्द ने नारा दिया- **'जात-पांत पूछे न कोई, हरि को भजे सो हरि का होई'**।

रामानन्द के बारह शिष्य प्रसिद्ध थे- १.अनन्तानन्द, २.कबीरदास, ३.सुखानन्द, ४.सुरसुरानन्द, ५.पद्मावती, ६.नरहर्यानन्द, ७.पीपानरेश, ८.भावानन्द, ९.रैदास, १०.धनासेन, ११.योगानन्द और १२. गालवानन्द। इन्हें द्वादश महाभागवत के नाम से जाना जाता है। नरहर्यानन्द के शिष्य गोस्वामी तुलसीदास थे।

रामानन्द की भक्ति धारा द्विमुखी हो गयी- १.निर्गुणभक्ति धारा और २. सगुणभक्ति धारा। निर्गुणभक्ति धारा में निर्गुण निराकार राम की भक्ति तथा सगुणभक्ति धारा में सगुण साकार अवतारी राम की भक्ति लोकप्रिय हुई। निर्गुणभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास हैं।[1] सगुणभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास हैं।

2.3 कबीरदास की रचनाओं में भक्तितत्त्व

कबीरदास ने राम नाम की दीक्षा लिया। स्वामी रामानन्द से दीक्षा लेकर कबीर ने प्रारम्भ में योग-साधना किया परन्तु बाद में उन्होंने योग-साधना को छोड़ दिया और सहज-मार्ग के प्रशंसक बन गये। वस्तुतः कबीरदास में एक समाज सुधारक के गुण मिलते हैं जैसे- एक तरफ तो कबीरदास भक्ति के वाह्य प्रदर्शन, पाखण्ड, वाह्य-आडम्बर, मूर्तिपूजा आदि की निन्दा करते हैं तो दूसरी तरफ भगवद्भक्ति, आडम्बर-विहीन सदाचारपूर्ण जीवन तथा कथनी-करनी की एकता पर बल देते हैं। इसलिये कबीरदास वाह्य-आडम्बर विहीन भावभक्ति (प्रेमाभक्ति) को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं।[2]

कबीरदास की रचनाओं में स्पष्ट रूप से अद्वैतवाद का समर्थन दिखायी देता है।[3] कबीर ने अपनी काव्य रचनाओं में उपनिषद् व अद्वैतवेदान्त की शब्दावलियों का यथावत प्रयोग भी

---

[1] कबीरपन्थ की बारह प्रमुख शाखायें प्रसिद्ध हैं- जिनके संस्थापक नारायणदास, श्रुतिगोपाल साहब, साहबदास, कमाली, भगवान दास, जागोदास, जगजीवनदास, गरीबदास, तत्त्वाजीवा आदि शिष्य प्रमुख हैं।

[2] जिहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहीं राम। ते नर इस संसार में, उपजि भये बेकाम॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ६, सुमिरण कौ अंग दोहा संख्या १७)॥

आचार्य शङ्कर प्रेम द्वारा प्रभु में आसक्त मन का निर्मल होना लिखते हैं- 'त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम्।' (आनन्दलहरी-१२)।

[3] पाणी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ। जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ॥ (कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ संख्या , परचा कौ अंग १७)॥

जे वो एकै जाणियाँ, तौ जाँण्याँ सब जाँण। जे ओ एक न जाँणियाँ, तौ सब ही जाँण अजाँण॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १९, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग दोहा संख्या ८)॥

किया है। वे नेति-नेति का आलम्बन लेते हैं, माया को महाठगिन और मन को माया का पाश कहते हैं।[1] उनके मत में प्रभु हैं, ज्ञानरूप, आनन्दस्वरूप हैं।

कबीर मन-वचन-कर्म से भगवान् का सतत् स्मरण एवं भजन करते हैं- **'भगति भजन हरिनांव है, दूजा दुक्ख अपार। मनसा बाचा क्रमना कबीर सुमिरण सार।'**[2] कबीरदास को भगवद्भजन में सुख मिलता है। कबीर के अनुसार भक्ति से मुक्ति मिलती है- **'चरन कंवल चित लाइये, रांम नांम गुण गाइ। कहे कबीर संसा नहीं, भगति मुकति गति पाइ रे।'**[3]

कबीर को भगवान् का राम नाम अत्यन्त प्रिय है। कबीरदास ने राम के लिये ओ३म्, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, पुरुषोत्तम, विष्णु इत्यादि नामों का प्रयोग किया हैं। कबीर के आराध्य देव अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, अविनाशी आदि गुणों वाले हैं। कबीर ने मोक्ष को परमपद, अभयपद, चतुर्थधाम, परमधाम, शून्य, निर्वाण इत्यादि नाम दिया है।[4]

कबीरदास के अनुसार भगवान् की महिमा अनन्त है। लीला अनिर्वचनीय है। वह अजस्र तेज के पुञ्ज हैं। कबीर ने भक्ति के अङ्गों जैसे- गुरुकृपा, भगवत्कृपा, शरणागति आदि को बहुत महत्त्व दिया है।[5] कबीर ने भक्त की जो-जो विशेषतायें बतायी है वे सभी भगवद्गीता से उद्धृत की गयी है।

2.3.1 कबीरदास: भक्ति-भावना की विशेषतायें

(i) निर्गुण ब्रह्मोपासना

कबीरदास निर्गुणब्रह्म के उपासक थे। उनका उपास्य अरूप, अनाम, अनुपम, सूक्ष्मतत्त्व है। इसे वे राम के नाम से पुकारते हैं। कबीर के राम निर्गुण निराकार परम ब्रह्म हैं, दशरथ के पुत्र राम नहीं हैं।

(ii) उत्कृष्ट प्रेम और भक्ति

---

[1] कबीर मन पंछी भया, बहुतक चढ्या अकास। उहाँ ही तैं गिरि पड्या, मन माया के पास॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या , मन कौ अंग, दोहा संख्या २५)॥

[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ५, सुमिरण कौ अंग दोहा संख्या ४।

[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८९, पद संख्या ५।

[4] कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु विचारी॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३७, पद संख्या १५२)॥

[5] जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आई॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २, गुरुदेव कौ अंग दोहा संख्या १३)॥

कहत कबीर गुरु ब्रह्म दिखाया। मरता जरता नजरि न आया॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०२, पद संख्या ४२)॥

कबीर ज्ञान की महत्ता में विश्वास करते थे। उनकी कविता में स्थान-स्थान पर प्रेम और भक्ति की उत्कृष्ट भावना प्रदर्शित होती है। वे कहते हैं- **'कबीर यह प्रेम का, खाला का घर नाहि।'**[1] तथा **'ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय।'**

(iii) रहस्य भावना

आत्मा परमात्मा के विभिन्न सम्बन्धों को जोड़कर आत्मा के परमात्मा से मिलन और अन्त में ब्रह्म में लीन हो जाने के भाव अपनी कविता में कबीर ने व्यक्त किया है- १. **हरिमोर पीउ मैं राम की बहुरिया।**[2] २. **दुलहिनी गावहु मंगलाचार हमारे घर आये राजाराम भरतार।**[3]

(iv) समाज सुधार

सामाजिक जीवन में व्याप्त जाति-भेद, साम्प्रदायिकता, अन्धविश्वास, पाखण्ड एवं आडम्बर, मूर्ति-पूजा आदि को मिटाने के लिये कबीर की वाणी थोड़ी करकस हो उठी है। उन्होंने पाखण्डियों एवं मौलवियों को खूब आड़े हाथ लिया। आज हम जिस हरिजन उद्धार, हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात करते है वह पहले ही शुरु हो गयी थी।

(v) नीति उपदेशक

कबीर ने समाजगत बुराइयों का खण्डन तो किया ही लेकिन उसके साथ आदर्शपूर्ण जीवन के लिये नीतिपूर्ण उपदेश भी दिए। सत्य, तप, अहिंसा को जीवन का आधारभूत तत्त्व माना। धर्म के नाम पर की जाने वाली पशुबद्ध या नरबलि को घृणित माना। अतिथि सत्कार, सन्तोष, दया, करुणा आदि को जीवन के मूलतत्त्व के रूप में प्रतिस्थापित किया। कथनी-करनी के समन्वय पर और सदाचार पूर्ण जीवन पर कबीर ने बल दिया।

(vi) धर्मों की अभिन्नता

कबीर के काव्य में एकेश्वरवाद, अद्वैतवाद, योग साधना, शरणागत भावना तथा अहिंसा, प्रेम साधना आदि का समन्वित रूप देखने को मिलता है। कबीरदास के मानसिक विकास पर अपने समय के वैष्णव सम्प्रदाय और सूफी सम्प्रदाय दोनों का प्रभाव पड़ा है। नाथपंथ के हठयोग का वर्णन उनकी रचनाओं में मिलता है। अतः नाथपंथ की साधना-पद्धति से भी वे प्रभावित थे, पर अन्त तक पहुँचते-पहुँचते वे इनमें से किसी का भी साथ न दे सके।

---

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या, सूरा तन कौ अंग दोहा संख्या १९।
[2] कबीरग्रथावली।
[3] कबीरग्रन्थावली।

कबीर समाज सुधारक एवं युग निर्माता के रूप में सदैव स्मरण किये जायेंगे। उनके काव्य में निहित सन्देश और उपदेश के आधार पर नवीन समन्वित एवं सन्तुलित समाज की संरचना सम्भव है।

2.3.2 भक्ति

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। उसके लिये कुछ लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। जिसकी प्राप्ति के लिये वह सतत् प्रयत्नशील रहता है। भारतीय मनीषियों ने इस लक्ष्य को पुरुषार्थ नाम दिया। पुरुषार्थों की संख्या चार है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है, परम पुरुषार्थ है, परमात्मा का परम धाम है। मोक्ष प्राप्त करने के बाद जीव आनन्द का अनुभव करता है।[1] भक्ति मोक्ष प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है।[2]

आम बोलचाल की भाषा में भक्ति का तात्पर्य- भगवान् या अपने इष्टदेव के लिये किया गया श्रद्धेय कर्म (जैसे पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन, दान, उपासना, तप, जप इत्यादि) से है। दार्शनिक दृष्टि से भक्ति का अर्थ थोड़ा अलग है। हृदयतत्त्व के माध्यम से भगवान् का सान्निध्य प्राप्ति और साक्षात्कार करने का प्रयास ही भक्ति है।

वेदान्त की भक्ति चिन्तन परम्परा का बीज वेदों के प्रकृति प्रेम एवं वैदिक ऋचाओं की स्तुति, प्रार्थना आदि में देखा जा सकता है। गीता की भक्ति निष्काम कर्म पर आधारित थी।

---

[1] 'यो वै भूमा तत्सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१३/१)।
'यदल्पं तन्मर्त्यम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१४/१)। अर्थात् जो अल्प या अपूर्ण है वह मरणशील या नाशवान् है और जो नाशवान् होता है वही दुःख का कारण होता है।
'सः न च पुनरावर्त्तते।' (छान्दोग्योपनिषद्-८/१५/१)।

[2] मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी। (विवेकचूड़ामणि-३२)॥

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥

मामेवैष्यसि युकत्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥

ब्रह्मसंस्थः अमृतत्त्वम् एति॥ (छान्दोग्योपनिषद्-२/२३/२)॥

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/१/३)॥

भक्त्या जानातीति चेन्नाऽभिज्ञया साहाय्यात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/२/६)

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्। (ब्रह्मसूत्र-१/१/७)।

तदाद्रष्टु स्वरूपावस्थानम्। (योगसूत्र)।

लोकरक्षा निष्काम कर्म वाली भक्ति का मूल था।[1] कृष्ण ने जिस भक्ति-भावना का सूत्रपात गीता में किया था उसका व्यापक विस्तार पुराणों में देखा गया। भगवद्गीता में जिस भक्ति-भावना की प्रतिष्ठा हुई उसकी अविरल धारा पुराणों से होती हुई सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुई।

गुरु अपने अज्ञानी शिष्य के हाथ में ज्ञान और भक्ति का दीपक देकर मुक्ति का मार्ग दिखाता है। कबीर ज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करते हैं परन्तु भक्ति उनके जीवन का प्राण है। कबीरदास मन-वचन-कर्म से भगवान् का सतत् ध्यान और भजन करते हैं। उन्हें इसी में सुख मिलता है। इसके अतिरिक्त सभी कार्य उन्हें दुःखरूप प्रतीत होते हैं। कबीर के अनुसार भक्ति से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है-

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।

मनसा बाचा क्रमनां, कबीर सुमिरण सार॥[2]

चरन कवल चित लाइये, रांम नांम गुन गाइ।

कहै कबीर संसा नहीं, भगति मुकति गति पाइ रे॥[3]

भक्तिपथ पर चलने वाले पाखण्डी, वाह्य प्रदर्शन करने वाले, भक्ति का दम्भ भरने वाले, कीर्तन का ढोंग करने वाले व्यक्ति कबीर की दृष्टि में कभी ऊपर नहीं उठ सकते। कबीर ने ऐसे व्यक्तियों का सदैव तिरस्कार किया जिनका हृदय भगवद्भक्ति में नहीं लगा।

ध्रुव और भक्त प्रह्लाद हमेशा कबीरदास की भक्ति-भावना के आदर्श रहते हैं। कबीरदास के अनुसार समस्त कर्मों में भक्ति सर्वश्रेष्ठ कर्म है। कबीरदास के लिये रामभक्ति रूपी रस के आगे अन्य सभी रस नीरस प्रतीत होते हैं- **'राम रस पाईया रे, ताथैं बिसरि गये रस और॥'[4]**

कबीर की रचनाओं का अधिकतर भाग वैष्णव भक्ति से ही सम्बन्ध रखता है। कबीर लिखते हैं- **'मेरे संगी दोइ जणां, एक वैष्णों एक रांम। वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नांम।'[5]**

---

[1] 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥ 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥ भगवान् में मन (चित्त) वाला, भगवान् की भजन करने वाला, भगवान् का पूजन करने वाला और भगवान् को ही नमस्कार करने वाला होना भक्ति कहलाता है।

[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ५, सुमिरण कौ अंग दोहा संख्या ४।

[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८९, पद संख्या ५।

[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १११, पद संख्या ७५।

कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ३२१, पद संख्या १८३।

[5] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ४९, साध कौ अंग दोहा संख्या ४।

कबीरदास ने भागवत भक्ति के प्रतिष्ठाता व्यास, शुकदेव, उद्धव, अक्रूर, हनुमान्, शंकर, प्रह्लाद, ध्रुव विदुर तथा नारद का नाम अनेक बार लिया है। कबीरदास लिखते हैं- 'भगति नारदी रिदै न आई काछि कूछि तन दीना। राग रागनी डिंभ होइ बैठा उन हरि पहि क्या लीना॥ कहु कबीर जन भये खलासे प्रेम भगति जिह जानी॥'[1] नारदी भक्ति का वर्णन करते हुये कबीर कहते हैं-

भगति नारदी मगन सरीरा,

इहि बिधि भव तिरि कहै कबीरा॥[2]

कबीर को नारद की भक्ति में विश्वास है। नारद की तरह कबीरदास भक्ति को व्रत-तप-योग आदि से उर्ध्व स्थान देते हैं। कबीरदास कहते हैं-

तीरथ करि करि जग मुवा, डूंघै पांणी न्हाइ।

रांमहि रांम जपंतड़ां, काल घसीट्यां जाइ॥[3]

देव पूजि पूजि हिंदू मूये, तुरक मुये हज जाई।

जटा बांधि बांधि योगी मूये, इन मैं किनहूं न पाई॥

कवि कवीनैं कविता मूये, कापड़ी के दारौं जाई।

केस लूंचि लूंचि मुये बरतिया, इनमैं किनहूं न पाई॥[4]

कबीरदास कहते हैं कि अगर हृदय में प्रभु के प्रति सच्चा अनुराग नहीं है तो जप, जप, व्रत, तीर्थ यात्रा, गङ्गा स्नान आदि सब व्यर्थ है। कबीरदास कहते हैं- **'कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन माँहि। ऐसै घटि घटि राँम हैं, दुनियां देखै नाँहि॥'[5]** परमात्मा कण-कण में व्याप्त है। कस्तूरी मृग के समान मनुष्य कण-कण में स्थित परमात्मा के बारे में अनजान है। वह उन्हें बाहरी दुनियाँ में खोजता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने भीतर में रहने वाले परमात्मा के प्रति अनभिज्ञ है वह उन पर ध्यान केन्द्रित न करके उन्हें मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारे आदि प्रार्थना स्थलों में ढूँढता रहता है। कबीरदास कहते हैं-

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जांणि।

---

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ३२४, परिशिष्ट भाग २, पद संख्या १९४।
[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १८३, पद संख्या २७८।
[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ३७, चांणक कौ अंग दोहा संख्या १८।
[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १९५, पद संख्या ३१७।

[5] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८१, कस्तूरियाँ मृग कौ अंग दोहा संख्या १।

दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछांणि॥[1]

कबीरदास ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड की वाह्योन्मुखता की निन्दा करते हैं। कबीरदास के अनुसार यदि कोई ज्ञानकाण्डी वेद-पुराण-स्मृति का ज्ञान प्राप्त करके भी उनमें अन्तर्निहित रहस्य को नहीं समझ पाता है तो उसका ज्ञान व्यर्थ है। सन्ध्या-गायत्री-षट्कर्म आदि का नियमित अभ्यास करके भी यदि कोई कर्मकाण्डी भगवद्भक्त नहीं बन सका तो उसका कर्मकाण्ड व्यर्थ है। दिखावा मात्र है।

कबीरदास भगवत्कृपा को सर्वोपरि स्थान देते हैं। कबीर के अनुसार जिस पर प्रभु की कृपा नहीं हुई वह भवसागर से पार नहीं हो सकता। कबीरदास अपने मन को अनन्त-अविनाशी-निरंजन राम में लगाते हैं। राम का ही स्मरण करते हैं। कबीरदास कहते हैं कि भगवत्कृपा इतनी आसानी से नहीं मिलती है। उसके लिये बहुत भटकना पड़ता है-

बन बन ढूंढों नैन भरि जोऊं।[2]

बनि बनि फिरौं उदासी।[3]

कबीर बन बन मैं फिरा, कारणि अपणैं रांम।[4]

कबीरदास ने पूजा-पाठ, विधि-विधान, कर्मकाण्ड की अपेक्षा भावभक्ति को अधिक महत्त्व दिया। कबीर के अनुसार भगवद्भाव रहित पूजा-पाठ व्यर्थ है। भक्ति के लिये भक्त के हृदय में भगवद्भावना का होना अनिवार्य है। कबीर कहते हैं-

क्या जप क्या तप संजमाँ, क्या तीरथ ब्रत स्नान।

जो पै जुगति न जाँनिये, भाव भगति भगवान॥[5]

जदपि रह्या सकल घट पूरी, भाव विनां अभि-अंतरि दूरी॥[6]

भाव भगति सूं हरि न अराधा, जनम मरन की मिटी न साधा॥[7]

साच सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै॥[1]

---

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ४४, भ्रम बिधौंसण कौ अंग दोहा संख्या १०।
[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या , पद संख्या । पद-३७१।
[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या , पद संख्या । पद-२७०।
[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ४९, साध कौ अंग दोहा संख्या ५।

[5] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १२६, पद संख्या १२१।
[6] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २३६, पंक्ति संख्या १, दुपदी रमैंणी।
[7] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २४४, पंक्ति संख्या ५, चौपदी रमैंणी।

भाव भगति की सेवा मांनैं, सतगुर प्रगट कहै नहीं छांनै॥

जब लग भाव भगति नहीं करिहौ, तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ॥

भाव भगति विसवास बिन, कटै न संसै सूल।

कहै कबीर हरि भगति बिन, मुकति नहीं रे मूल।[2]

'अकथ कहांणीं प्रेम की, कछू कही न जाई। गूंगे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई॥'[3] प्रेमाभक्ति कबीर की रचनाओं में अत्यन्त गम्भीर रूप लिये हुये है। प्रेम की कथा अकथनीय है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। उसका रस गूँगे की खायी हुई शक्कर के स्वाद के समान है जिसको गूँगा अनुभव तो करता है लेकिन बता नहीं सकता।

जो कबीर में अध्यात्म देखते भी हैं उनमें भी कम विपक्षी बिन्दु नहीं हैं। आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी की विपक्षी मान्यताओं का उपर उल्लेख किया जा चुका है। पहला कबीर की भक्ति को विदेशी मानता है और दूसरा शाङ्करमत के आलोक में निर्गुणोपासक। एक और हैं, डॉ. राजदेव सिंह। इन्होंने निर्गुण-सगुण धाराओं के मूल में जातीय आधार देखा है और कागभुशुण्डी का आधार लेकर कहा है कि जब कागभुशुण्डी शूद्र योनि में हैं तो निर्गुण की उपासना पर बल देते हैं और सवर्ण ब्राह्मण योनि में आए तब सगुण का समर्थन करने लगे। यह भी एक विपक्षी मुद्दा है। शूद्र तनुभुशुण्डी विष्णु द्रोही अवश्य हैं पर शिवोपासक हैं। शिव मन्दिर में बैठकर जप कर रहे हैं। सवर्ण योनि में वे सगुण राम की उपासना पर बल दे रहे हैं—दोनों सगुण ही हैं यहाँ निर्गुण-सगुण की कोई बात नहीं है। इसी प्रकार विपक्षी मुद्दों में उन्हें हठयोगी बताना और नाथपंथियों से उसे उधार लेना भी एक बिन्दु है। वे सुरत शब्दयोगी हैं न कि हठयोगी। हाँ, वैष्णव परम्परा से उनमें अहिंसा और प्रपत्ति अवश्य विद्यमान है।[4]

कबीरदास कहते हैं-

भगतिनारदी मगन सरीरा

इहविधि भव तिरि कहै कबीरा॥ (कबीरग्रथावली-२७८पदावली)

---

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २४४, अन्तिम पंक्ति, चौपदी रमैंणी।

[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २४५, पंक्ति संख्या १ से लेकर ५ तक, चौपदी रमैंणी।

[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३९, पद संख्या १५६।

[4] कबीर और विपक्षी मुद्दे, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, (कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, सं. बलदेव वंशी पृष्ठ संख्या २७५)।

इनकी भक्ति न तो सूफियों से उधार ली गई है और न ही गुणातीत को आलम्बन बनाने वाली विदेशी है। कबीर ने अनेकत्म अपने को वैष्णव कहा है और यह भी कहा [1]है-

गुरु सेवा करि भगति कमाई तो तैं मनिषा देही पाई।

वे शरीरी सबद (श्री सद्गुरु) की भक्ति करते-करते 'वही' हो जाते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार सद्गुरु-सविशेष ही इनकी भक्ति का आलंबन है। ये रूढ़ अर्थ में सगुणोपासक नहीं हैं अर्थात् अवतार इनकी भक्ति के आलंबन नहीं है।[2]

निष्कर्ष ये हैं[3]-

१. भक्ति आन्दोलन नहीं, एक आध्यात्मिक प्रस्थान है। यदि आन्दोलन है भी तो विदेशी आक्रान्ताओं के विरोध में भारतीय लोगों की एकता का समर्थक है।
२. भक्ति सूफीरंग की नहीं, नारदी या वैष्णवी है।
३. आलंबन शरीरी सबद या सद्गुरु ही है।

वैज्ञानिक भौतिकतावादी मान्यताओं में आस्था रखने वाले चिन्तक एक तरफ भक्ति को उच्चकोटि की मानवता तक सीमित करते हैं, दूसरी ओर उनमें आस्थाशील भौतिकवाद अनुरूप श्रम संस्कृति तथा वर्ग संघर्ष की चेतना का होना बताते हैं (आलोचना सहस्रा की, अंक १, डॉ. शंभुनाथ, पृ. ३०४-३०७) अब इन्हें क्या कहा जाए? यहाँ सन्तों का आध्यात्म ही समूल उच्छिन्न कर दिया गया है। श्रम संस्कृति का आध्यात्म से कोई विरोध नहीं है।[4]

विपक्षियों में अगला वर्ग-- दलित चिंतक डॉ. धर्मवीर भारती प्रभृति का है। आजकल वे बड़े जोर-शोर से यह सिद्ध कर रहे हैं कि कबीर के साहित्य का मूलस्वर आवश्यकता के प्रति जेहाद का है।[5]

कबीर को नारी निन्दक कहने वालों के लिये हमारा उत्तर है कि इतनी व्यापक संवेदना दृष्टि सम्पन्न महापुरुष को नारी-निन्दक के अभियोग में घेर कर छोटा बनाने का प्रयास छोटी दृष्टि, पुरुष सत्तात्मक दृष्टि धारकों का ही कार्य है, अन्यथा कबीर की साखी पर्याप्त है-

नारी जननी जगत् की, पाल पोष दे तोष।

मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष॥[1]

---

[1] कबीर और विपक्षी मुद्दे, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, (कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, सं. बलदेव वंशी पृष्ठ संख्या २७३)।
[2] कबीर और विपक्षी मुद्दे, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, (कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, सं. बलदेव वंशी पृष्ठ संख्या २७३)।
[3] कबीर और विपक्षी मुद्दे, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, (कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, सं. बलदेव वंशी पृष्ठ संख्या २७३)।
[4] कबीर और विपक्षी मुद्दे, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, (कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, सं. बलदेव वंशी पृष्ठ संख्या २७४)।
[5] कबीर और विपक्षी मुद्दे, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, (कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, सं. बलदेव वंशी पृष्ठ संख्या २७४)।

कबीर सम्मत भक्ति के स्वरूप की अवधारणा उनके समग्र वचनों के समेकन से स्पष्ट होगी। कबीर के साहित्य का समग्रता से अध्ययन किये बिना ही कबीर को परम्परा विरोधी सिद्ध करने वालों के तर्क काल्पनिक लगते हैं। ऐसा लगता है कि या तो उनको परम्परा का ज्ञान ही नहीं है या वे लोग किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं। कई स्थानों पर कबीर स्वयं कहते हैं कि मैं अपनी 'साखी' में वही कह रहा हूँ जो वेद-उपनिषद् कहते हैं।

वेदान्त कहता है कोई भी देवी-देवता हो उनका वाह्य स्वरूप जो भी हो परन्तु आन्तरिक रूप से हम उनको परम तत्त्व ही मानते हैं। वही एक तत्त्व है जो सबको जोड़ता है। संसार के सभी रूपों में एकसूत्रता है। इसी एकसूत्रता को हम 'एकोऽहं बहुस्याम' बोलते हैं।

कबीर अद्वैत वेदान्त के मार्ग का अनुसरण करने वाले सन्त हैं। अद्वैत वेदान्त एक तत्त्व में विश्वास करता है। वही एक तत्त्व दुनियाँ को जोड़ता है। अभेद दृष्टि देता है। वही एक तत्त्व है जो संसार में एकसूत्रता का दर्शन कराता है। वेदान्त के अनुसार एक ही तत्त्व सत्य है बाकी सभी भेद अवास्तविक हैं। जाति-व्यवस्था अवास्तविक है, ऊँच-नीच का भेद अवास्तविक है, अमीर-गरीब का भेद अवास्तविक है। अगर हम इन विसंगतियों को वास्तविक मानकर चलेंगे तो तमाम समस्यायें जन्म लेंगी। फिर हमारा समाज बिखरने लगता है।

जो सन्त इस प्रकार की दृष्टि रखता है वह स्त्री विरोधी कैसे हो सकता है। उसको परम्परा विरोधी कैसे कह सकते हैं। कबीर हमारे लिये एक सन्त की भूमिका में हैं, कबीरदास समाज में व्याप्त विसंगतियों को दूर करना चाहते हैं। वे कुरीतियों, आडम्बर और वाह्य प्रदर्शन का विरोध करते हैं न कि परम्परा का विरोध करते हैं।

कबीरदास न तो परम्परा विरोधी थे, न ही स्त्री विरोधी थे, न तो दलित चिन्तक थे। वे केवल सन्त-महात्मा थे और सम्पूर्ण समाज को एक दृष्टि से देखते थे। वे भक्ति के माध्यम से देश को एकसूत्र में बाँधना चाहते थे, एकजुट करना चाहते थे, समाज को रास्ता दिखाने का प्रयास कर रहे थे, समाज को गति देना चाहते थे।

आवश्यकता है कि कबीर का समग्रता से अध्ययन किया जाये। प्रसंग की संगति जाने बिना ही उनकी किसी एक पंक्ति को उद्धृत करके गलत ढ़ंग से व्याख्यायित करना किसी भी दृष्टि से सही नहीं ठहराया जा सकता है।

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार 'मध्ययुग के भारतीय इतिहास का मुख्य अन्तर्विरोध शास्त्र और लोक के बीच का द्वन्द्व है, न कि इस्लाम और हिन्दू धर्म का संघर्ष।'[2]

---

[1] आध्यात्मिक वैश्वीकरण और कबीर, डॉ. बलदेव वंशी, पृष्ठ संख्या ९।

[2] डॉ. नामवर सिंह, दूसरी परम्परा की खोज, पृष्ठ संख्या ७८।

नाश किया जो ब्राह्मणवाद बिरुद्ध थी। उसका नाश हो वह कलि का नाश कहते हैं। अपनी बातों को पहुँचाने के लिये उन्होंने कई भाषाओं का प्रयोग किया। ब्राह्मण स्वार्थ को जिस नये रूप की आवश्यकता थी, वह तुलसी ने दिया और निम्न वर्णों के विद्रोह को दबाकर उच्च वर्गों का सिरदर्द खत्म कर दिया। वे सौ सालों से जो ब्राह्मण से जो ब्राह्मण धर्म शास्त्रों की टीका तथा टीका व्याख्या करके अपने को इस्लाम और उसके प्रभाव से बचाने का प्रयास कर रहे थे, तुलसी ने उन्हें आज़ाद कर दिया। इतना आज़ाद कर दिया कि पुराणकार उच्च वर्ग का काम पूरा हो गया, दरबारी उच्च वर्ग विलास में लग गये।'[1]

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध के अनुसार 'भक्ति आन्दोलन का आविर्भाव एक ऐतिहासिक सामाजिक शक्ति के रूप में जनता के दुःखों एवं कष्टों से हुआ।'[2]

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार 'भक्ति आन्दोलन अखिल भारतीय है, देश और काल की दृष्टि से ऐसा व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन संसार में दूसरा नहीं है।'[3]

डॉ. राम विलास शर्मा के अनुसार 'सन्तों में स्त्री और पुरुष, संन्यास और गृहस्थ, हिन्दू और मुसलमान, सगुणवादी और निर्गुणवादी दोनों हैं।'[4]

डॉ. शिवकुमार मिश्र के अनुसार 'मध्ययुग, जैसा कि सामाजिक इतिहास के बीच से वह उभरता है और भारत में ही नहीं, यूरोप तथा दुनियाँ के अन्य देशों में अपनी पहचान कराता है, अपने प्रत्येक क्रिया कलाप के मूल में धर्म की केन्द्रीय स्थिति को सूचित करता है। अतएव मध्य युग में उभरकर सामने आने वाला कोई भी जनतांत्रिक अभियान धर्म की चौहद्दियों के भीतर ही अपनी अभिव्यक्ति करता है।'[5]

शिवकुमार मिश्र तुलसी को 'लोकधर्मी चेतना' रखने वाले कवि बताते हैं। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार सूरदास और जायसी समाज में मानवीयता एवं प्रेम के महत्त्व को ऊँचा उठाने वाले हैं। डॉ. रामविलास शर्मा भक्त कवियों को अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध लड़ने वाले 'वीर कवि' मानते हैं।

2.3.3 शरणागति

शरणागति भक्तिविशेष है। कुछ मायने में शरणागति भक्ति से विलक्षण है जैसे- शरणागति जीवन में एक ही बार की जाती है जबकि भक्ति प्रतिदिन और जीवन पर्यन्त की जाती है।

---

[1] डॉ, रॉगेयराघव, रॉगेयराघव ग्रन्थावली-१०, पृष्ठ संख्या २१९।
[2] गजानन माधव मुक्तिबोध, नई कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ संख्या ९२।
[3] रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, पृष्ठ संख्या ९०।
[4] डॉ. रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, पृष्ठ संख्या ४५।
[5] डॉ. शिवकुमार मिश्र, भक्ति काव्य और लोक जीवन, पृष्ठ संख्या २।

शरणागत का शाब्दिक अर्थ है- 'शरण में आया हुआ'। किन्तु आध्यात्मिक सन्दर्भ में शरणागत का अर्थ- 'ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण से है'।[1] भगवान् को उनकी कृपा के बिना नहीं जाना जा सकता है। शरणागति प्रभुकृपा प्राप्त करने का एक साधन है।[2] शरणागति प्रभुकृपा का आधार है। प्रभुकृपा के बिना मुक्ति पाना सम्भव नहीं है। शरणागति भक्ति की सर्वोच्च अवस्था है। कबीरदास लिखते हैं-

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।

तेरा तुझकौं सौंपतां, क्या लागै मेरा॥[3]

शरणागति दो प्रकार की हो सकती है- १.कपिकिशोरन्याय और २.मार्जारकिशोरन्याय। वैष्णव धर्म के आचार्यों ने शरणागति को छः भागों में विभाजित किया है- १. अनुकूल का संकल्प, २. प्रतिकूल का त्याग, ३. गोमृत्ववरण, ४. रक्षा का विश्वास, ५. आत्मनिक्षेप और ६. कार्पण्य।[4] शरणागति के स्वरूप का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ पर केवल उनका उदाहरण प्रस्तुत किया जायेगा।

(i) अनुकूल का संकल्प

रांम नांम निज अमृत सार, सुमिरि सुमिरि जन उतरे पार।

कहै कबीर दासनि कौ दास, अब नहीं छाड़ौं हरि के चरन निवास॥[5]

(ii) प्रतिकूल का त्याग

विष तजि राम न जपसि अभागे, का बूड़े लालच के लागे॥[6]

(iii) गोमृत्ववरण

एक निरंजन अलह मेरा, हिंदू तुरक दहूं नहिं नेरा।

कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा॥[1]

---

[1] तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६२)॥

[2] तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६२)॥

[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १९, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग दोहा संख्या ३।

[4] अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोमृत्ववरणं तथा। २८।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥२९॥
(अहिर्बुध्न्यसंहिता ३७।२८२,९)॥
उपरोक्त श्लोक ब्रह्माण्डपुराण (३/४१/७६-७७) में भी उपलब्ध होता है।

[5] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१८, पद संख्या ३९३।

[6] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१३, पद संख्या ३७५।

(iv) रक्षा का विश्वास

मेरे रांम की अभै पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।[2]

कहत कबीर सुनहुं रे लोई, हरि बिन राखनहार न कोई॥[3]

कहै कबीर मेरे संग न साथ, जल थल में राखै जगनाथ॥[4]

(v) आत्मनिक्षेप

कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनिये देव मुरारी।

इत भैभीत डरौं जम दूतनि, आये सरनि तुम्हारी॥[5]

कहै कबीर बाप रांम राया, अबहूँ सरनि तुम्हारी आया॥[6]

(vi) कार्पण्य

कहा करौं कैसें तिरौं भौ जल अति भारी।

तुम्ह सरणागति केसवा, राखि राखि मुरारि॥[7]

उपरोक्त अङ्गो को शरणागति की आधारशिला कहा जाता है। उपरोक्त पद्धति से आप अपने चेतना में व्याप्त ईश्वर की शरण में जा सकते हैं। प्रभु की शरण प्राप्त करने के लिये साधक में श्रद्धा और विश्वास का होना आवश्यक है। उपनिषद् में भगवान् को 'शरणागत वत्सल' कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि भगवान् अपने शरण में आये हुये भक्त से उतना ही प्यार करते हैं तथा उतना ही पालन-पोषण करते हैं जितना कि एक माँ-बाप अपनी सन्तान से करते हैं। माया जाल को पार करने का एकमात्र उपाय शरणागति है।

2.3.4 नवधा भक्ति

पुराणों में नौ प्रकार की भक्ति बतायी गयी है।[8] जिसे नवधाभक्ति कहते हैं। नवधाभक्ति अर्थात् भक्ति नौ लक्षणों वाली है।[1] नवधाभक्ति के नौ रूप हैं- श्रवण, कीर्तन, स्मरण,

---

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २०२, पद संख्या ३३८।
[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३१, पद संख्या १३४।
[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ११८, पद संख्या ९५।
[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २०३, पद संख्या ३४१।
[5] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २६६, पद संख्या १७९।
[6] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २०७, पद संख्या ३५७।
[7] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४८, पद संख्या १७८।
[8] नवविधश्चैव पुराणादिषु (भक्तिमीमांसा- १/२/३)।

पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।[2] नवधाभक्ति का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ पर केवल उनका उदाहरण प्रस्तुत किया जायेगा।

(i) गुणश्रवण

थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ।

अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ॥[3]

(ii) नाम तथा गुण कीर्तन

गाया तिनि पाया नहीं, अण-गांयां थैं दूरि।

जिनि गाया विसवास सूं, तिन रांम रह्या भरपूरि॥[4]

हरि जस सुनहि न हरि गुन गावहि।

बातनही असमान गिरावहि॥[5]

(iii) स्मरण

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल॥[6]

(iv) पादसेवन

चरननि लागि करौं बरियाई।

प्रेम प्रीति राखौं उरझाई॥[7]

हरि चरनूं चित राखिये, तौ अमरापुर होइ॥[8]

(v) अर्चन

---

[1] इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ (भागवतपुराण-६/५/२४)॥

[2] श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (भागवतपुराण-७/५/२३)॥
श्रीमद्भागवत पुराण में प्रह्लाद जी ने कहा है- 'भगवान् विष्णु के नाम, रूप, गुण और प्रभाव आदि का श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान् की चरणसेवा, पूजन और वन्दन एवं भगवान् में दासभाव, सखाभाव और अपने को समर्पण कर देना- यह नौ प्रकार की भक्ति है।

[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४, परचा कौ अंग दोहा संख्या २९।

[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ५९, बेसास कौ अंग दोहा संख्या २१।

[5] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ३३१, परिशिष्ट भाग २ पद संख्या २१९।

[6] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ५, सुमिरण कौ अंग दोहा संख्या ५।

[7] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८७, पद संख्या ३।

[8] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ४६, भेष कौ अंग दोहा संख्या ९।

पांहण केरा पूतला, करि पूजै करतार।[1]

पांहन कूं का पूजिए, जे जनम न देई जाब।[2]

कबीर के अनुसार पूजा की सामग्री और पुजारी दोनों अन्दर ही हैं- 'देवल मांहैं देहुरी, तिल जेहै विसतार। मांहैं पाती मांहिं जल, मांहैं पूजणहार॥'[3]

(vi) **वन्दन**

बीनती एक रांम सुंनि थोरी।

अब न बचाइ राखि पति मोरी॥[4]

(vii) **दास्य**

बंदे तोहि बंदिगी सों कांम, हरि बिन जांनि और हरांम।

दूरि चलणां कूंच बेगा, इहां नहीं मुकांम॥[5]

(viii) **सख्य**

जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख॥[6]

पांणीं हीं तैं पातला, धूंवां ही तैं झींण।

पवनां वेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह॥[7]

(ix) **आत्मनिवेदन**

कबीर करत है बीनती, भौसागर के ताईं।

बंदे ऊपरि जोर होत है, जंम कूं बरजि गुसाईं॥[8]

भक्ति मुख्य रूप से दो तरह की होती है- पहली साधनभक्ति और दूसरी साध्यभक्ति। साधनभक्ति को अपराभक्ति 'गौणी' तथा साध्यभक्ति को पराभक्ति भी कहते हैं। साधनभक्ति

---

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ४३, भ्रम बिधौंसण कौ अंग दोहा संख्या १।
[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ४४, भ्रम बिधौंसण कौ अंग दोहा संख्या ३।
[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५, परचा कौ अंग दोहा संख्या ४२।
[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ११३, पद संख्या ७८।
[5] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १६८, पद संख्या २३७।
[6] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३, परचा कौ अंग दोहा संख्या १२।
[7] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २९, मन कौ अंग दोहा संख्या १२।
[8] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८५, बीनती कौ अंग दोहा संख्या ५।

से साध्यभक्ति की प्राप्ति होती है।[1] नवधाभक्ति अपराभक्ति में आती है अर्थात् नवधाभक्ति को अपराभक्ति के अन्तर्गत रखा जाता है। आर्तादि भक्तत्रय नवधाभक्ति का अभ्यास करते हैं।

2.3.5 भक्ति के साधन

अब प्रश्न यह है कि भक्ति साध्य है या साधन? भक्ति अपने अङ्ग साधनों की साध्य है[2] भक्ति के अङ्ग अनुष्ठानीय होने के कारण भक्ति के साधन कहे जाते हैं। भक्ति मुक्ति (मोक्ष) का साधन है[3] अर्थात् भक्ति का साध्य मुक्ति (मोक्ष) है।

भक्ति के अङ्ग भक्ति-भावना को सुदृढ़ करने के साधन हैं जो अनिवार्य हैं। भक्ति सीढ़ियों में अन्तिम सीढ़ी है तथा भक्ति के अंग, अन्य प्रारम्भिक सीढ़ियाँ हैं। भक्तिवेदान्त के अनुसार भक्ति अन्तिम सोपान है जिस पर आरूढ़ होकर जीव प्रभु को प्राप्त करता है। भक्तिवेदान्त के आचार्य भक्त के समस्त व्यवहारों का साध्य भगवद्भक्ति को मानते हैं।

कबीरदास के अनुसार भक्ति अङ्ग के साधन हैं- भगवत्कृपा, गुरुकृपा, योग, ज्ञान, स्वाध्याय, वैराग्य, विश्वास, सत्संग, कामनाओं का परित्याग, कथनी-करनी में एकता, विषय-त्याग, हरिविमुखों का त्याग, वैराग्य, आत्मज्ञान। कबीरदास लिखते हैं-

नर देही बहुरि न पाईये, तीथैं हरषि हरषि गुंण गाईये॥

जांणि मरै जे कोई, तौ बहुरि न मरणाँ होई॥

गुर बचनां मंझि समावै, तब रांम नांम ल्यौ लावै॥

होइ संत जनन के संगी, मन राचि रह्यौ हरि रंगी॥

धरौ चरन कवल बिसवासा, ज्यूं होइ निरभै पद बासा॥

मन हीं मन समझाया, तब सतगुर मिलि सचुपाया॥[4]

---

[1] मामुपेत्य पुनर्जन्मः दुःखालयमशाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/१५)॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५४)॥
इदं परमं गुह्यमं मद्भक्तेष्वभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६८)॥

[2] श्रीमद्भागवत पुराण (३/२९/१५ से लेकर १९ तक) , नारदभक्तिसूत्र (३४ से ५० तक तथा ६१, ६२, ६३, ६४, ७४, ७६, ७८ और ७९), शाण्डिल्यभक्तिसूत्र (१८, २१, २६, ४५, ४९, ५९, ६४, ६५, ७४, ८३, ८५ और ९६) में भक्ति के अङ्गों का वर्णन किया गया है। भक्तिरसामृतसिन्धु (१/९) में उत्तम भक्ति के अङ्गों की चर्चा की गयी है।

[3] 'मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।' (विवेकचूड़ामणि-३२)। श्रीमद्भागवतपुराण (४/२०/२१) और श्रीमद्भगवद्गीता (११/४८, ५३ और ५४) में भक्ति को भगवत्प्राप्ति का उपाय बताया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण (११/४/१) के अनुसार भक्ति ही भगवत्प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।

[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४६, पद संख्या १७३।

भगति दुहेली रांम की, नहिं जैसि खाँडे की धार।

जे डालै तौ कटि पड़ैं, नहीं तौ उतरे पार॥[1]

कबीरदास ने मुक्त-कण्ठ से गुरु का यशोगान किया हैं। कबीर को सद्गुरु से बढ़कर अपना कोई सगा-सम्बन्धी दिखाई नहीं देता। सद्गुरु अपने शिष्य को मनुष्य से देवता बना देता है। वह हृदय की आँख खोलकर शिष्य को उस अनन्त जग-कन्त के दर्शन कराता है, जिससे बढ़कर इस संसार में अन्य कुछ भी दर्शनीय नहीं है। गुरु के इस अनन्त उपकार का बदला शिष्य भला क्या चुका सकेगा। इसी हेतु कबीर को गोविन्द और गोविन्द को बता देने वाले गुरु में कोई अन्तर नहीं जान पड़ता। सद्गुरु की प्राप्ति वे भगवत्कृपा का ही प्रासाद समझते हैं।

2.3.6 भक्त

भक्ति-भावना के तीन आधार स्तम्भ हैं- पहला भक्ति, दूसरा भक्त और तीसरा भज्य। भजन-क्रिया को भक्ति कहते हैं। भक्ति एक क्रिया है जिसका साध्य ईश्वर है और आश्रय जीव है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि भक्ति विषय, आश्रय और सम्बन्ध रूपी अंशत्रय की अपेक्षा रखती है। जहाँ ईश्वर विषय है और जीव आश्रय है। ईश्वर और जीव दोनों की भजन (उपासना/भावना) के साथ प्रपत्ति सम्बन्ध है।

इस अध्याय में अबतक भक्ति और उसके अङ्गोपाङ्गों का विस्तृत विश्लेषण किया गया और अब भक्ति के द्वितीय स्तम्भ (भक्त) का विवेचन किया जायेगा। भक्त की विशेषताओं को बताते हुये कबीरदास कहते हैं-

कबीर हरि सबकूं भजै, हरि कूं भजै न कोइ॥[2]

तेरा जन एक आध है कोइ।

काम क्रोध अरु लोभ बिवर्जित, हरिपद चीन्हैं सोई॥

राजस तांमस सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया।

चौथे पद कौं जे जन चीन्हैं, तिनहि परम पद पाया॥

असतुति निंद्या आसा छांडै, तजै मांन अभिमानां।

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ७०, सूरा तन कौ अंग दोहा संख्या २५।
[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ७१, काल कौ अंग दोहा संख्या ४०।

लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानां॥

च्यंतै तौ माधौ च्यंतामणिं, हरिपद रमैं उदासा।

त्रिस्नां अरु अभिमांन रहित है, कहै कबीर सो दासा॥[1]

2.3.7 ईश्वर

भजन-क्रिया का साध्य ईश्वर है। भक्ति-भावना ईश्वर के अस्तित्व पर आश्रित है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने वाला भक्त प्रतिक्षण ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करता है। भक्त के लिये ईश्वर ही उसका सर्वस्व है। वह एक क्षण के लिये भी ईश्वर से अलग नहीं होना चाहता है।[2]

कबीरदास राम के भक्त थे लेकिन वह दशरथ के पुत्र राम नहीं थे। कबीर निर्गुणब्रह्म को मानते थे। निर्गुण यानी एक निराकार स्वरूप जिसमें भगवान् का कोई रूप नहीं होता है, कबीरदास ऐसे ब्रह्म को मानते थे। कबीरदास कहते हैं-

मोको कहाँ ढूँढ़े रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में॥

ना तीरथ में ना मूरत में, ना एकान्त निवास में।

ना मन्दिर में ना मस्जिद में, ना काबे कैलास में॥

ना मैं जप में ना मैं तप में, ना मैं बरत उपवास में।

ना मैं किरिया करम में रहता, नहिं जोग संन्यास में॥

नहिं प्राण में नहिं पिण्ड में, ना ब्रह्माण्ड आकास में।

ना मैं प्रकृति प्रवार गुफा में, नहिं स्वांसों की स्वांस में॥

खोजि होए तुरन्त मिलि जाऊँ, इक पल की तलास में।

कहत कबीर सुनो भई साधो, मैं तो हूँ विश्वास में॥[3]

---

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५०, पद संख्या १८४।

[2] भक्त भक्तिभावना में लीन रहता है। क्योंकि ईश्वर ही भक्त के लिये प्राण, जीवन एवं आधार हैं।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१०/९)॥

'जीवनं सर्वभूतेषु।' (श्रीमद्भगवद्गीता-७/९)।

[3] अद्वैतवेदान्तकबीरदर्शनयोः वर्तमान-भारतीय-समाज-हितानुचिन्तन-दिशा समीक्षात्मकमध्ययनम्, हरिराम शास्त्री, पीएच.डी. शोधप्रबन्धः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, १९९९ ई.।

महर्षि वेदव्यास ने समस्त पुराणादि शास्त्र की रचना किया। वेदव्यास के अनुसार मूलतत्त्व एक है, निर्गुण है, सर्वव्याप्त है। फिर भी व्यास जी अपनी रचनाओं में परमतत्त्व के रूप की कल्पना करते हैं, स्तुति निर्वचन करते हैं। व्यास की दृष्टि में ऐसा करना एक प्रकार का अपराध है। महर्षि वेदव्यास अपने द्वारा किये गये इस अपराध के लिये क्षमा माँगते हुये कहते हैं-

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितं,

स्तुत्याऽनिर्वचनीयताऽखिलगुरोर्दूरीकृता यन्मया।

व्यापित्वंञ्च विनाशितं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना,

क्षन्तव्यं जगदशी, तद्विकलतादोषत्रयं मत्कृतम्॥[1]

हे जगदीश्वर! मेरी बुद्धिगत विकलता के ये तीन अपराध हैं- १.अरूप की रूप कल्पना, २.अनिर्वचनीय का स्तुति निर्वचन और ३. व्यापी की (तीर्थादि) स्थान विशेष में निर्देश, को तुम क्षमा करो।[2]

पांणीं ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ। जो कुछ था सोई भया, अब कछू कहा न जाइ॥[3] कबीर की रचना में अद्वैत का समर्थन स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहा है। जैसे जल से हिम बनता है, परन्तु वह पिघलकर पुनः जल का रूप धारण कर लेता है वैसे ही जीव एवं जगत् ब्रह्म से निकल कर पुनः ब्रह्म हो जाते हैं। कहने का अर्थ यह है कि सृष्टि ईश्वर से निकली हुई है जो अन्ततः फिर से ईश्वरमय हो जाती है।

---

[1] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कबीर' नामक पुस्तक के पृष्ठ संख्या १७५ पर।

[2] अरूप की रूप कल्पना:

आपका कोई रूप नहीं है फिर भी ध्यान के द्वारा मैंने अपने ग्रन्थों में आपके रूप की कल्पना किया है।

अनिर्वचनीय का स्तुति निर्वचन:

आप अनिर्वचनीय हैं अर्थात् व्याख्या करके आप के रूप को समझा पाना सम्भव नहीं है। फिर भी स्तुति के द्वारा मैंने व्याख्या करने की कोशिश किया है। वाणी के द्वारा आपके स्वरूप को समझाने की कोशिश किया है।

व्यापी की स्थान विशेष में निर्देश:

आप समस्त भुवन में व्याप्त हो, इस ब्रह्माण्ड के कण-कण में व्याप्त हो। फिर भी तीर्थयात्रादि का विधान करके मैंने आपके उस व्यापित्व को तोड़ा है। क्योंकि जो सर्वत्र व्याप्त है उसके लिये तीर्थ-विशेष में जाने की क्या व्यवस्था।

[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३, परचा कौ अंग दोहा संख्या १७।

कबीरदास कहीं-कहीं वेद की निन्दा करते हैं- **'वेद कतेब कहहु मत झूठे, झूठा जो न बिचारै।'**[1] तो कहीं-कहीं वेद-पुराण को साक्षी भी देने लगते हैं- **'वेद पुरान कहत जाकी साखी।'**[2] वस्तुतः कबीरदास का उद्देश्य वेद की निन्दा करना नहीं है। कबीरदास वेद के पाठमात्र को नहीं बल्कि वेदों में निहित भाव को ग्रहण करने के अभिलाषी हैं- **'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।'**[3]

कबीरदास वेद के चिन्तन पर बल देते हैं। उसके शाब्दबोध पर बल देते हैं। कबीरदास कहते हैं कि वेद में निहित रहस्य का ज्ञान होना चाहिए- 'चारिउं बेद पढ़ाइ करि, हरि सूं न लाया हेत। बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूंढै खेत॥'[4] कबीरदास के राम निर्गुण होते हुये भी सगुण हैं। वे शेषनाग, गरुड़, लक्ष्मी का नाम लेते हैं। भगवान् की गति को समझ पाना सहज कार्य नहीं है-

निरगुण रांम निरगुंण राम जपहु रे भाई,

अबिगति की गति लखी न जाई॥

चारि बेद जाकै सुमृत पुरांनां, नौ ब्याकरनां मरम न जांनां॥

सेस नाग जाकै गरड़ समांनां, चरन कवल कवला नहीं जांनां॥[5]

प्रभु की लीला अनिर्वचनीय है। प्रभु की लीला के विषय में बताते हुये कबीर कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर तीनों देव राम के तीन रूप हैं, तीन मूर्तियाँ हैं- **'तीनि देवौं एक मूरति, करै किसकी सेव॥**[6] कबीर कहते हैं कि सृष्टि की रचना प्रक्रिया में रजोगुण की आवश्यकता पड़ती है, पालन मेम् सतोगुण की तथा संहार का कार्य तमोगुण प्रधान है- **'रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई। कहै कबीर एक रांम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई॥'**[7] अर्थात् ब्रह्मा रजोगुणी, शंकर तमोगुणी तथा विष्णु सतोगुणी समझे जाते हैं। यही हरिलीला का विस्तार है। प्रभु की लीला अनिर्वचनीय है। वह कण-कण में व्याप्त हैं। कबीर ने अपने काव्य रचनाओं में भगवान् की अवतारी लीला पर भी प्रकाश डाला है।

---

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ३२३, परिशिष्ट भाग २, पद संख्या १९२।
[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १८४, पद संख्या २८३।
[3] ऋग्वेद- (१/१६४/३९)।
[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ३६, चांणक कौ अंग दोहा संख्या ९।
[5] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०४, पद संख्या ४९।
[6] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५५, पद संख्या १९८।
[7] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०६, पद संख्या ५७।

जिस प्रकार ऋग्वेद के नासदीयसूक्त में सृष्टि, सृष्टि का मूल कारण, सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिति-लय आदि के विषय में रहस्यात्मक प्रश्न उठाये गये हैं। ठीक उसी प्रकार कबीर ने निम्न काव्य रचना में सृष्टि से सम्बन्धित रहस्यात्मक प्रश्न किये हैं-

रांम राइ अबिगत बिगति न जानं,

कहि किम तोहि रूप बषानं॥

प्रथमे गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पांणां।

प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौंन बिनांणीं॥

प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत कि रेतं।

प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज कि खेतं॥

प्रथमे दिवस कि रैंणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुन्यं।

कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहां कुछ आहि कि सुन्यं॥[1]

यह सृष्टि परमेश्वर से अलग नहीं है। वह सबको अतिक्रान्त करके व्याप्त है। वह सबमें व्याप्त है। सम्पूर्ण सृष्टि उससे परिपूर्ण है। वह चर-अचर, स्थावर-जंगम सबका आत्मा है- **'आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'**[2] परमेश्वर संसार के सभी रूपों में विद्यमान है। उपनिषद् कहती है- **'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।'**[3] निखिल सृष्टि को प्रभु का रूप कहा जाता है। इसका समर्थन कबीरदास ने भी किया है।

कबीरदास लिखते हैं- **'जाकै मुह माथा नहीं, नहीं रूपक रूप। पुहुप बास थैं पतला, ऐसा तत अनूप॥'**[4] अर्थात् वह रूप, रेखा, रंग आदि सबसे पृथक् है। प्रभु इन सबमें अनूप तत्त्व हैं। उसके उसके मुँह, माथा आदि कुछ भी नहीं है। वह पुष्प के सौरभ से भी पतला है। जब सौरभ की सूक्ष्मता ही ग्राह्य नहीं हो सकती तो उस अनूप तत्त्व की सूक्ष्मता का कहना ही क्या है। वह इतना आसानी से समझ में नहीं आ सकता है। साधकों ने अपनी साधना या तप द्वारा उसकी झलक देखी है। उसकी एक झलक से ही साधक कृतकृत्य हो जाता है।

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४३, पद संख्या १६४।
[2] यजुर्वेद- (१३/४६)।
[3] कठोपनिषद्- (२/५/९)।
[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ६०, पीव पिछांणन कौ अंग दोहा संख्या ४।

'कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ। तेज पुंज पारस धणीं, नैनूँ रहा समाइ॥'[1] इन पंक्तियों में कबीरदास ने अपने अनुभव को व्यक्त किया है। जिससे अनुसार कबीर ने भगवान् के दर्शन की झलक पायी थी। कबीर के अनुसार परब्रह्म के तेज का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। कबीर ने जिस तेज का दर्शन पाया था वह भगवद्गीता के विश्वरूप दर्शन के समान है- **'दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता। यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः॥**[2]

ईश्वर सृष्टि का रचयिता, पालक और संहारक है। सत्त्वादि त्रिगुणों के आधार पर वह ब्रह्मा, विष्णु (हरि) और शंकर कहलाता है-**'रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई।'**[3] कबीरदास की सृष्टि रचना विषयक पंक्तियाँ स्पष्ट रूप से अद्वैत का समर्थन करती है- **एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा॥**[4] **माटी एक सकल संसारा, बहु विधि भांडे घड़ै कुँम्भारा॥**[5]

कबीर के राम अविनाशी हैं- **कहै कबीर सबै जग बिनस्या, रहे रांम अबिनासी रे॥**[6] जीव जन्म-मरण, अविर्भाव-तिरोभाव के चक्र में पड़ते हैं। आचार्य शङ्कर कहते हैं- **'ब्रह्म सत्यं जन्मिथ्या।**[7]

अद्वैतवेदान्त परमतत्त्व को ब्रह्म कहते हैं। अद्वैतवेदान्त के मत में ब्रह्म के अतिरिक्त जीव या प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। कबीरदास भी स्थान-स्थान पर इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं- **पांणी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ। जो कुछ था सोई भया, अब कछु कहा न जाइ॥**[8] अर्थात् पानी हिम का सघन रूप धारण करता है और हिम पिघलकर पुनः पानी हो जाता है ठीक उसी प्रकार ब्रह्म ही जगत् और जीव रूप में भासित होता है। प्रलयावस्था में जगत् और जीव पुनः ब्रह्ममय हो जाते हैं।

ईश्वर अद्वैत है।[9] इसके प्रतिपादन में कबीर ने बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव, जल-तरङ्ग-न्याय, कनक-कुण्डल-न्याय आदि का सहारा लिया है। उनका मत है कि जगत् और जीव के रूप में

---

[1] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५, परचा कौ अंग दोहा संख्या ३८।
[2] श्रीमद्भगवद्गीता- (११/१२)।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ (मुण्डकोपनिषद्-२/२/१०)॥

[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०६, पद संख्या ५७।

[4] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०५, पद संख्या ५५।
[5] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०५, पद संख्या ५३।
[6] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१०, पद संख्या ३६६।
[7] विवेकचूड़ामणि-२०।
[8] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३, परचा कौ अंग दोहा संख्या १७।
[9] मैं तैं तैं मैं ए द्वै नांहीं, आपै अकल सकल घट मांहीं॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५७, पद संख्या २०३)॥

मानो ब्रह्म ही क्रीडा कर रहा है, खेल खेल रहा है।[1] न कोई यहाँ मरता है, न पैदा होता है, न स्वर्ग है, न नरक। यह सब उस प्रभु का खेल है।

कबीरदास कहते हैं- **इनमैं आप आप सबहिन मैं, आप आपसूं खेलै॥[2] मैं तैं तैं मैं ए द्वै नांहीं, आपै अकल सकल घट माहीं॥[3]** अद्वैत के समर्थन में कबीरदास का एक प्रसिद्ध दृष्टान्त है- **जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी। फूटा कुम्भ जल जल हि समाना, यह तथ कथौ गियानी॥[4]** अर्थात् जैसे घड़े के अन्दर और बाहर जल है, घड़े के फूटते ही जल जल में समा जाता है वैसे ही क्रीडाजाल रूप कर्मजाल के समाप्त होते ही एक तत्त्व अवशिष्ट रह जाता है। अभेद की स्थिति में पहुँच जाता है। भेद तभी तक भासित होते हैं जब तक अद्वैत स्थिति तक पहुँच नहीं होती है।

ईश्वर के नाम और रूप अनेक हैं। **'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति।'[5]** इस श्रुति के अनुसार एकमात्र परमसत्ता स्वरूप परमेश्वर ही सत् है। जिसे हरि, नारयण, कृष्ण और विष्णु आदि नामों से पुकारा जाता है। वह देवों का भी देव है। वह आत्माओं का भी आत्मा है। अज्ञानी पुरुष भगवान् के विभिन्न नाम और रूप को भगवान् से पृथक् समझकर भजता है। जिसके कारण वह व्यक्ति भक्ति के वास्तविक फल से वंचित रह जाता है।[6] कबीरदास को भगवान् का राम नाम अत्यन्त प्रिय है फिर भी उन्होंने अपने समय में प्रचलित भगवान् के अन्य नामों का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है जो निम्नवत हैं-

ओ३म्, राम, कृष्ण, विष्णु, परब्रह्म, साईं, भगवान्, हरि, गोविन्द, गोपाल, केशव, कमलाकन्त, कृष्ण, मदनमनोहर, हरि, बीठुला, श्रीरंग, बनवारी, दामोदर, शालिग्राम,

---

[1] इनमैं आप आप सबहिन मैं, आप आपसूं खेलै॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५१, पद संख्या १८६)॥

[2] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५१, पद संख्या १८६।

[3] कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५७, पद संख्या २०३।

[4]

[5] एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति। (ऋग्वेद-१/१६४/४६)।

एकैव आत्मा बहुधा स्तूयते। (निरुक्त)। एक ही आत्मा विभिन्न देवताओं के नाम से स्तुत हुआ है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्ससुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ (ऋग्वेद-१/१६४/४६)॥ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥(यजुर्वेद-३२/१)॥

या देवानां नामधः एक एव। (अथर्ववेद-२/१/३)।

अग्निर्वै सर्वा देवताः। विष्णुः सर्वा देवताः। (ऐतरेयब्राह्मण)। एक ही दिव्य तत्त्व अन्य समस्त दिव्य तत्त्वों का वाचक बन जाता है।

ऋग्वेद- (२/१)। कठोपनिषद्- (५/१२)। मनुस्मृति- (१२/१२३)।

[6]

गोपीनाथ, चतुर्भुज, मुकुन्द नारायण, माधव, नारयण, जगन्नाथ, विष्णु, नारायण, गोविन्द, मुकुन्द, मुरारी, बनवारी, राम, नरहरि, माधव मधुसूदन, पंचानन, श्रीमुरारि, शाङ्र्गपणि, पुरुष, पुरुषोत्तम, निरञ्जन, अल्ला, रहीम, खुदा, साहिब, दयाल, कर्तार, करीम।[1]

---

[1] ओ३म्:

ओंकार आदि है मूला। राजा परजा एकहि सूला॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २४३, चौपदी रमैंणीं पंक्ति संख्या १)॥ ओ ओंकार आदि में जाना। लिखि और मेटै ताहि न माना। ओ ओंकार लखै जो कोई। सोई लखि मेटणा न होई॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ३१०, परिशिष्ट भाग २, पद संख्या १५२)॥

राम: पपीहा ज्यूं पिव-पिव करूं, कब रे मिलहुगे राम॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ९, बिरह कौ अंग दोहा संख्या २४)॥

कृष्ण: कृसन कृपाल कबीर कहि इम प्रतिपालन क्यों करै॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ५७, बेसास कौ अंग दोहा संख्या १)॥

विष्णु: विष्णु ध्यान सनान करि रे, बाहरि अंग न धोइ रे॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१८, पद संख्या ३९१)॥

परब्रह्म: पार ब्रह्म देख्या हो तत बाड़ी फूली। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १६०, पद संख्या २१४) उलटी चाल भिलै परब्रह्म कौं सो सतगुरु हमारा। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४५, पद संख्या १७०)।

साईं: और न कोइ सुनि सकै, कै साईं कै चित्त॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ९, दोहा संख्या २०)॥

भगवान्: काम क्रोध त्रिष्णां तजै, ताहि मिलै भगवान॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०, बिरह कौ अंग दोहा संख्या ३०)॥

हरि: कहौ संतौ क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि-दीदार। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ७, सुमिरण कौ अंग दोहा संख्या २७)।

गोविन्द: गोब्यंद के गुण बहुत हैं, लिखै जु हिरदै मांहिं॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ७९, उपजणि कौ अंग दोहा संख्या ७)॥

गोपाल: प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१७, पद संख्या ३९०)।

केशव: कलंक उतारौ केसवा भांनौ भरम अँदेस॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८५, बीनती कौ अंग दोहा संख्या ४)॥

कमलाकन्त: चमकै बिजुरी तार अनंत। तहां प्रभु बैठे कंवलाकंत॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १९९, पद संख्या ३२८)॥

कृष्ण, मदनमनोहर, हरि: टिकुटी भई कान्ह कै कारणि, भ्रंमि भ्रंमि तीरथ कीन्हां हो। सो पद देहु मोहि मदन मनोहर, जिहि पदि हरि मैं चीन्हां हो॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ११२, पद संख्या ७७)॥

बीठुला, श्रीरंग, बनवारी: मन के मोहन बीठुला, यहु मन लागौ तोहि रे॥ अष्ट कंवल दल भीतरा, तहा श्रीरंग केलि कराइ रे॥ षोडस कंवल जब चेतिया, तब मिलि गये श्री बनवारि रे॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८८, पद संख्या ४)॥

दामोदर: तुम्ह कृपाल दयाल दामोदर, भगत बछल भौ हारी॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५३, पद संख्या १९१)॥

शालिग्राम: सेवैं सालिगराम कूं, मन की भ्रांति न जाइ। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ४४, भ्रम बिधौंसण कौ अंग दोहा संख्या ६)।

गोपीनाथ: एक निसप्रेमी निरधार का, गाहक गोपीनाथ। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ४७, कुसंगति कौ अंग दोहा संख्या २२)।

चतुर्भुज: रे जन मन माधव स्यों लाइये, चतुराई न चतुर्भुज पाइये। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २८०, परिशिष्ट भाग २, पद संख्या ५२)।

मुकुन्द नारायण: मन मुकुन्द जिह्वा नारायन परे न जम की पांसी। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २६४, परिशिष्ट भाग २, पद संख्या ३)।

माधव: माधौ कब करिहौ दाया। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १९२, पद संख्या ३०८)। माधौ दारन दुख सह्यौ न जाई। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१५, पद संख्या ३८४)।

किसी भी पदार्थ के गुण उसके स्वरूप को समझने में सहायक होते हैं। परब्रह्म परमात्मा के अनन्त गुण हैं। ये गुण परमात्मा के स्वरूप को समझने में सहायक है। कबीरदास ने अपनी रचनाओं में परमात्मा अनेक गुणों का उल्लेख किया है जैसे- सत्, चित्, आनन्द, सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमान्, अनादि अनन्त, अविनाशी, अजर-अमर अलख, सृष्टि का रचयिता, पालयिता और संहर्ता, कर्म-फल-प्रदाता, त्रिभुवननाथ, जगदीश, दयालु, भक्तवत्सल दयालु, पिण्ड और ब्रह्माण्ड से भी परे, अगोचर, अभय, राजा, ठाकुर, भूख-प्यासरहित, सुख-दुखरहित, अभङ्ग अखण्ड एक रस।[1]

नारायण: ताथैं सेविये नाराइणां, प्रभु मेरौ दीनदयाल दया करणां। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १७२, पद संख्या २४८)।

जगन्नाथ: कहै कबीर मेरे संग न साथ, जल थल में राखै जगनाथ। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २०३, पद संख्या ३४१)।

विष्णु, नारायण, गोविन्द, मुकुन्द: मेरी जिभ्या बिस्न नैन नारांइन, हिरदै जपौं गोविन्दा। जम दुवार जब लेखा मांग्या, तब का किहिस मुकुन्दा॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १७३, पद संख्या २५०)॥

मुरारी: कहत कबीर हमको दुख भारी, बिन दरसन क्यों जीवहि मुरारी। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १८५, पद संख्या २८७)। कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनिये देव मुरारी। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १७९, पद संख्या २६६)।

बनवारी, राम, नरहरि, माधव मधुसूदन: राम ऐसी हौं जानि जपौं नरहरी, माधव मधुसूदन बनवारी। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१२, पद संख्या ३७४)।

पंचानन, श्रीमुरारि: तू करी डर क्यूं न गुहारि। तू बिन पंचाननि श्रीमुरारि॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१५, पद संख्या ३८५)॥

शाङ्र्गपणि: जब लग हीन पड़े नहिं बाणीं। तब लग भज मन सारङ्गपाणीं॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २०५, पद संख्या ३४८)॥

पुरुष: कहै कबीर हमें ब्याहि चले हैं पुरिष एक अविनासी। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८७, पद संख्या १)।

पुरुषोत्तम: आनंदमूल सदा परसोतम, घट बिनसे गगन न जाई लै। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १८७, पद संख्या २९३)।

निरञ्जन: एक निरंजन अल्लह मेरा, हिन्दू तुरक दहूं नहिं नेरा। कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २०२, पद संख्या ३३८)।

अल्ला: अल्ला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निन्दा। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०४, पद संख्या ५१)।

रहीम: दिल ही खोजि दिले दिल भींतरि, इहां रांम रहिमानां। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १७६, पद संख्या २५९)। काबा फिरि कासी भया, राम भया रहीम। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ५४, मधि कौ अंग दोहा संख्या १०)।

खुदा: जोरी कीयां जुलम है, मागै न्याव खुदाह। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ४३, साच कौ अंग दोहा संख्या ९)।

साहिब: सिर साहिब कौ सौपना, सोच न कीजै सूरि। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ६९, सूरा तन कौ अंग दोहा संख्या ११)।

दयाल: दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौडि। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १६, परचा कौ अंग दोहा संख्या ४८)।

कर्तार: जम राणौं गढ भेलिसी, सुमिरि लै करतार। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१, चितावणी कौ अंग दोहा संख्या ७)।

करीम: करम करीमां लिखि रह्या, अब कछू लिख्या न जाइ। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ५८, बेसास कौ अंग दोहा संख्या ७)।

[1] गुंण मैं निरगुंण निरगुंण मैं गुंण है, बाट छांड़ी किंयूं बहियैं। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४९, पद संख्या १८०)।

सर्वव्यापकता: नाति सरूप वरण नहीं जाकै, घटि घटि रह्यो समाई॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४९, पद संख्या १८०)॥

मानव जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष या मुक्ति है। मुक्ति को परम पिता परमेश्वर का परम धाम कहते हैं। परमेश्वर के परम धाम को वैष्णवों ने वैकुण्ठ, वृन्दावन, गोलोक, साकेत आदि नाम दिये। नाथपंथी और शैव परमेश्वर के परम धाम को कैलास तथा मानसरोवर कहते हैं। यह

सर्वशक्तिमान्: साईं सूँ सब होत है, बंदे थैं कुछ नांहिं। राई थैं परबत करै, परबत राई मांहि॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ६२, सम्रथाई कौ अंग दोहा संख्या १२)॥

अविनाशी: कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह बिनसि, रहैगा सोई॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १२१, पद संख्या १०३)॥ कहै कबीर सबै जग बिनस्या, रहे राम अबिनासी रे॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१०, पद संख्या ३६६)॥

अनादि अनन्त: सेइ मन समझि संम्रथ सरणांगता, जाकी आदि अंति मधि कोई न पावै। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५५, पद संख्या १९९)।

अभङ्ग अखण्ड एक रस: आदि मधि अरु अंत लौं अबिहड सदा अभंग। कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८६, अबिहड़ कौ अंग दोहा संख्या ३)॥

अजर-अमर अलख: अजरा अमर कथै सब कोई, अलख न कथणां जाई॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४९, पद संख्या १८०)॥

सृष्टि का रचयिता, पालयिता और संहर्ता: रजगुन ब्रह्मा, तमगुन संकर, सतगुन हरि है सोई। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०६, पद संख्या ५७)। अर्थात् वह ब्रह्मा, विष्णु (हरि) और शंकर कहलाता है। माटी एक सकल संसारा, बहु विधि भांडे घडै कुम्भारा॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १०५, पद संख्या ५३)॥

कर्म-फल-प्रदाता: जो जस करिहै सो तस पइहै, राजा रांम नियाई॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५६, पद संख्या २००)॥ सांई मेरा बाणियां, सहजि करै ब्यौपार। बिन डांड़ी बिन पाइड़ैं तौले सब संसार॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ६२, सम्रथाई कौ अंग दोहा संख्या ८)॥

त्रिभुवननाथ: मिलियैं त्रिभवननाथ सूँ, निरभै होइ रहीये॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१२, पद संख्या ३७३)॥

जगदीश: जोति बिना जगदीश की, जगत् उलंघ्या जाइ। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ७७, अपारिष कौ अंग दोहा संख्या ४)।

दयालु: मोहिं आग्या दई दयाल दया करि, काहू कूँ समझाइ। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १९६, पद संख्या ३१८)।

भक्तवत्सल दयालु: तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर भक्तवछल भौ-हारी॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५३, पद संख्या १९१)॥

पिण्ड और ब्रह्माण्ड से भी परे: प्यंड ब्रह्मांड छाँड़ि जे कथिये, कहै कबीर हरि सोई॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४९, पद संख्या १८०)॥

अगोचर: नैनां बैन अगोचरी श्रवनां करनी सार। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २४१, बारहपदी रमैंणीं)। है कोई रांम नांम बतावै, वस्त अगोचर मोहि लखावै॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १६२, पद संख्या २१८)॥

अभय: संतो से अनभै पद गहिये। कला अतीत आदि निधि निरमल, ताकूं सदा विचारत रहिये॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३९, पद संख्या १५७)॥

राजा: कोऊ हरि समान नहिं राजा। ऐ भूपति सब दिवस चारि के झूठे करत दिवाजा॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २७८, पद संख्या ४७)॥

ठाकुर: दासकबीर को ठाकुर ऐसो, भगत की सरन उबारै॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १२७, पद संख्या १२२)॥

भूख-प्यासरहित: भूष न त्रिषा, धूप नहीं छाहीं॥ सुख दुख रहित, रहै सब मांहीं॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २४०, बारहपदी रमैंणीं, पंक्ति संख्या ४)॥

सुख-दुखरहित: कबीर साथी सो किया, जाकै सुख दुख नहीं कोई। हिलि मिलि ह्वै करि खेलि स्यूं, कदे बिछोह न होई॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ८६, अबिहड़ कौ अंग दोहा संख्या १)॥

बौद्धों के यहाँ शून्य या निर्वाण की अवस्था कहलाती है। उपनिषद् के कतिपय ऋषियों ने चतुर्थ धाम का वर्णन किया है। परमेश्वर के परम धाम का विस्तृत वर्णन फुटनोट में किया गया है।

बेहद, शून्य तथा महल, गगन, निर्वाण, शून्य, देहुरा तथा देवल, घट, अन्तर, हृदयकमल, हृदयसरोवर, शून्य शिखर गढ़, गूढ़ तथा ज्योतिर्मय धाम, मानसरोवर, चतुर्थ धाम, परम पद, अभयपद, वैकुण्ठ, बिहिश्त इत्यादि सभी परमेश्वर के परम धाम के नाम हैं।[1]

---

[1] बेहद, शून्य तथा महल: हद छाँडि बेहद गया, किया सुन्नि असनान। मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया विश्राम॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३, परचा कौ अंग दोहा संख्या ११)॥

गगन: मन लागा उनमन्न सू, गगन पहूंता जाइ। देखा चन्द बिहूँणा चांदिणा, तहां अलख निरंजन राइ॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३, परचा कौ अंग दोहा संख्या १५)॥

निर्वाण: कहैं कबीर विचारि करि, वो है पद निरवांन॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २४३, बारपदी रमैंणीं)॥

शून्य: सुनि मण्डल में पुरिष एक, ताहि रहै ल्यौ लाइ॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या ६७, गुरसिष हेरा कौ अंग दोहा संख्या ७)॥

देहुरा तथा देवल: नींव बिहूँणां देहुरा, देह बिहूँणां देव। कबीर तहां बिलंबिया, करै अलष की सेव॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५, परचा कौ अंग दोहा संख्या ४१)।

घट: कहै कबीर अब सोवौं नाहिं, राम रतन पाया घट मांहि॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २०६, पद संख्या ३५२)॥

अन्तर: अंतरि कंवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहां होइ। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३, परचा कौ अंग दोहा संख्या ७)।

हृदयकमल: अनहद सबद उठै झणकार, तहां प्रभु बैठे समरथ सार। कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पङ्कज मैं लिया निवास॥(कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १९९, पद संख्या ३२८)॥ यहाँ पर 'रिदा' का अर्थ है- हृदय।

हृदयसरोवर: रे मन बैठि कितै जिनि जासी। हिरदै सरोवर है अविनासी॥ काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १४५, पद संख्या १७१)॥

शून्य शिखर गढ़: कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ़ मांहि॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३, परचा कौ अंग दोहा संख्या ८)॥

गूढ़ तथा ज्योतिर्मय धाम: अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति। जहाँ कबीरा बंदिगी; तहाँ पाप पुन्य नहीं छोति॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १२, परचा कौ अंग दोहा संख्या ४)॥

मानसरोवर: मानसरोवर सुभर जल, हंसा केकि कराहिं। मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जांहि॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १५, परचा कौ अंग दोहा संख्या ३९)॥

चतुर्थ धाम: कहै कबीर हमारे गोव्यंद, चौथे पद में जन का ज्यंद। (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २१०, पद संख्या ३६५)। चौथे पद को जो नर चीन्हें, तिनहि परम पद पाया॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २७२, परिशिष्ट भाग २, पद संख्या २८)॥

परम पद: साई माई शास पुनि साई, साई याकी नारी। कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु विचारी॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १३७, पद संख्या १५२)॥ रांम के नांम परंम पद पाया, छूटे बिघन बिकारा॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या १७९, पद संख्या २६७)॥

अभय पद: जहं अनभौ तहं मैं नहीं, जहं मैं तहं हरि नाहि॥ (कबीरग्रन्थावली पृष्ठ संख्या २६३, परिशिष्ट भाग १, दोहा संख्या १८१)॥

तृतीय अध्याय

सूरदास की रचनायें एवं वेदान्त का सगुण भक्ति विमर्श

विषय विश्लेषण की सुविधा को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत अध्याय को कुल तीन बिन्दुओं में विभाजित किया गया है- १. वेदान्त का सगुण भक्ति विमर्श, २. सूरदास और ३. सूरदास की रचनाओं में भक्तितत्त्व। पुनः उपरोक्त बिन्दुओं को उप-बिन्दुओं में विभाजित किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय के प्रथम चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- उपनिषद् के अनुसार मूलतत्त्व क्या है? मूलतत्त्व का स्वरूप क्या है? वह निर्गुण से सगुण रूप कब और कैसे धारण करता है? निर्गुण से सगुण रूप धारण करने का प्रयोजन क्या है? निर्गुणब्रह्म क्या है? सगुणब्रह्म क्या है?

प्रस्तुत अध्याय के द्वितीय चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- वल्लभाचार्य कौन थे? वल्लभ का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं जीवन यात्रा कैसी थी? वल्लभ का सिद्धान्तपक्ष क्या है? वल्लभ का आचारपक्ष क्या है? वल्लभ वेदान्त की परम्परा में सूरदास की भूमिका क्या थी? पुष्टिमार्ग किसे कहते हैं? पुष्टिमार्गीय भक्ति का स्वरूप क्या है? पुष्टिमार्गीय भक्ति में सूरदास का योगदान क्या था?

प्रस्तुत अध्याय के तृतीय चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- सूरदास कौन थे? सूरदास का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं जीवन यात्रा कैसी थी? सूरदास के गुरु कौन थे? अष्टछाप किसे कहते हैं? सूरदास का अष्टछाप से क्या सम्बन्ध था? कृष्णभक्ति साहित्य में अष्टछाप का योगदान क्या था? कृष्णभक्ति साहित्य का मूल स्रोत क्या है? सूरदास की काव्य रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय क्या है? वेदान्त विचार को लोकप्रिय बनाने में ब्रजभाषा की भूमिका क्या थी? कृष्णभक्ति चेतना को लोकप्रिय बनाने में सूरदास का योगदान क्या था?

सूरसागर, सूरसारावली, साहित्यलहरी, उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र, अणुभाष्य (ब्रह्मसूत्रभाष्य), भागवतपुराण, (श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कन्ध की) सुबोधिनी टीका आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका सहयोग प्रस्तुत अध्याय के लेखनकार्य में लिया गया। सूरदास की तीन काव्य रचनायें हैं- १. सूरसागर, २. सूरसारावली और ३. साहित्यलहरी। सूरदास की काव्य रचनाओं की प्रामाणिकता और उपलब्धता पर बहुत विवाद है। इस अध्याय के लेखनकार्य का मूल आधार सूरसाहित्य और उपनिषद् है। यथा अवसर अन्य ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है। विषय विश्लेषण को आसान बनाने के लिये आलोचनात्मक-विधा के ग्रन्थों का सहारा लिया गया है जैसे- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित 'सूरदास' नामक ग्रन्थ आदि।

3.1 वेदान्त का सगुण भक्ति विमर्श

वेदान्तदर्शन का आधार प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र) है। उपनिषद् प्रस्थानत्रयी का मूल है। भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र उपनिषद् की व्याख्या हैं। अब प्रश्न यह है कि निर्गुणब्रह्म और सगुणब्रह्म क्या है? वेदान्त में इसका प्रारम्भ कहाँ से और कैसे होता है? जहाँ भी एकत्व का रूप है वह निर्गुण है और उसी को कठोपनिषद् में कहा गया है- **'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥'**[1] वह शब्द रहित है, रूप रहित है, रस रहित है, गन्ध रहित है।

वह एक है- **'एकमेवाद्वितीयम्'**[2] **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'**[3]। वह एक जहाँ भी है वह निर्गुण है लेकिन जैसे ही वह शक्ति से युक्त होता है सगुण रूप धारण कर लेता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् कहती है- **'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्। यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥'**[4] कहने का तात्पर्य यह है कि निर्गुणब्रह्म या निष्क्रियब्रह्म जब आत्मशक्ति से युक्त होता है अर्थात् जब उसकी आत्मशक्ति सक्रिय हो जाती है तो वह सगुणब्रह्म हो जाता है।

दूसरे शब्दों में कहें तो शक्ति से सम्पन्न है जो वह सगुणब्रह्म है। इसलिये आचार्य शङ्कर ब्रह्म को परिभाषित करते हुये कहते हैं- **'सर्व शक्ति समन्वित।'** शक्तिसम्पन्न से तात्पर्य यह है कि शक्ति का क्रियात्मक रूप होना। जैसे ही शक्ति सक्रिय होती है वह निर्गुण से सगुण बन जाता है। जब वह सगुण बन जाता है तो सृष्टि की प्रक्रिया शुरु हो जाती है।

जब सृष्टि की प्रक्रिया शुरु होती है तो इसके लिये कहते हैं कि **'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।'**[5] यहाँ आत्मनः का तात्पर्य है- 'शक्ति सम्पन्न ब्रह्म'। आत्मा का मतलब ब्रह्म है। यहाँ पर आत्मा निर्गुण नहीं है बल्कि सगुण है। जैसे ही ब्रह्म शक्ति सम्पन्न होता है अर्थात् उसकी शक्ति क्रियात्मक हो जाती है तो उससे आकाश की उत्पत्ति होती है, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की और जल से पृथिवी की उत्पत्ति होती है।

---

[1] कठोपनिषद्- (१/३/१५)।
[2] छान्दोग्योपनिषद्- (६/२/१)।
[3] तैत्तिरीयोपनिषद्- (२/१/१)।
[4] श्वेताश्वतरोपनिषद्- (१/३)।
[5] तैत्तिरीयोपनिषद्- (२/१)।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी पञ्चभूत हैं। ये पञ्चभूत सूक्ष्ममहाभूत हैं। फिर सूक्ष्ममहाभूत से अन्तःकरण इत्यादि बनता है, फिर महाप्राण बनता है। सूक्ष्ममहाभूत निर्मित अन्तःकरण, महाप्राण इत्यादि पञ्चीकरण से होते हुये स्थूल जगत् बनाते हैं।

सगुणब्रह्म से तात्पर्य यह है कि उसकी सत्ता सब में है। जिसको भगवान् कृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं- **'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥'**[1] मुझको जो सब में देखता है, सबको मुझमें देखता है। ये स्थिति जो है यह स्थिति संसार की है। इस स्थित को हमारे ऋषियों, महर्षियों और सन्तों ने साधना के द्वारा समझने का प्रयास किया है। उसी के आधार पर पर्यावरण सुरक्षित है। उसी के आधार पर हमारी पारिवारिक व्यवस्था है। उसी के आधार पर हमारी पूरी व्यवस्था है। उसी के आधार पर हम **'वसुधैव कुटुम्बकम्'**[2] बोलते हैं। **'यत्र विश्वं भवत्येक नीडम'**

ये जो जीवन दृष्टि है, ये जीवन दृष्टि ही दूसरे को परेशान करने की दृष्टि हमें नहीं देती बल्कि दूसरे का सम्मान करने की दृष्टि देती है। जब हमारे पास इस प्रकार की जीवन दृष्टि होती है तो ऊँच-नीच का भाव खत्म हो जाता है। जब हमारे पास इस प्रकार की जीवन दृष्टि होती है तो हम दूसरे धर्मों को भी अपनाते हैं। दुनियाँ का कौन ऐसा धर्म है जो भारत में नहीं आया हो? भारत में किस धर्म को सम्मान नहीं दिया गया। उसी धर्म को अपने ही देश में उतना सम्मान नहीं मिलता है जितना भारत में मिलता है। भारत में सभी धर्मों को सम्मान दिया गया क्योंकि हम ऐसा मानते हैं कि वे लोग भी हमारे हैं।

विवेकानन्द का कहना है कि हमारा धर्म वह धर्म है जिसमें सभी धर्म समाहित हैं। मेरा सम्बन्ध उस धर्म से है जिस धर्म में सारे धर्म उसी प्रकार आकर मिल जाते हैं जैसे समुद्र में नदियाँ आकर मिल जाती हैं। विवेकानन्द कहते हैं कि मैं उस धर्म को प्रणाम करता हूँ, उस सभ्यता को प्रणाम करता हूँ जिसमें संन्यास की परम्परा ने एक ऐसी धारा बनायी है जिसने मानवता को जीवित रखा है।

हिन्दू धर्म वह धर्म है जिसमें अनन्तकाल से संन्यास की परम्परा चली आ रही है। संन्यास की परम्परा जहाँ भी रहेगी वहाँ मानवता जीवित रहेगी। संन्यास परम्परा तो त्याग की परम्परा है। संन्यासी का मतलब ही यह है कि लोगों के कल्याण के लिये चौबीस घण्टे समर्पित रहना। उस संन्यास परम्परा में ऋषियों ने अपना सारा जीवन ही दूसरों के कल्याण के लिये लगा दिया। भारतीय समाज ज्ञान प्रधान समाज है। हिन्दू धर्म ने सभी धर्मों को अपने अन्दर समाहित किया। किसी धर्म से घृणा नहीं किया। सभी धर्मों को आदर दिया।

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता- (६/३०)।

[2] महोपनिषद्- (अध्याय ४, श्लोक ७१)।

जो इस प्रकार की दृष्टि है वही दृष्टि सगुणब्रह्म की है। उसका सगुण स्वरूप यही है। वे ऐसे ईश्वर की बात कर रहे हैं जो शक्ति से युक्त है। उसी शक्ति से सबकी रचना हुई है। जब सबकी रचना एक ही शक्ति से हुई है तो सभी धर्मावलम्बी भी उसी के रूप हैं- **'रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव'**[1] ऐसा नहीं है कि जो लोग भारत में रहने वाले हैं केवल वही उसके रूप हैं। बल्कि जो लोग सऊदी अरब में रहते हैं वे लोग भी उसी के रूप है। जो लोग अमेरिका में रहते हैं वे लोग भी उसी के रूप है। नदी-नाले, पेड़-पौधे आदि सब कुछ उसी का रूप है।

इस प्रकार की जो दृष्टि है वह सगुणब्रह्म की दृष्टि है। उस दृष्टि के आधार पर भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं- **'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव'**[2] जैसे धागे में मणि गूँथा हुआ रहता है वैसे ही मुझमें सारी सृष्टि गूँथी हुई है।

सब में एक तत्त्व है जैसे- **'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।'**[3] जिस प्रकार मिट्टी से बने सभी बर्तनों में एक सत् तत्त्व मिट्टी है उसी प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि के मूल मे एक तत्त्व है। जो इस प्रकार की दृष्टि है उसकी अभिव्यक्ति भक्ति आन्दोलन में हुई। सूरदास के कृष्ण ये हैं, तुलसीदास का राम ये हैं, नानक के निर्गुण राम ये हैं, मीरा के कृष्ण ये है। परन्तु सब में एक तत्त्व है।

कई लोग सगुण को ही परमरूप मानते हैं। जब सगुण को परम रूप मानते हैं तो वो फिर अपने और भगवान् में भेद देखते हैं लेकिन भगवान् में ही सब कुछ है- **'हरि को भजै सो हरि का होई।'** तुलसीदास कहते हैं कि भगवान् के भक्त भगवान् से भी ज्यादा आदरणीय होते हैं। विवेकानन्द भी यही कहते हैं कि हर एक मनुष्य भगवान् के रूप हैं। नर ही नारायण है, नारायण ही नर है, नारायण ने नर रूप में सेवा करने का अवसर प्रदान किया है। जब हमारी दृष्टि ऐसी होती है तो वह हमारे अन्तःकरण को शुद्ध बनाती है।

शङ्कराचार्य कहते हैं- **'यत्-यत् कर्म करोमि तत्-तत् अखिलम् शम्भो तव आराधनम्।'**[4] अर्थात् हम अपने जीवन में जो भी काम करते रहते हैं वह सब आपकी आराधना है। **'आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं, पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा**

---

[1] कठोपनिषद्- (२/१/९)।

[2] श्रीमद्भगवद्गीता- (७/७)।

[3] छान्दोग्योपनिषद्- (६/१/४)।

[4] शिवमानसपूजा- (४)। स्तोत्ररत्नावली पृष्ट संख्या- (२०)।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/२७)॥

समाधिस्थितिः। संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरः, यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥'[1]

सूरदास वल्लभ के शिष्य थे। वल्लभ कहते हैं कि **'सर्वं कृष्णमयं जगत्'**[2]। अब प्रश्न यह है कि सूरदास का कृष्ण क्या है? सूरदास एक-एक पत्ते में, पेड़-पौधे में, कदम्ब के पेड़ में, यमुना आदि सब में कृष्ण को ही देखते हैं। सब में जब कृष्ण हैं तो हम किस रूप में देखें? इसके जवाब में आचार्य शङ्कर कहते हैं कि ये सब आत्मतत्त्व है, सब में चेतना भी है, चेतना रूप है, जो भी चेतना है इसीलिये काम कर रहे हैं। किसी में चेतना है उसके लिये काम कर रहे हैं।

सूरदास के सगुणब्रह्म का मतलब- **'सर्वं कृष्णमयं जगत्'**[3]। तुलसीदास के ब्रह्म का मतलब- 'परम कारण जिसकी अभिव्यक्ति सभी रूपों में हुई'। निर्गुण ही सगुण बन जाता है लेकिन मूल तत्त्व निर्गुण है। एक ही सब कुछ है। सब में एक तत्त्व है।

3.1.1 आचार्य वल्लभ

वेदान्तदर्शन का आधार प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र) है। अनेक आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा और अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से वेदान्त का प्रतिपादन किया। वेदान्तदर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय हैं- शङ्कराचार्य का ब्रह्माद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, मध्व का द्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद, आचार्य वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद और चैतन्यमहाप्रभु का अचिन्त्यभेदाभेद।

साधन-पथ की समानता के आधार पर इन सम्प्रदायों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- पहला शाङ्करवेदान्त और दूसरा भक्तिवेदान्त। पहले वर्ग में शङ्कराचार्य और उनके अनुयायियों को रखा जाता है तथा दूसरे वर्ग में रामानुज, मध्व, निम्बार्क, आचार्य वल्लभ एवं चैतन्यमहाप्रभु को रखा जाता है।

भक्तिवेदान्त के आचार्यों ने अधिकांशतः सगुणभक्ति को पोषित किया। भक्तिवेदान्त के स्रोत-ग्रन्थ उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र और भागवतपुराण हैं।[4] भक्तिवेदान्त का ब्रह्म सगुणब्रह्म है। भक्तिवेदान्त के लोग सगुणब्रह्म को विष्णु, नारायण, कृष्ण इत्यादि नामों से पुकारते हैं।

---

[1] शिवमानसपूजा- (४)। स्तोत्ररत्नावली पृष्ट संख्या- (२०)।

[2] रतिः कृष्ण कथायां च यस्याश्रुपुलकोद्गमः। मनो निमग्नं तत्रैव स भक्तः कथितो बुधैः॥(ब्रह्मवैवर्तपुराण-४/१/४४)॥
पुत्रदारादिकं सर्वं जानाति श्रीहरेरिति। आत्मना मनसा वाचा स भक्तः कथितो बुधैः॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण-४/१/४५)॥
दयाऽस्ति सर्वभूतेषु सर्वं कृष्णमयं जगत्। यो जानाति महाज्ञानी स भक्तो वैष्णवोत्तमः॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण-४/१/४७)॥

[3] ब्रह्मवैवर्तपुराण, खण्ड-४ (श्रीकृष्णजन्मखण्डे), अध्याय- १, श्लोक- ४७।

[4] उपनिषद्: वैदिक परम्परा को प्रस्तुत करती है।
भगवद्गीता: उपनिषद् के विचारों का सारांश है।
ब्रह्मसूत्र: उपनिषद् के विचारो का व्यवस्थित रूप है।
भागवतपुराण: ब्रह्मसूत्र का विस्तृत रूप है।

आचार्य वल्लभ ने विष्णु के अवतारों का प्रचार किया। इनके अनुसार भक्ति मुक्ति का साक्षात् कारण है। आचार्य वल्लभ ने भक्तिमार्ग के प्रचार-प्रसार में भक्ति को मुक्ति से भी अधिक महत्त्व दिया है। भक्तिवेदान्त के अनुसार साधन भी भक्ति है और मोक्ष (साध्य) भी भक्ति है।

आचार्य वल्लभ भक्ति के दो भेद मानते हैं- विहिता और अविहिता।[1] वल्लभ की विहिताभक्ति नारद और रूपगोस्वामी की पराभक्ति के समकक्ष है। गौणीभक्ति रागानुरागीभक्ति के समकक्ष है। आचार्य वल्लभ का यह विभाजन भक्तिरसामृतसिन्धु के विभाजन के सदृश माना गया है।

भक्तिवेदान्त के अनुसार सब कुछ सत्य है। ब्रह्म भी सत्य है, जगत् भी सत्य है और जीव भी सत्य है। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो भक्ति-भावना के सम्पादन में द्वैत का होना स्वाभाविक है। भक्ति जनित द्वैतभाव ब्रह्मसाक्षात्कार के अनन्तर समाप्त हो जाता है। भक्तिवेदान्त के अनुसार मुक्ति चार प्रकार की होती है- सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य।

'वल्लभ सम्प्रदाय' भक्ति का एक सम्प्रदाय है जिसकी स्थापना आचार्य वल्लभ ने किया था। इसे 'वल्लभ सम्प्रदाय' या 'वल्लभ मत' भी कहते हैं। आचार्य वल्लभ का सिद्धान्तपक्ष शुद्धाद्वैत तथा आचारपक्ष पुष्टिमार्ग के नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य वल्लभ की दो महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं-

१. अणुभाष्य (ब्रह्मसूत्र पर रचित भाष्य)।

२. सुबोधिनी टीका (श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कन्ध पर रचित टीका)।

आचार्य वल्लभ भक्तिकालीन कृष्णभक्ति शाखा के आधार-स्तम्भ हैं। इन्होंने पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। पुष्टिमार्ग कृष्णभक्ति साहित्य की आधारशिला है। पुष्टिमार्ग में अनेक भक्तकवि हुये जैसे- सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास और कुम्भन दास। सूरदास वल्लभ के परम शिष्य थे। सूरदास वल्लभ से प्रेरित होकर काव्य रचनायें किया करते थे।

3.1.2 आचार्य वल्लभ का जीवन परिचय

आचार्य वल्लभ (१४७९-१५३१ ई.) का जन्म विक्रम सम्वत् १५३५ में वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन हुआ था। आचार्य वल्लभ दक्षिण भारत के तैलङ्ग ब्राह्मण परिवार में पैदा हुये थे। इनका जन्मस्थान कांकरवड़ नामक ग्राम (वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य में रायपुर के निकट चम्पारण्य) था। बाद में वे अपने पिता के साथ काशी में आकर बस गये। इनके पिता का नाम श्रीलक्ष्मणभट्ट तथा माता का नाम इल्मा गारू था। आचार्य वल्लभ को अग्नि का

[1] ब्रह्मसूत्राणुभाष्य- (३/३/३९)।

अवतार (वैश्वानरावतार) माना गया है। वल्लभ का विवाह महालक्ष्मी (पं. देवभट्ट की कन्या) के साथ हुआ। वल्लभ के दो पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम गोपीनाथ तथा छोटे पुत्र का नाम विट्ठलनाथ था। वल्लभ महाप्रभु ने विक्रम सम्वत् १५८७ में आषाढ़ शुक्ल तृतीया के दिन जल समाधि ले लिया।

श्रीवल्लभाचार्य जी की ८४ बैठक, ८४ शिष्य और ८४ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अनेक भाष्यों, ग्रन्थों, नामावलियों एवं स्तोत्रों की रचना किया है। वल्लभ की प्रमुख १६ रचनाओं के नाम इस प्रकार है- यमुनाष्टक, बालबोध, सिद्धान्तमुक्तावली, पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद, सिद्धान्तरहस्य, नवरत्नस्तोत्र, अन्तःकरणप्रबोध, विवेकधैर्याश्रय, श्रीकृष्णाश्रय, चतुःश्लोकी, भक्तिवर्धिनी, जलभेद, पञ्चपद्यानि, संन्यासनिर्णय, निरोधलक्षणा और सेवाफल। वल्लभ की १६ रचनाओं को 'षोडश-ग्रन्थ' नाम से प्रसिद्धि मिली। आचार्य वल्लभ की दो महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं- १. अणुभाष्य (ब्रह्मसूत्रभाष्य) और २. सुबोधिनी टीका (श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कन्ध की टीका)।

आचार्य वल्लभ वृन्दावन आये। उन्होंने गोवर्धन पर श्रीनाथ जी के भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया। वल्लभ ने पुष्टिमार्ग की स्थापना किया। पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। वल्लभ का सिद्धान्तपक्ष शुद्धाद्वैत तथा आचारपक्ष पुष्टिमार्ग के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीवल्लभाचार्य जी की ८४ बैठक, ८४ शिष्य और ८४ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ८४ शिष्यों के अतिरिक्त अनगित भक्त, सेवक और अनुयायी थे।

आचार्य वल्लभ के प्रमुख पाँच शिष्यों के नाम इस प्रकार है- विट्ठलनाथ, सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास और कुम्भनदास। विट्ठलनाथ वल्लभ के पुत्र थे। विट्ठनाथ ने अष्टछाप की स्थापना किया। अष्टछाप आठ कृष्णभक्त कवियों का एक समूह है जिनके गीतों के संग्रह को अष्टछाप कहा जाता है। अष्टछाप के कवियों का नाम इस प्रकार है- सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, नन्ददास और चतुर्भुजदास। अष्टछाप के कवि अपने भजन-कीर्तन और पद रचनाओं के माध्यम से भगवान् श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का गायन किया करते थे।

3.1.3 आचार्य वल्लभ का दार्शनिक सिद्धान्त

शुद्धाद्वैतवाद एक दार्शनिक सिद्धान्त है जिसके प्रवर्तक आचार्य वल्लभ हैं। आचार्य वल्लभ का सिद्धान्तपक्ष शुद्धाद्वैतवाद और आचारपक्ष पुष्टिमार्ग है। आचार्य शङ्कर भी अद्वैतवादी थे और आचार्य वल्लभ भी अद्वैतवादी थे। आचार्य शङ्कर के अद्वैतवाद को केवलाद्वैतवाद कहते हैं और आचार्य वल्लभ के अद्वैतवाद को शुद्धाद्वैतवाद कहते हैं।

तीनों शुद्ध तत्त्वों का ऐक्य प्रतिपादित किये जाने के कारण यह मत शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है। बह्मद्वैतवाद के विपरीत आचार्य वल्लभ अपने अद्वैतवाद में माया का सम्बन्ध अस्वीकार करते हैं। वल्लभ का ब्रह्म माया रहित शुद्ध है-

माया सम्बन्धरहितं शुद्धभित्युच्यते बुधैः।

कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्॥[1]

आचार्य वल्लभ की दृष्टि में श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। वल्लभ के अनुसार विश्व की एकमात्र सत्ता ब्रह्म है, जीव और जगत् ब्रह्म निमित्तक हैं। भगवान् के आविर्भाव और तिरोभाव शक्तियों के कारण ही जगत् का विकास एवं लय होता है। ब्रह्म जीव और जगत् का कारण है।

3.1.4 आचार्य वल्लभ का पुष्टिमार्ग

आचार्य वल्लभ का आचारपक्ष पुष्टिमार्ग और सिद्धान्तपक्ष शुद्धाद्वैतवाद है। भक्ति के क्षेत्र में आचार्य वल्लभ का साधनमार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है। पुष्टिमार्ग दुःख से पीड़ित प्राणियों के लिये वह साधना पथ है जिसपर चलकर व्यक्ति समस्त कष्टों से मुक्त हो जाता है और वह भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति के अलौकिक आस्वाद को पाकर धन्य हो जाता है।

पुष्टिमार्ग (अनुग्रहमार्ग) के अनुसार पुष्टि शब्द का अर्थ है- पोषण(भगवद्-अनुग्रह)। श्रीमद्भागवतपुराण में ईश्वर के अनुग्रह को पोषण कहा गया है- **'पोषणं तदनुग्रहः'**[2]। आचार्य वल्लभ के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है- **'कृष्णानुग्रहरूपा हि पुष्टिः कालादिबाधकः'।**[3] वल्लभ के पुष्टिमार्ग की अवधारणा का मूल स्रोत उपनिषद् है। कठोपनिषद् कहती है- 'परमात्मा जिसपर अनुग्रह करता है उसी को अपना साक्षात्कार कराता है।'[4]

भगवान् श्रीकृष्ण के अनुग्रह को प्राप्त करने का मार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है। अनुग्रह को प्राप्त करने के लिये उनकी सेवा करनी चाहिये। अपने चित्त को भगवान् से जोड़ना ही सेवा है। अष्टयाम की सेवा को भगवद्-अनुग्रह का मुख्य साधन माना जाता हैं। अष्टयाम दर्शन सेवा पहरों में विभक्त है। जिनका (प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक का) क्रम इस प्रकार है- मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या आरती एवं शयन। पुष्टिमार्ग में भक्ति साधन भी है और साध्य भी है।

---

[1] शुद्धाद्वैतमार्तण्ड, पृष्ठ संख्या २४।

[2] भागवत पुराण- (२/१०/४)।

[3] कालादि के प्रभाव से मुक्त करने वाले कृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है।

[4] (कठोपनिषद्-२/२३) तथा (मुण्डकोपनिषद्-२/३/२)
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते, तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ हैं। पुष्टिमार्ग का अपरनाम अनुग्रहमार्ग है। शुद्धाद्वैत दर्शन के मजबूत आधार पर पुष्टिमार्ग की नींव रखी गयी। इसे 'वल्लभ सम्प्रदाय' भी कहते हैं। पुष्टिमार्ग शुद्धाद्वैत के दर्शन को भक्ति में ढ़ालता है। भगवान् श्री कृष्ण के अनुग्रह को पुष्टि कहा जाता है तथा भगवान् के इस विशेष अनुग्रह से उत्पन्न होने वाली भक्ति को पुष्टिभक्ति कहा जाता है।

पुष्टिमार्ग को सेवामार्ग भी कहते हैं। पुष्टिमार्ग में समस्त विषयों से पृथक् रहकर समस्त वासनाओं का परित्याग करना पड़ता है, अपना सर्वस्व ईश्वर को अर्पित करते हुये सदैव प्रभु और प्रभु के भक्तों की सेवा में संलग्न रहना पड़ता है। यही हरिलीला में भाग लेना कहलाता है।

सेवा दो प्रकार की होती है- १.नामसेवा और २.स्वरूपसेवा। स्वरूपसेवा तीन प्रकार की होती है- १.तनुजा, २.वित्तजा और ३.मानसी। मानसी सेवा दो प्रकार की होती है- १.मर्यादामार्गीय और २.पुष्टिमार्गीय। भगवान् का अनुग्रह ही पुष्टि है। भक्ति दो प्रकार की है- १. मर्यादाभक्ति और २.पुष्टिभक्ति। मर्यादाभक्ति में भगवद् प्राप्ति शमदमादि साधनों से होती है। पुष्टिभक्ति में अन्य किसी साधन की आवश्यकता नहीं होती है, केवल भगवत्कृपा का आश्रय लिया जाता है। पुष्टिभक्ति भगवान् में मन की निरन्तर स्थिति है। पुष्टिभक्ति श्रेष्ठ मानी गयी है।

पुष्टिभक्ति का सम्बन्ध हरिलीला से है। हरिलीला का अङ्ग रासलीला है। रासलीला में परम पुरुष अपनी शक्तियों के साथ क्रीडा करता है, वृन्दावन इसके लिये उपयुक्त स्थान है। इनके मत में भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र शरण स्थल हैं। हरिलीला गोलोक में सदैव होती रहती है। गोलोक श्रीकृष्ण भगवान् के बाल्यकाल की लीलाओं से विशेषतः सम्बद्ध है। यहाँ पर भगवान् का लीलारूप ही काम करता है। हरिलीला में भाग लेना ही पुष्टिमार्गीय भक्त के जीवन का चरम आदर्श था। इस सेवा कार्य से भगवत्कृपा प्राप्त होती थी। मुक्ति भी इसके आगे तुच्छ मानी जाती थी।[1]

भक्ति की दो धारायें हैं- निर्गुणभक्ति और सगुणभक्ति। सगुणभक्ति धारा की दो शाखायें हैं- पहली कृष्णभक्ति शाखा और दूसरी रामभक्ति शाखा। आचार्य वल्लभ कृष्णभक्ति शाखा के आधार-स्तम्भ हैं और पुष्टिमार्ग कृष्णभक्ति साहित्य की आधारशिला है। वल्लभ ने पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। सूरदास वल्लभ के शिष्य थे और वल्लभ से प्रेरित होकर काव्य रचनायें किया करते थे। पुष्टिमार्ग के अन्तर्गत (सूरदास, कुम्भनदास, कृष्णदासादि) अष्टछाप के कवियों को भी शामिल किया जाता है। अष्टछाप के कवि पुष्टिमार्ग में दीक्षा लेने के बाद

[1] ब्रह्मसूत्रवल्लभभाष्य- (३/४/४७)।

भजन-कीर्तन, प्रेम एवं भावपूर्ण (भगवान् श्रीकृष्ण की) लीलाओं का गायन किया करते थे। सूरदास वल्लभ के परम शिष्य हैं।

3.2 सूरदास

ऐतिहासिक दृष्टि के आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया जाता है- आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल। मध्यकाल को भक्तिकाल भी कहते हैं। भक्तिकाल की काव्य रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय भक्तितत्त्व है। मध्यकालीन भक्ति की दो धारायें हैं- निर्गुणभक्ति और सगुणभक्ति। सगुणभक्ति धारा की दो शाखायें हैं- पहली कृष्णभक्ति शाखा और दूसरी रामभक्ति शाखा। महात्मा सूरदास कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं।

सूरदास आचार्य वल्लभ के शिष्य हैं। सूरदास वल्लभाचार्य से प्रेरित होकर भक्ति-भजन किया करते थे। सूरदास की भक्ति-भावना का केन्द्र भगवान् श्रीकृष्ण का सगुण रूप है। यही कारण है कि सूरदास की काव्य रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय श्रीकृष्ण की सगुणभक्ति है।

सूरदास आँख से अन्धे थे परन्तु उनकी गूढ़ चिन्तन दृष्टि तथा उनके विशाल साहित्य भण्डार को देखते हुये स्पष्ट रूप से यह कह पाना सम्भव नहीं है कि सूरदास नेत्रहीन थे। सूरदास के विषय में ऐसा भी कहा जाता रहा है कि उनको दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। अपने चिन्तन दृष्टि को विकसित करने के लिये सूरदास ने सन्तों का सहारा लिया, गुरु का सहारा लिया। सूरदास ने अपने गुरु से गूढ़ तत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया।

वल्लभाचार्य ने सूरदास को कृष्ण की लीला का रहस्य समझाया। उसके बाद से सूरदास श्रीकृष्ण की लीला का गायन किया करते थे। सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का गायन करने के लिये मुक्तक पदों (छन्द रहित पद्य) की रचना किया करते थे। इन पदों का संग्रह 'सूरसागर' नामक विशाल महाकाव्य में किया गया है। सूरदास की ख्याति गायक सन्त के रूप में चारो तरफ फैल गयी। इनकी ख्याति से प्रभावित होकर स्वयं मुगलबादशाह अकबर सूरदास से मिलने चला आया था।

महात्मा सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का गायन करने में निमग्न रहते थे। अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में सूरदास दास्यभाव से लीला-गायन किया करते थे परन्तु वल्लभाचार्य से दीक्षा लेने के बाद सूरदास ने सख्यभाव वाली लीला-गायन प्रारम्भ कर दिया।

आचार्य वल्लभ ने सूरदास को कृष्ण की लीला का रहस्य समझाया जिसके बाद सूरदास सख्यभाव से कृष्ण की लीला का गायन करने लगे। जब लीला-गायन का केन्द्र भगवान् कृष्ण

का शैशव अवस्था वाला रूप होता है तब सख्यभक्ति में वात्सल्य भावना की प्रधानता होती थी और जब लीला-गायन का केन्द्र भगवान् कृष्ण का युवावस्था वाला रूप होता है तब सख्यभक्ति में श्रृंगार, माधुर्य, प्रेम तथा विरह भावना की प्रधानता होती थी।

सूरसागर मुख्य रूप से लीला-गान का संग्रह है। सूरदास ने 'उद्धव-गोपिका संवाद' के माध्यम से निर्गुण ज्ञानमार्ग का खण्डन किया है। सूरदास ने भजन-कीर्तन के रूप में भगवान् कृष्ण की लीलाओं का मधुर, मनोहर गायन किया है। श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित पद विशेष महत्त्व रखते हैं। सूरदास ने ब्रजभूमि के मधुर परिवेश, गोपिकाओं के हाव-भाव, गोपालकों के भोले-भाले सहज स्वभाव का मनोरम, मार्मिक चित्रण किया है।

3.2.1 सूरदास का जीवन परिचय

अन्य भारतीय मनीषियों की तरह सूरदास ने भी अपने जीवनवृत्त के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं लिखा है। साहित्यलहरी सूरदास की काव्य-रचना है। साहित्यलहरी में सूरदास के जीवनवृत्त के विषय में कुछ संकेत मिलता है। सूरदास चंदबरदायी के वंशज थे। सूरदास के पिता रामदास गायक थे।

सूरदास का जन्म सन् १४७८ ई. में रुनकता नामक ग्राम या रेणुका क्षेत्र (वर्तमान में आगरा जिला) में हुआ था। रुनकता नामक गाँव मथुरा से आगरा जाने वाले मार्ग पर स्थित है। कुछ विद्वानों के मत में सूरदास का जन्म दिल्ली के पास सीही गाँव में हुआ था। सूरदास की मृत्यु पारसोली नामक ग्राम (मथुरा के निकट) में हुई थी। सूरदास की मृत्यु सन् १५८३ ई. में अनुमानित की गयी है।

महाकवि सूरदास हिन्दी साहित्य का वह सूर्य हैं जिन्होंने ब्रजभाषा को हिन्दी काव्य में साहित्यिक रूप प्रदान किया। सूरदास के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की प्रसिद्ध उक्ति है- **'सूर सूर तुलसी ससि, उडगन केशवदास। अब के कवि खाद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश॥'**

महाकवि सूरदास का जन्म सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सूरदास को तरुणावस्था में ही संसार से विरक्ति हो गयी और वे मथुरा के विश्राम घाट पर पहुँच गये। विश्राम घाट पर थोड़े दिन तक रहने के बाद वे आगरा-मथुरा के बीच यमुना नदी के किनारे गऊघाट पर रहने लगे। यहाँ पर उनकी भेंट वल्लभाचार्य से हुई। सूरदास वल्लभाचार्य से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गये। आचार्य वल्लभ ने सूरदास को श्रीनाथ जी के मन्दिर में भजन-कीर्तन के लिये नियुक्त कर दिया। वल्लभ ने सूरदास को कृष्ण लीला का रहस्य समझाया जिसके बाद से सूरदास सख्यभाव वाली लीला का गायन करने लगे।

सूरदास के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि वे जन्मान्ध थे[1] परन्तु उनकी काव्य कृतियों के वर्ण्य विषय की यथार्थता को देखते हुये इस बात पर विश्वास नहीं होता है कि सूरदास जन्मान्ध थे। सूरदास ने अपनी कविता में विविध रङ्गों, बालकों की स्वाभाविक चेष्टाओं तथा प्राकृतिक दृश्यों का जैसा सजीव चित्रण किया है वह वस्तुओं को देखे बिना सम्भव नहीं हो सकता है। अतः कुछ विद्वान् सूरदास को जन्मान्ध मानने के पक्ष में नहीं हैं।

3.2.2 अष्टछाप

सूरदास जी अष्टछाप के प्रमुख कवि हैं। अष्टछाप कृष्णभक्त आठ कवियों का एक समूह है जिनके गीतों के संग्रह को अष्टछाप कहा जाता है।[2] १.कुम्भनदास, २.सूरदास, ३.परमानन्ददास, ४.कृष्णदास, ५.गोविन्दस्वामी, ६.नन्ददास, ७. छीतस्वामी और ८. चतुर्भुजदास इन आठ भक्तकवियों की गणना अष्टछाप के अन्तर्गत की जाती है। अष्टछाप के अतिरिक्त अन्य कृष्णभक्त कवियों में नागरीदास, मीराँबाई, रहीम, रसखान और नरोत्तमदास प्रमुख हैं। अष्टछाप के कवियों में सूरदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अष्टछाप की स्थापना गोस्वामी विट्ठलनाथ ने किया था। गोस्वामी विट्ठलनाथ वल्लभाचार्य के पुत्र थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ अपने पिता वल्लभाचार्य के शिष्य भी थे। अष्टछाप के कुल आठ कवियों में से चार कवि वल्लभाचार्य के शिष्य थे और चार कवि विट्ठलनाथ के शिष्य थे। वल्लभाचार्य के चारो शिष्यों के नाम हैं- १.कुम्भनदास, २.सूरदास, ३.परमानन्ददास और ४.कृष्णदास। विट्ठलनाथ के चारो शिष्यों के नाम हैं- १.गोविन्दस्वामी, २.नन्ददास, ३.छीतस्वामी और ४.चतुर्भुजदास। अष्टछाप का शेष विवरण निम्न सारणी में लिखा गया है-

अष्टसखा	लीलात्मकरूप		लीला	अधिकृतद्वार
	सखा	सखी		
१. कुम्भनदास	अर्जुन	विशाखा	निकुञ्जलीला	आ ज्यार
२. सूरदास	कृष्ण	चम्पकलता	मानलीला	चन्द्रसरोवर
३. परमानन्ददास	लोक	चन्द्रभागा	बाललीला	सुरभिकुण्ड

[1] श्रीनाथभा की 'संस्कृतवार्तामणिपाला', हरिराय कृत 'भावप्रकाश' और श्रीगोकुलनाथ की 'निजवार्ता' आदि के आधार पर सूरदास जन्म के अन्धे माने गये हैं।

[2] अष्टछाप की स्थापना आचार्य विट्ठनाथ ने सन् १५६५ ई. में किया। अष्टछाप भक्तिकालीन आठ कवियों का एक समूह था। उनके गीतों के संग्रह को 'अष्टछाप' कहा जाता है। जिनका शाब्दिक अर्थ 'आठ मुद्राये' हैं।
जिन्होंने अपने विभिन्न पदों एवं कीर्तनों के माध्यम से भगवान् श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का गुणगान किया। आठो ब्रजभूमि के निवासी थे और श्रीनाथ के समक्ष गान रचकर गाया करते थे। उन्होंने ब्रजभाषा में कृष्ण विषयक भक्तिरसपूर्ण कवितायें रची। उसके बाद सभी कृष्णभक्त कवि ब्रजभाषा में ही कविता रचने लगे।

४. कृष्णदास	ऋषभ	ललिता	रासलीला	विलहू कुण्ड
५. गोविन्दस्वामी	श्रीदामा	भामा	नेत्रोन्मीलन	कदमविडी
६. छीतस्वामी	सुवल	पद्मा	जन्मलीला	अप्सराकुण्ड
७. चतुर्भुजदास	विशाल	विमला	अन्नकूटलीला	रूद्रकुण्ड
८. नन्ददास	भोग	चन्द्ररेखा	किशोर	मानसीगङ्गा

3.2.3 सूरदास की रचनायें

सूरदास द्वारा रचित कुल १६ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सभी १६ ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। सूरदास की तीन काव्य रचनायें प्रमुख हैं- १.सूरसागर, २.सूरसारावली और ३.साहित्यलहरी। सूरसागर में सवा लाख पद हैं परन्तु अभी तक केवल दस हजार पद ही प्राप्त हो सके हैं। सूरसारावली में ११०७ छन्द हैं। सूरसारावली को सूरसागर का सार कहा जाता है। साहित्यलहरी ११८ पदों का संग्रह है।

सूरसागर सूरदास का प्रामाणिक गीति-प्रबन्ध माना जाता है। इसमें दस स्कन्ध हैं। विनय के पद तथा कृष्णावतार सम्बन्धी प्रसंगों का गायन है। आरम्भ के नौ स्कन्ध आकार में छोटे-छोटे हैं परन्तु दशम स्कन्ध बहुत विस्तृत है। दशम स्कन्ध में भक्ति की प्रधानता है। दसवें स्कन्ध के 'भ्रमरगीतसार' तथा 'कृष्ण की बाललीला' नामक प्रसंग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। भ्रमरगीतसार हिन्दी साहित्य की अनुपम कृति है।

सूरदास ने भजन-कीर्तन के रूप में भगवान् कृष्ण की लीलाओं का मधुर गायन किया है। इस प्रकार के पद सूरसागर नामक विशाल ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। इन पदों में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित पद विशेष महत्त्व रखते हैं। सूरदास ने इन पदों में ब्रजभूमि के मधुर परिवेश, गोपिकाओं के हाव-भाव, गोपालकों के भोले-भाले सहज स्वभाव का मनोरम एवं मार्मिक चित्रण किया है।

सूरसागर श्रीकृष्ण की लीला गान का संग्रह है। सूरसागर की सराहना करते हुये डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है- "काव्यगुणों की इस विशाल वनस्थली में एक अपना सहज सौन्दर्य है। वह उस रमणीय उद्यान के समान नहीं है जिसका सौन्दर्य पद-पद पर माली के कृतित्व की याद दिलाता है, बल्कि उस अकृत्रिम-वन भूमि की भाँति है जिसका रचयिता रचना में घुल मिल गया है।"

हस्तलिखित 'सूरसागर' के दो रूप मिलते हैं- पहला 'संग्रहात्मक' रूप और दूसरा श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार 'द्वादश स्कन्धात्मक' रूप। 'द्वादश स्कन्धात्मक' रूप कब बना? इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। हिन्दी के साहित्येतिहास ग्रन्थ इस विषय में चुप हैं। द्वादश स्कन्धात्मक सूरसागर की सबसे प्राचीन प्रति संवत् १७५७ विक्रमी की मिलती है। इसके बाद की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इन सबके आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्रीमद्भागवत के अनुसार 'द्वादश स्कन्धात्मक' रूप अठारहवीं शती से पहले नहीं बन पाया था।

3.2.4 सूरदास की काव्यभाषा

भारतीय परम्परा को ज्ञान परम्परा कहते हैं। वेदों में निहित ज्ञान उपनिषद्, भगवद्गीता और पुराण के माध्यम से होता हुआ सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक संस्कृत में निहित ज्ञान पहले लौकिक संस्कृत में आया और फिर जन साधारण की भाषा (ब्रजभाषा, अवधीभाषा इत्यादि) में अभिव्यक्त हुआ। भाषा विचार और भाव अभिव्यक्ति का माध्यम अवश्य है परन्तु भारतीय परम्परा में भाषा की अपेक्षा विचार, भाव और उसकी अभिव्यक्ति को ज्यादा महत्त्व दिया गया है।

सूरदास संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। संस्कृत भाषा में पारंगत होते हुये भी सूरदास ने अपनी काव्य रचनाओं के लिये ब्रजभाषा का चयन किया। ब्रजभाषा जन साधारण की भाषा थी। भक्तशिरोमणि सूरदास ने वेदान्त के गूढ़ ज्ञान को ब्रजभाषा के माध्यम से जन सामान्य तक पहुँचाने का काम किया।

सूरदास की काव्यभाषा में वाह्य परिष्कृति ना होकर आन्तरिक भावों की उष्मागत गरिमा है। लोक जीवन का चित्रण होने के कारण इनमें तद्भव और देशज शब्दों की प्रचुरता है। लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग करते हुये उन्होंने ब्रजभाषा को भावगरिमा प्रदान किया। लोकभाषा के शब्द भाषा की सहज और स्वाभाविक गति बनाये हुये हैं जैसे- **'कबहूँ प्रात न कियो कलेवा, सांझ न पीन्ही छैया।'** यहाँ पर 'कलेवा' और 'छैया' शब्द लोकभाषा से ग्रहीत हैं फिर भी वे भाषा की सहज स्वाभाविक गति को बनाये हुये हैं।

सूरदास श्रीकृष्ण की लीला का गायन किया करते थे। सूरसागर प्रमुख रूप से लीला गान का संग्रह है। सूरसाहित्य के अधिकतर पद गेय हैं। राग-रागनियों से आबद्ध ये पद अपनी संक्षिप्तता, भावावेग के कारण स्वतः ही हृदय में उतर जाते हैं। सूरदास को ब्रजभाषा के गीतों का प्रवर्तक कहा जाता है। इनके पद लोकगीतों की परम्परा की श्रेष्ठ कड़ी कहे जाते हैं। सूरदास ने लोकगीतों के माध्यम से वेदान्त के चिन्तन को जन-जन तक पहुँचाया। ब्रजबोली को ब्रजभाषा बनाने का श्रेय कृष्णभक्ति साहित्य को दिया जाता है। ब्रजभाषा को साहित्यिक

भाषा के उच्च सिंहासन पर आसीन करने का श्रेय सूरदास को प्राप्त है। सूरदास ने वेदान्त के भक्ति विषयक चिन्तन का विस्तार किया।

3.2.5 कृष्णभक्ति साहित्य

कृष्णभक्ति साहित्य का मूल स्रोत श्रीमद्भागवतपुराण और गीतगोविन्द है। कृष्णभक्ति साहित्य परम्परा के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ हैं। वल्लभ ने विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। वल्लभाचार्य ने निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी के आदर्शों को सामने रखकर कृष्णभक्ति का प्रचार-प्रसार किया। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत कृष्णभक्ति काव्य की परम्परा का प्रारम्भ सर्वप्रथम मैथिल कोकिल विद्यापति ने किया और इसको भारतव्यापी बनाने का श्रेय सूरदास को दिया जाता है। विद्यापति की काव्यरचनाओं का सम्बन्ध 'गीतगोविन्द' से माना जाता है।

पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्णभक्ति साहित्य की रचना किया। सूरदास जी अष्टछाप के प्रमुख कवि हैं। कृष्णभक्ति को लोकप्रिय बनाकर प्रचारित करने का श्रेय सूरदास को दिया जाता है। भक्त शिरोमणि सूरदास ने कृष्णभक्ति चेतना को विश्वव्यापी बनाने का कार्य किया है। इस प्रकार से सूरदास ने वेदान्त चिन्तन परम्परा की निरन्तरता को बनाये रखा। उन्होंने कृष्णभक्ति को विश्वव्यापी बनाया।

कृष्णभक्तिकाव्य दो बातों के लिये विशेष महत्त्व रखता है- १. सम्प्रदाय-बद्ध संगठित धारा और २. वर्ण-जाति-धर्म-लिङ्ग निरपेक्ष भक्ति की धारा। ब्रजबोली को ब्रजभाषा बनाने का श्रेय कृष्णभक्ति साहित्य को दिया जाता है। समस्त कृष्णभक्ति साहित्य गेय है। राग-रागनियों से आबद्ध इनके पद अपनी संक्षिप्तता, भावावेग के कारण स्वतः ही हृदय में उतर जाते हैं।

कृष्णभक्ति साहित्य की परम्परा के अन्तर्गत अष्टछाप के कवि प्रमुख स्थान रखते हैं जैसे- १.कुम्भनदास, २.सूरदास, ३.परमानन्ददास, ४.कृष्णदास, ५.गोविन्दस्वामी, ६.नन्ददास, ७.छीतस्वामी तथा ८.चतुर्भुजदास। अष्टछाप के कवियों में सूरदास जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त अन्य कृष्णभक्त कवियों में नागरीदास, मीराँबाई, रहीम, रसखान और नरोत्तमदास प्रमुख हैं।

3.3 सूरदास की रचनाओं में भक्तितत्त्व

सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का गायन करने में निमग्न रहते हैं। 'सूरसागर' मुख्य रूप से लीला-गान का संग्रह है। आचार्य वल्लभ की कृपा से सूरदास को लीला का साक्षात् दर्शन

हुआ था। हरि ने लीला का विस्तार भक्त को भवसागर से पार लगाने के लिये किया है।[1] जो भक्त नहीं है वह मारा जाता है। महात्मा सूरदास भक्ति को परिभाषित करते हुये कहते हैं कि **'मन को सब ओर से हटाकर भगवान् में लगा देना ही भक्ति है।[2]**

महात्मा सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का गायन किया करते थे। सूरदास ने अपनी काव्य रचनाओं में भगवान् श्रीकृष्ण के अनेक नामों का प्रयोग किया है जैसे- हरि, वासुदेव, प्रभु, स्वामी, मुरारी, कृष्ण इत्यादि। सूरदास के आराध्य की माया अनिर्वचनीय है। वह कभी निर्गुण रूप धारण कर लेते हैं तो कभी सगुण रूप धारण कर लेते हैं- **'जाकी माया लखै न कोई। निर्गुन सगुन धरै वपु सोई॥'[3]**

सूरदास ने राधा और कृष्ण की तुलना प्रकृति-पुरुष से किया है। सूरदास भगवान् के परमधाम को वृन्दावन, अभयपद, वैकुण्ठ, इत्यादि नामों से पुकारते हैं। सूरदास ने वृन्दावन को जो महत्त्व दिया वह गोकुल को नहीं दिया। सूरदास के अनुसार भगवान् और भक्त दोनों एक दूसरे से अलग नहीं हैं। भगवान् के दरबार में जाति-पाँति का भेदभाव नहीं चलता है।

सूरदास ने अपनी काव्य रचनाओं में शरणागति, भगवत्कृपा, गुरुकृपा, प्रेमाभक्ति, सत्सङ्ग आदि का गुणगान किया है। सूरदास ने भक्ति के अङ्ग साधनों के अनुष्ठान पर बल दिया है। सूरदास ने नाम महिमा, भगवत श्रवण, कामनाओं का त्याग, कथनी और कथनी में एकता, ज्ञान, कर्म की पवित्रता आदि के महत्त्व को बताया हैं।[4]

3.3.1 सूरदास: भक्ति-भावना की विशेषतायें

सूरदास की भक्ति-पद्धति का मेरुदण्ड पुष्टिमार्गीय भक्ति है। भक्त पर भगवान् की कृपा का नाम ही पोषण (अर्थात् पुष्टि) है। सूरदास की भक्ति-पद्धति में दो प्रकार के पद मिलते हैं-

(i) विनयभक्ति सम्बन्धी पद

(ii) माधुर्यभक्ति सम्बन्धी पद

(i) विनयभक्ति सम्बन्धी पद

जापर दीनानाथ ढरै।

---

[1] 'सत्यभक्तहिं तारिबे कौ लीला विस्तारी।' (डॉ. मुंशीराम शर्मा द्वारा लिखित 'भक्ति का विकास' के पृष्ठ सं. ५६१ पर, पद संख्या १७६)।

[2] डॉ. मुंशीराम शर्मा द्वारा लिखित 'भक्ति का विकास' के पृष्ठ संख्या ५६२ पर, पदसंख्या ३७२ और ३७३।

[3] डॉ. मुंशीराम शर्मा द्वारा लिखित 'भक्ति का विकास' के पृष्ठ संख्या ५५१ पर, पद संख्या- ६२१।

[4] प्रीति वश देवकी गर्भ लीन्हों वास, प्रीति के हेतु व्रज भेष कीन्हों। प्रीति के हेतु कियो यशुमति पयपान, प्रीति के हेतु अवतार लीन्हों॥ सूरसागर (ना.प्र.स. २६३६)॥

सोइ कुलीन बडौ सुन्दर सोई जापर कृपा करै।

सूर पतित तरिजाय तनक में जो प्रभु नेक ढरै।[1]

यहाँ पर सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण से विनती करते हुये कह रहे हैं कि भगवान् उनको इस जीवन सागर से पार कर दे।

(ii) माधुर्यभक्ति सम्बन्धी पद

इसमें वात्सल्य और प्रेम-विरह सम्बन्धी पद मिलते हैं।

(क) वात्सल्य

इसमें वात्सल्य, प्रेम और विरह सम्बन्धी पद मिलते हैं। वात्सल्य और श्रृंगार सम्बन्धी पदों में सूरदास जी का कोई सानी नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि 'कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठन सी जान पड़ती हैं।' डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार- 'बालकृष्ण के शैशव में, श्रीकृष्ण के मचलने में, माँ यशोदा के दुलार में हम विश्वव्यापी माता-पुत्र प्रेम देखते हैं।' सूरदास जी कहते हैं-

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।

किती बार मोहिं दूध पिवत भई, यह अजहूँ है छोटी।[2]

मोहिं कहतिं जुवती सब चोर।

खेलत कहूँ रहौं मैं बाहिर, चितै रहतिं सब मेरी ओर।[3]

यहाँ पर वात्सल्य रस का बहुत सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें बालक कृष्ण माँ यशोदा के सामने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

(ख) प्रेम और विरह

प्रेम और विरह के वर्णन में सूरदास अतुलनीय स्थान रखते हैं। सूरदास के काव्य में विरहभाव की जो उनकी भक्ति है वह शुद्ध सात्त्विक और उदात्त है। श्रीकृष्ण गोपिकाओं से कहते हैं-

बूझत स्याम कौन तू गोरी।

कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूं ब्रज खोरी।[1]

---

[1] सूरसागर दशम स्कन्ध, राग सारंग पद संख्या ३५।

[2] सूरसागर दशम स्कन्ध, राग रामकली पद संख्या १७५।

[3] श्रीकृष्ण बाल माधुरी, पृष्ठ संख्या २९३, राग कन्हरौ पद संख्या २६९।

कृष्ण यह भाव राधा के प्रति अभिव्यक्त कर रहे हैं और यहाँ पर ब्रजभाषा का जो सुन्दर रूप देखने को मिल रहा है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसी प्रकार गोपिकायें उद्धव से कहती हैं कि

आखियाँ हरि दरसन की प्यासी।

गोपिकायें केवल प्रिय दर्शन की आकांक्षिणी हैं। गोपिकाओं ने कृष्ण और उनकी भक्ति में अपने आपको पूर्ण रूप से तन्मय कर लिया है।

हमारे हरि हारिल की लकरी।

मन बच क्रम नंद नंदन सों यह दृढ़ करि पकरी।

गोपिकाओं ने कृष्ण की भक्ति में अपने आपको पूर्ण रूप से तन्मय कर लिया है। वे कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम को प्रकट करती हैं। प्रेम की उत्कटता वियोगावस्था में दिखायी देती है।

बिनु गोपाल बैरन भई कुंजैं।

तब ये लता लगति अति सीलत, अब भई विषय ज्वाल की पुजैं।

सूरदास ने भक्ति के सुदृढ़ आधार पर विनय, वात्सल्य, माधुर्य और श्रृंगार का मार्ग प्रशस्त किया। वैष्णव सम्प्रदायों में माधुर्य-भाव की भक्ति का प्राधान्य है। सूरदास के पद अनुग्रह, प्रेम की एकनिष्ठ भावना, तन्मयासक्ति और अनन्यभक्ति से ओत-प्रोत हैं। सूरदास के पदों में भावुकता, सहृदयता और वाग्वैदग्ध्य का संगम दिखायी देता है।

सूरदास की कृष्णभक्ति का महत्त्व इस बात में है कि कृष्ण और गोपियों का प्रेम सहज मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठा है। सूरदास ने मानव प्रेम की गौरव गाथा के माध्यम से सामान्य मनुष्यों को हीनताबोध से मुक्त किया, उसमें जीने की ललक पैदा की। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सूरसाहित्य को परिभाषित करते हुये कहा है- 'अन्तर की वस्तु को बाहर का, भाव की वस्तु को भाषा का, अपनी वस्तु को विश्व मानव का एवं क्षणकालिक वस्तु को चिरकाल का बनाने में ही साहित्य की सार्थकता है।'

3.3.2 भक्ति

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। उसके लिये कुछ लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। जिसकी प्राप्ति के लिये वह सतत् प्रयत्नशील रहता है। भारतीय मनीषियों ने इस लक्ष्य को पुरुषार्थ

[1] सूरसागर दशम स्कन्ध, राग टोड़ी पद संख्या ६७३।

नाम दिया।[1] पुरुषार्थों की संख्या चार है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष को परम पुरुषार्थ कहते हैं।[2] परम पुरुषार्थ ही मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

मोक्ष प्राप्त करने के बाद जीव आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है[3] और निरतिशय सुख का अनुभव करता है।[4] शास्त्रों में परम पुरुषार्थ मोक्ष को परमतत्त्व परमेश्वर का स्वरूप कहा गया है। उस परमेश्वर के परमधाम तक पहुँचने के लिये अनेक आध्यात्मिक साधन उपलब्ध होते हैं। तत्त्ववेत्ता ऋषियों के अनुसार भक्ति मोक्ष प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है।[5]

आमबोलचाल की भाषा में भक्ति का तात्पर्य- भगवान् या अपने इष्टदेव के लिये किया गया श्रद्धेय कर्म (जैसे पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन, दान, उपासना, तप, जप इत्यादि) से है। दार्शनिक दृष्टि से भक्ति का अर्थ थोड़ा सा अलग है। हृदयतत्त्व के माध्यम से भगवान् का सान्निध्य प्राप्ति और साक्षात्कार करने का प्रयास ही भक्ति है।

वेदान्त की भक्ति चिन्तन परम्परा का बीज वेदों के प्रकृति प्रेम एवं वैदिक ऋचाओं की स्तुति, प्रार्थना आदि में देखा जा सकता है। गीता की भक्ति निष्काम कर्म पर आधारित थी। लोकरक्षा निष्काम कर्म वाली भक्ति का मूल था। श्रीकृष्ण कहते हैं- 'भगवान् में मन (चित्त) वाला, भगवान् की भजन करने वाला, भगवान् का पूजन करने वाला और भगवान् को ही

---

[1] पुरुष जिसे चाहता है उसे पुरुषार्थ कहते हैं। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सब जीव उत्कृष्ट सुख की इच्छा करते हैं। धर्म, अर्थ और काम साक्षात् सुख स्वरूप न होकर सुख के साधन है तथा मोक्ष साक्षात् सुख स्वरूप है।

[2] परम (निरतिशय) अर्थात् जिससे अधिक सुख नहीं और जिसका कभी क्षय नहीं होता ऐसे पुरुषार्थ सुख ही मोक्ष है मोक्ष की परम पुरुषार्थता '(सः) न च पुनरावर्त्तते।' (छान्दोग्योपनिषद्-८/१५/१)। इस श्रुति से सिद्ध है क्योंकि मोक्ष प्राप्तकर्त्ता या आत्मज्ञ पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेता है।

[3] 'सः न च पुनरावर्त्तते।' (छान्दोग्योपनिषद्-८/१५/१)।
'यदल्पं तन्मर्त्यम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१४/१)। अर्थात् जो अल्प या अपूर्ण है वह मरणशील या नाशवान् है और जो नाशवान् होता है वही दुःख का कारण होता है।

[4] 'यो वै भूमा तत्सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१३/१)।

[5] मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी। (विवेकचूड़ामणि-३२)॥

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥

मामेवैष्यसि युकत्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥

तदाद्रष्टु स्वरूपावस्थानम्। (योगसूत्र)।

ब्रह्मसंस्थः अमृतत्त्वम् एति॥ (छान्दोग्योपनिषद्-२/२३/२)॥

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/१/३)॥

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्। (ब्रह्मसूत्र-१/१/७)।

भक्त्या जानातीति चेन्नाऽभिज्ञया साहाय्यात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/२/६)

नमस्कार करने वाला होना भक्ति कहलाता है।'[1] कृष्ण ने जिस भक्ति-भावना का सूत्रपात गीता में किया था उसका व्यापक विस्तार पुराणों में देखा गया। भगवद्गीता में जिस भक्ति-भावना की प्रतिष्ठा हुई उसकी अविरल धारा पुराणों से होती हुई सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुई।

वल्लभाचार्य ने सूरदास को कृष्ण लीला का रहस्य समझाया उसके बाद से सूरदास श्रीकृष्ण की लीला का गायन किया करते थे। महात्मा सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। सूरदास श्रीकृष्ण की लीला गायन में निमग्न रहते थे। अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में सूरदास दास्यभाव से लीला-गायन किया करते थे परन्तु गुरु वल्लभाचार्य से दीक्षा लेने के बाद सख्यभाव वाली लीला-गायन प्रारम्भ कर दिया।

अब प्रश्न यह है कि दास्यभक्ति क्या होती है? प्रभु को अपना स्वामी और अपने आपको प्रभु का दास (सेवक) समझकर परम श्रद्दा पूर्वक उनकी सेवा करना।[2] प्रभु की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित कर देना। भक्त के मन में सेवक का भाव होता है जो उसके अहंकार को नष्ट कर देता है। साधक का अहंकार शून्य होना भक्ति-भावना की पहली उपलब्धि होती है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'तू मेरा भक्त हो जा' फिर तू मेरे को ही प्राप्त होगा।[3]

अब प्रश्न यह है कि सख्यभक्ति क्या होती है? भगवान् के तत्त्व, रहस्य, महिमा को समझकर मित्र भाव से प्रेम करना। भगवान् को अपना परम मित्र समझकर, उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर देना।[4] सच्चे भाव से अपने पुण्य-पाप का निवेदन करना।[5] भक्ति जगत् की चरम साधना सख्यभावना में समाविष्ट होती है। क्योंकि सख्यभावना में उपास्य और उपासक दोनों का महत्त्व बराबर होता है। इन दोनों में से न तो कोई छोटा होता है और न ही कोई बड़ा होता है।

वल्लभाचार्य जी ने उन्हें कृष्ण लीला का रहस्य समझाया जिसके बाद सूरदास सख्यभाव से श्रीकृष्ण लीला का गायन करने लगे। जब लीला-गायन का केन्द्र भगवान् कृष्ण का शैशव अवस्था वाला रूप होता है तब सख्यभक्ति में वात्सल्य भावना की प्रधानता होती थी और

---

[1] 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥ 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥

[2] कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-२/७)॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/३)॥

[3] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३४)। श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६५)।

[4] स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/३)॥
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६४)॥

[5] तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्। पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-११/४४)॥

जब लीला-गायन का केन्द्र भगवान् कृष्ण का युवावस्था वाला रूप होता है तब सख्यभक्ति में श्रृंगार, माधुर्य, प्रेम तथा विरह भावना की प्रधानता होती थी।

सूरदास की काव्य रचनाओं में श्रृंगार और वात्सल्य रस का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। श्रृंगार और वात्सल्य के वर्णन में जो सिद्धहस्तता सूरदास को प्राप्त है वह अन्य कवियों में दिखायी नहीं देती। श्रृंगार रस दो प्रकार का होता है- पहला संयोग श्रृंगार और दूसरा वियोग श्रृंगार। सूरदास ने श्रृंगार के दोनों पक्षों माधुर्य, प्रेम और विरह का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। बालक कृष्ण और उनकी लीलाओं का जैसा मार्मिक चित्रण सूरदास की रचनाओं में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

सूरदास की काव्य रचनाओं में दो प्रकार के पद देखने को मिलते हैं- १. विनय-भाव सम्बन्धी पद और २.माधुर्य-भाव सम्बन्धी पद। दूसरे भेद के अन्तर्गत वात्सल्य तथा प्रेम और बिरह भाव वाले पदों को शामिल किया जाता है। वात्सल्य का सम्बन्ध वात्सल्य रस से, प्रेम का सम्बन्ध संयोग श्रृंगार से तथा विरह का सम्बन्ध वियोग श्रृंगार से है।

भक्ति के सुदृढ़ आधार पर सूरदास ने विनय, वात्सल्य, माधुर्य और श्रृंगार का पथ प्रशस्त किया। वैष्णव सप्रदायों में माधुर्य-भाव की भक्ति का प्राधान्य है। इनकी रचनायें प्रभुकृपा, प्रेम की एकनिष्ठ भावना, अनन्यभक्ति और तन्मयासक्ति से ओतप्रोत हैं। भावुकता, सहृदयता और वाग्वैदग्ध्य का संगम सूरदास के पदों में दिखायी देता है।

सूरदास ने भजन-कीर्तन के रूप में भगवान् कृष्ण की लीलाओं का मधुर एवं प्रभावपूर्ण गायन किया है। इनमें श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित गान महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें सूरदास ने ब्रजभूमि के मधुर परिवेश, गोपिकाओं के हाव-भाव, गोपालकों के भोले और सहज स्वभाव का मनोरम एवं मार्मिक चित्रण किया है।

भक्ति भजन का नाम है, पर किसका भजन? सुत, कलत्र, परिवार, गृह आदि में से एक भी सतत् साथ नहीं रहता। सूरदास पदसंख्या ३७२ और ३६३ में इसी हेतु लिखते हैं कि हमें ऐसे व्यक्ति के पीछे दौड़ना चाहिये, उसका भजन करना चाहिये, उसकी सेवा में लगना चाहिये जो सदैव हमारे साथ रहता है, गाढ़े समय पर काम आता है। सब कोई छोड़ दे, धोखा दे दे, पर जो कभी न छोड़े, कभी विश्वास-घात न करे ऐसा अस्तित्व एक ही है। इसी को हरि, भगवान्, कृष्ण, राम आदि नाम दिये जाते हैं।

मन को सब ओर से हटाकर भगवान् में लगा देना ही भक्ति है। मन यदि अपना हित पुत्र, पत्नी आदि में देखता है, अशन-वशन की चिन्ता करता है, तो वह भगवद्भक्ति के योग्य नहीं है। सूरदास ने पदसंख्या २६३ में पशु का उदाहरण देकर लिखा है पशु जिसके द्वार पर बँधा

है, उसे उस पशु की चिन्ता होनी चाहिये। इसी प्रकार यदि हमने अपने मन रूपी पशु को प्रभु के द्वार पर बाँध दिया है तो इसके हित की चिन्ता प्रभु की होगी। उपरोक्त उदाहरण में शरणागति का भाव छिपा है। जिसने अपने आपको प्रभु को समर्पित कर दिया है, उसे फिर अपनी चिन्ता से क्या काम?

प्रभु जैसे समर्थ, सर्वस्वदाता को छोड़कर मानव अपना मन अन्यत्र कैसे लगा सकता है। उसके पास जो कुछ है, प्रभु का है। पदसंख्या ६५२ में सूरदास ने पतिव्रता स्त्री का उदाहरण दिया है, जो पति को ही सर्वस्व मानकर और उसे अपना सबकुछ देकर शोभा पाती है। यदि उसने अन्य पुरुष का नाम ले लिया तो उसका पतिव्रतता नष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार भक्ति-भावना में भक्त भगवान् को ही अपना सबकुछ समझता है और उसके दिये हुये पर स्वामित्व स्थापित नहीं करता। हरि के स्थान पर यदि वह अन्य देवों की उपासना करता है तो मानो वह अपने भक्त-व्रत को लज्जित करता है। प्रभु को छोड़कर अन्यों की उपासना करना वैसे ही है, जैसे वृक्ष के मूल को छोड़कर उसके कुआँ खोदना। यह मूढ़ता नहीं तो और क्या है?

सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्यभक्त थे। भगवान् का अनन्यभक्त भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं चाहता। पदसंख्या ३५३ में सूरदास लिखते हैं कि सरिता समुद्र से मिलकर बहना छोड़ देती है, वैसे ही भक्त भगवान् में मन लगाकर फिर अन्यत्र कहीं नहीं जाता। उसकी एकमात्र आकांक्षा यही रहती है कि वह जिस युग में जिस जन्म में जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ उसे भगवान् के चरणों में दृढ़ अनुराग बना रहे। उसका अङ्ग-अङ्ग प्रभुमय हो। आँखें देखे तो प्रभु के रूप को, श्रवण सुने तो प्रभु के यश को, बुद्धि में श्रद्धा हो तो हरि के लिये हो। दिन-रात वह प्रभु का ही स्मरण करे, उन्हीं का ध्यान करे और उन्हीं का कीर्ति-गान गाये।

पद संख्या २०८ में सूर ने भक्ति-विरहित कर्म, धर्म, तीर्थ आदि सबको व्यर्थ कहा है। २६३ पद के अनुसार भगवद्भजन ही कर्मजाल को काटने वाला है। सिद्ध-साधक-मुनि भले ही साधना करके, जटाजूट धारण करके, प्रयत्न करके थक जायें, पर यह पाश तब तक नहीं कटेगा, जब तक वे अपनी अहंता को प्रभु के आगे समर्पित नहीं कर देते। मानव अपने पुरुषार्थ पर व्यर्थ ही गर्व करता है। उसके मन्त्र, यन्त्र, उद्यम और शक्ति में कुछ भी बल नहीं है। बल है तो भगवद्भक्ति में है।

समस्त बलों के बल, पराक्रमों के केतु, शक्ति के स्रोत भगवान् हैं। उन्हीं की भक्ति करने से बल का सञ्चार होता है और यही बल समस्त वारक पाशों को छिन्न-भिन्न करता है। भगवद्भक्ति का बल यदि पास नहीं है, तो यम के दूत सदैव द्वार पर खड़े दिखाई देंगे (पदसंख्या ३४६)। पदसंख्या ६५ तथा २१५ में सूरदास ने भक्ति-भावना की प्रशंसा है। सूरदास कहते हैं-

रसना एक अनेक स्यामगुन, कहं लगि करों बखानों।

सूरदास प्रभु की महिमा अति, साखी वेद-पुरानों॥[1]

3.3.3 भक्ति के साधन

अब प्रश्न यह है कि भक्ति साध्य है या साधन? भक्ति अपने अङ्ग साधनों की साध्य है[2] भक्ति के अङ्ग अनुष्ठानीय होने के कारण भक्ति के साधन कहे जाते हैं। भक्ति मुक्ति (मोक्ष) का साधन है[3] अर्थात् भक्ति का साध्य मुक्ति (मोक्ष) है।

भक्ति के अङ्ग भक्ति-भावना को सुदृढ़ करने के साधन हैं जो अनिवार्य हैं। भक्ति सीढ़ियों में अन्तिम सीढ़ी है तथा भक्ति के अंग, अन्य प्रारम्भिक सीढ़ियाँ हैं। भक्तिवेदान्त के अनुसार भक्ति अन्तिम सोपान है जिस पर आरूढ़ होकर जीव प्रभु को प्राप्त करता है। भक्तिवेदान्त के आचार्य भक्त के समस्त व्यवहारों का साध्य भगवद्भक्ति को मानते हैं।

सूरदास के अनुसार भक्ति के अङ्ग साधन हैं- भगवत्कृपा, गुरुकृपा, भागवत-श्रवण, कामनाओं का परित्याग, कथनी-करनी में एकता, विषय-त्याग, ज्ञान, कर्म, पवित्रता, योग-यज्ञ-जप-तप, सत्संग, हरिविमुखों का त्याग, वैराग्य, आत्मज्ञान|[4]

---

[1] सूर विनय पत्रिका पृष्ठ संख्या १४, राग धनाश्री पद संख्या १२।

[2] श्रीमद्भागवत पुराण (३/२९/१५ से लेकर १९ तक) , नारदभक्तिसूत्र (३४ से ५० तक तथा ६१, ६२, ६३, ६४, ७४, ७६, ७८ और ७९), शाण्डिल्यभक्तिसूत्र (१८, २१, २६, ४५, ४९, ५९, ६४, ६५, ७४, ८३, ८५ और ९६) में भक्ति के अङ्गों का वर्णन किया गया है। भक्तिरसामृतसिन्धु (१/९) में उत्तम भक्ति के अङ्गों की चर्चा की गयी है।

[3] 'मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।' (विवेकचूड़ामणि-३२)। श्रीमद्भागवतपुराण (४/२०/२१) और श्रीमद्भगवद्गीता (११/४८, ५३ और ५४) में भक्ति को भगवत्प्राप्ति का उपाय बताया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण (११/४/१) के अनुसार भक्ति ही भगवत्प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।

[4] भगवत्कृपा:

जाकी कृपा पङ्गु गिरि लंघै अंधै कौ सब कछु दरसाई॥ (सूरसागर प्रथम स्कन्ध, राग विलावल पद संख्या १)॥

जलसंकट में राखि लियौ गज, ग्वालनि हित गोवर्धन धारी॥१७२॥

भागवत-श्रवण:

पदसंख्या ६५, १५५ तथा २९१ में सूर ने भागवत-श्रवण को भी भक्ति का एक अनिवार्य साधन माना है। पदसंख्या १५५ में हरिस्मरण, गुरुसेवा, पैरों में घुँघरू बाँधकर नाचते हुए हरिकीर्तन करना तथा भगवद्भक्तों की सेवा करना भी साधन माने गये हैं।

कथनी-करनी में एकता:

करनी और कहै कछु औरे, मन दसहूं दिसि टूटै॥

विषय-त्याग:

काम, क्रोध, मद, लोभ सत्रु हैं जौ इतननि सौं छूटै॥ ज्ञान- सूरदास तबही तम नासै ज्ञान अगिनि झर फूटै॥३६२॥

मानव जीवन की यात्रा बहुत लम्बी और कठिनाइयों से भरपूर है। जीवन की इन कठिनाइयों से बाहर निकलने के लिये एक अच्छे मार्गदर्शक की आवश्यकता पड़ती है। जब बात तत्त्वज्ञान के मार्गदर्शन की हो गुरु का महत्त्व भगवान् से कम नहीं है।[1] गुरु वचनों में विश्वास गुरु-शुश्रुषा कहलाती है। गुरु पथप्रदर्शक होता है। गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर गुरु अपने शिष्य के ऊपर कृपा दृष्टि बरसाते हैं।[2] वह मार्ग में आने वाली कठिनाइयों से शिष्य को परिचित करा देता है। गुरु शिष्य को उसकी जड़ता से बाहर निकालता है और उसके लिये मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

3.3.4 भक्त

भक्ति-भावना के तीन आधार स्तम्भ हैं- पहला भक्ति, दूसरा भक्त और तीसरा भज्य। भजन-क्रिया को भक्ति कहते हैं। भक्ति एक क्रिया है जिसका साध्य ईश्वर है और आश्रय जीव है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि भक्ति विषय, आश्रय और सम्बन्ध रूपी अंशत्रय की अपेक्षा रखती है। जहाँ ईश्वर विषय है और जीव आश्रय है। ईश्वर और जीव दोनों की भजन (उपासना/भावना) के साथ प्रपत्ति सम्बन्ध है।

इस अध्याय में अबतक भक्ति और उसके अङ्गोपाङ्गों का विस्तृत विश्लेषण किया गया और अब भक्ति के द्वितीय स्तम्भ (भक्त) का विवेचन किया जायेगा। भक्त की विशेषताओं को बताते हुये सूरदास कहते हैं-

भक्त सदैव हरि-रस का पिपासु होता है। सांसारिक सामग्री के चले जाने पर वह शोक नहीं करता और मिलने पर आनन्द नहीं मानता। वह कोमल वचन बोलता है, दैन्य और नम्रता उसके स्वभाव की विशेषता है। प्रभु की कृपा से सदैव वह आनन्दित रहता है। वाद-विवाद हर्ष, आतुरता जैसे द्वन्द्वों का सहन करता है। ऐसे भक्त के पास अष्ट-सिद्धियाँ तथा नव-निधियाँ कामना करते ही पहुँच जाते हैं।[3]

3.3.5 ईश्वर

भजन का नाम भक्ति है। भजन-क्रिया का साध्य ईश्वर है। भक्ति-भावना ईश्वर के अस्तित्व पर आश्रित है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने वाला व्यक्ति प्रतिक्षण ईश्वर की उपस्थिति का

आत्मज्ञान:

वेद के अनुसार आत्मज्ञान 'आत्मना आत्मानमभिसंविवेश॥'

[1] तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समितपांणी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ। (मुण्डकोपनिषद्)।

[2] इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन। न चाशुश्रुषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूचयति॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६७)॥

[3] पदसंख्या- ३६१, ३५४, १६३।

अनुभव करता रहता है। भक्त के लिये ईश्वर ही उसका सर्वस्व है। भक्त एक क्षण के लिये भी ईश्वर से अलग नहीं होना चाहता है।[1]

भजन का नाम भक्ति है। परन्तु किसका भजन करें? घर, परिवार, पुत्र, पौत्र आदि में से कोई भी सतत् साथ नहीं रहता है। इसके लिये सूरदास (पदसंख्या ३७२ और ३६३ में) लिखते हैं कि हमें ऐसे व्यक्ति के पीछे दौड़ना चाहिये, उसका भजन करना चाहिये, उसकी सेवा में लगना चाहिये जो सदैव हमारे साथ रहता है। सब कोई छोड़ दे, धोखा दे दे, परन्तु जो कभी न छोड़े, कभी न विश्वास-घात करे ऐसा अस्तित्व एक ही है। उसी सत्ता को भगवान्, हरि, कृष्ण, राम आदि नाम दिया जाता हैं।

मूलतत्त्व एक है, कोई उसे सगुण कहता है तो कोई उसे निर्गुण कहता है। कोई-कोई लोग सगुण को परम रूप मानते हैं। मूलतत्त्व दुनियाँ की हर एक वस्तु के भीतर विद्यमान है। वह न तो दुनियाँ से अलग है और न ही दुनियाँ उससे अलग है। सूरदास कहते हैं-

जाकी माया लखै न कोई। निर्गुन सगुन धरै वपु सोई॥[2]

लोचन स्रवन न रसना नासा। बिनु पद पानि करै परगासा॥[3]

गुन बिनु गुनी, सुरूप रूप बिनु, नाम बिना श्री स्याम हरी॥[4]

भगवान् श्रीकृष्ण सूरदास के ब्रह्म, परब्रह्म, परमात्मा या परम रूप हैं। सूरदास के कृष्ण दुनियाँ की हर वस्तु में विद्यमान हैं। सूरदास वृन्दावन के एक-एक वस्तु, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे तथा यमुना आदि सब के भीतर कृष्णतत्त्व को ही देखते हैं। यही सूरदास का सगुणब्रह्म है। सगुणब्रह्म ही सूरदास का सबकुछ है। श्रीकृष्ण का परमधाम सूरदास का परमधाम है। भगवान् के विराट रूप का वर्णन निम्न पँक्तियों में है-

चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।

सूर चंद नछत्र पावक, सर्व तासु प्रकास॥[5]

---

[1] भक्त भक्तिभावना में लीन रहता है। क्योंकि ईश्वर ही भक्त के लिये प्राण, जीवन एवं आधार हैं।
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१०/९)॥
'जीवनं सर्वभूतेषु।' (श्रीमद्भगवद्गीता-७/९)।

[2] सूरसागर दशम स्कन्ध, राग गौड़ मलार पद संख्या ६२१।

[3] डॉ. मुंशीराम शर्मा द्वारा लिखित 'भक्ति का विकास' के पृष्ठ संख्या ५५१ पर, पद संख्या- ६२१।

[4] डॉ. मुंशीराम शर्मा द्वारा लिखित 'भक्ति का विकास' के पृष्ठ संख्या ५५१ पर, पद संख्या- ११५।

[5] सूर विनय पत्रिका, पृष्ठ संख्या ३३५, राग केदारौ पद संख्या २८६।

ईश्वर के नाम और रूप अनेक हैं। 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति।'[1] इस श्रुति के अनुसार एकमात्र परमसत्ता स्वरूप परमेश्वर ही सत् है। जिसे हरि, नारायण, कृष्ण और विष्णु आदि नामों से पुकारा जाता है। वह देवों का भी देव है। वह आत्माओं का भी आत्मा है। अज्ञानी पुरुष भगवान् के विभिन्न नाम और रूप को भगवान् से पृथक् समझकर भजता है। जिस कारण से वह व्यक्ति भक्ति के वास्तविक फल से वंचित रह जाता है।

महाकवि सूरदास ने अपने समय में प्रचलित भगवान् के नामों को स्वीकार किया। इन नामों में कुछ नाम वैष्णवभक्ति-भावना से सम्बन्धित हैं। कुछ नाम भगवान् के स्वभाव तथा धाम आदि पर आधारित हैं। कुछ नाम अवतारी राम और अवतारी कृष्ण के पर्यायवाची हैं।

(१) वैष्णवभक्ति-भावना से सम्बन्धित नाम: हरि, वासुदेव, प्रभु, भगवान्, ठाकुर, नाथ, स्वामी, प्रियतम, गोस्वामी, पुरुषोत्तम, यज्ञपुरुष, ईश्वर, जगदीश, मुरारी, मुकुन्द, श्रीपति तथा स्वामी, श्रीनाथ, कमलापति, रमापति, विश्वम्भर तथा साहब, माधव।[2]

---

[1] एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति। (ऋग्वेद-१/१६४/४६)।

एकैव आत्मा बहुधा स्तूयते। (निरुक्त)। एक ही आत्मा विभिन्न देवताओं के नाम से स्तुत हुआ है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्ससुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ (ऋग्वेद-१/१६४/४६)॥ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥(*यजुर्वेद*-३२/१)॥

या देवानां नामधः एक एव। (अथर्ववेद-२/१/३)।

अग्निर्वै सर्वा देवताः। विष्णुः सर्वा देवताः। (ऐतरेयब्राह्मण)। एक ही दिव्य तत्त्व अन्य समस्त दिव्य तत्त्वों का वाचक बन जाता है।

ऋग्वेद- (२/१)। कठोपनिषद्- (५/१२)। मनुस्मृति- (१२/१२३)।

[2] हरि: यह नाम सूर को बड़ा प्रिय है जैसे- हरि सौ ठाकुर और न जन कौ॥९॥ इसके अतिरिक्त १, ७, ३७, ८१, ८२, ८४, ८५ आदि अनेक पदों में सूरदास ने यह नाम लिया है।

वासुदेव: यह नाम अपेक्षाकृत कम आया है जैसे- वासुदेव की बड़ी बड़ाई॥३॥

प्रभु: यह नाम भी पद संख्या ३, ८, १०८, १०९, ११०, १२९, १३०, १३८ आदि में कई बार आया है जैसे- प्रभु हौं बड़ी बेर कौ ठाढ़ों॥१३७॥

भगवान्: अब कै राखि लेहु भगवान्॥९७॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या ३५ में भी आया है।

ठाकुर: सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ौ लिये लकुटिया छोटी॥७८१॥

नाथ: नाथ अनाथनि ही के संगी॥२१॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या ९९ में भी आया है।

स्वामी: सूरदास ऐसे स्वामी कौ देहि तू पीठि अभागे॥८॥ पदसंख्या ६ में सुरस्वामी नाम आया है।

प्रियतम: प्रीतम जानि लेहु मन माहीं॥९७॥

(२) राम से सम्बन्धित नाम: रघुकुल, राघव, रघुवीर, रघुनाथ, रघुराई, राघव, रघुपति, रघुनन्दन, रघुवर तथा राम शब्दों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।[1] **(३) कृष्ण से सम्बन्धित नाम:** यदुनाथ, यदुराज, केशव, कृष्ण, श्याम, घनश्याम, गोविन्द, गोपाल, गिरिधर, नन्दकुमार, बनवारी, वनमाली, नन्ददुलारे, नन्दलाल, यदुनन्दन, नन्दनन्दन, मोहन, बलवीर, गोपीनाथ, दामोदर, रुक्मिणीरमण।[2] सूरदास ने राम और कृष्ण से सम्बन्धित नामों

गोस्वामी: मेरौ मन मतिहीन गुसाईं॥१०३॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या १४७ में भी आया है।

पुरुषोत्तम: मेंटी पीर परम पुरुषोत्तम दुख मेट्यौ दुँहूंघां कौ॥११३॥

यज्ञपुरुष: यज्ञपुरुष तब दरसन दियौ॥४०९॥

ईश्वर: सूतै बिसारयौ सहज ही हरि, ईश्वर, भगवान्॥३२५॥

जगदीश: जैसी जगदीस जिय धरी लाजै॥५॥

मुरारी: सूरदास पर कृपा करौ अब दरसन देहु मुरारी॥१०९॥

मुकुन्द: सूरदास प्रभु सब सुख सागर दीनानाथ, मुकुन्द मुरारी॥२२॥

श्रीपति तथा स्वामी: परबस भयौ पसू ज्यों रजुबस, भज्यौ न श्रीपति रानौ॥४७॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या १४८ में भी आया है।

श्रीनाथ: अब तौ नाथ न मेरौ कोई बिनु श्रीनाथ मुकुंद मुरारी॥२४८॥

कमलापति: ये जगदीस ईश कमलापति॥६०४॥

रमापति: छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारौ॥१३१॥

विश्वम्भर तथा साहब: पोषन भरन विसंभर साहब जो कलपै सो कांचौ॥३२॥

माधव: माधौ नेकु हटकौ गाई॥५६॥ तथा इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या ७, ५१, १००, १०२, ११७ आदि में भी आया है।

[1] राम

राम शब्द पदसंख्या ५७, ५९, ७१, ९०, ९२, २९६, २९७, ३१०, ३११ आदि में कई बार आया है जैसे- राम भक्तवत्सल निज बानों॥११॥ कहा कमी जाके राम धनी॥३९॥ आचार्य वल्लभ से मिलने से पूर्व सूरदास यह प्यारा नाम प्रतीत होता है। भविष्यपुराण जो सूरदास को रामानन्दस्थ कहता है। जिसमें राम नाम की विशेष महत्ता है, सम्भवतः सत्य हो। राम के साथ श्याम, गोपाल आदि नाम भी चलते थे। आचार्य वल्लभ से मिलने के पश्चात् तो सूरदास बालगोपाल के घनिष्ठ प्रेमी बन गये।

रघुकुल और राघव शब्दों का प्रयोग भी पदसंख्या ११ में हुआ है। नवम स्कन्ध में रघुवीर (१८), रघुनाथ (२३), रघुराई (३५), राघव (४७), रघुपति (९२), रघुनन्दन (९९), रघुवर (६७) तथा राम शब्दों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।

[2] यदुनाथ: जग जानत जदुनाथ, जिते जन निजभुजस्रम-सुख पायौ॥१५॥

यदुराज: का न कियौ जनहित जदुराई॥६॥

केशव: तुम कृपालु करुनानिधि, केशव, अधम उधारन नांउ॥१२८॥

कृष्ण: सूरदास व्रत यहै कृष्ण भजि भव जलनिधि उतरत॥५५॥

श्याम: सूर श्याम बिनु अन्तकाल में कोउ न आवत नेरे॥८५॥

में एकता भी स्थापित की है। पदसंख्या ११ और २३३ में राघव और कृष्ण तथा राम और गोपाल नाम एक साथ आये हैं।

(४) स्वरूप से सम्बन्धित नाम: अविगत, शाङ्र्गपाणि, शाङ्र्गपति, शाङ्र्गधर, देवमणि, चतुर्भुज, नरकेहरी।[1] **(५) स्वभाव से सम्बन्धित नाम:** दीनानाथ, दयानिधि, दीनदयाल।[1] **(६) धाम से सम्बन्धित नाम:** वैकुण्ठनाथ, निधि, वृन्दावनचन्द्र, गोकुलपति, ब्रजराज, ब्रजनाथ।[2]

घनश्याम: अन्त के दिन को है घनस्याम॥७६॥

गोविन्द: गोविन्द प्रीति सबनि की मानत॥१३॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या ३१, ६२, ८० में भी आया है।

गोपाल: नीके गाइ गोपालहि मन रे॥६६॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या ४८, ८५, ९८ में भी आया है।

गिरिधर: ठकुराइति गिरिधर की सांची॥१८॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या १०८१ में भी आया है।

नन्दकुमार: सब तजि भजिये नंदकुमार॥६८॥

बनवारी: जे मन सरन भजे बनवारी॥२२॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या १६० में भी आया है।

वनमाली: वनमाली भगवान उधारौ॥१७२॥

नन्ददुलारे: कोमल कर गोवर्धन धारौ जब हुते नंददुलारे॥२५॥

नन्दलाल: दृढ़ विस्वास भजौ नंदलालहि॥७४॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या १५३ में भी आया है।

यदुनन्दन: तब जदुनंदन लाये॥२९॥

नन्दनन्दन: सूर नंद नंदन जेहि बिसयौ॥७८॥

मोहन: मोहन के मुख ऊपर वारी॥३०॥ पद संख्या ३६, ३७ में मनमोहन शब्द का प्रयोग हुआ है।

बलवीर: हरै बलवीर बिना को पीर॥३३॥

गोपीनाथ: गोपीनाथ सूर के प्रभु कैं विरद न लाग्यौ टांकौ॥११३॥ तथा ४३२ में।

दामोदर: कृपानिधान दानि दामोदर सदा संवारन काज॥१०९॥

रुक्मिणीरमण: कर जोरि सूर विनती करै सुनहु न हो रुकुमिनिरत्रन॥१८०॥

[1] अविगत: अविगत गति कछु कहत न आवै॥२॥

शाङ्र्गपाणि: तेली के वृष लौं नित भरमत, भजत न सारंगपानि॥१०२॥ इसके अतिरिक्त यह नाम पदसंख्या १३५, ६०४ में भी आया है।

शाङ्र्गपति: सारंगपति प्रगटे सारंग लै जानि दीन पर भीर॥३३॥

शाङ्र्गधर: देखि रे वह सारंगधर आयौ॥५६९॥

देवमणि: तुमही देउ बताइ देवमनि नाम नाम लेउँ धौं ताकौ॥११३॥

चतुर्भुज: जन्म परीक्षित कौ जब भयौ। कह्यौ चतुभुज कहँ अब गयौ॥२८९॥

नरकेहरी: भक्तबछल वपु धरि नरकेहरि दनुज दह्यौ उर दरि सुरसाई॥६॥

किसी भी पदार्थ के गुण उसके स्वरूप को समझने में सहायक होते हैं। परब्रह्म परमात्मा के अनन्त गुण हैं। ये गुण परमात्मा के स्वरूप को समझने में सहायक है। सूरदास कहते हैं- **'रसना एक अनेक स्यामगुन, कहं लगि करों बखानों। सूरदास प्रभु की महिमा अति, साखी वेद-पुरानों।'** सूरदास ने अपनी रचनाओं में परमात्मा अनेक गुणों का उल्लेख किया है-

(१) स्वाभाविक गुण: अन्तर्यामी, अविनासी, पुरातन, अनादि, सानंद, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, सुखरासि, गंभीर, उदार, कलानिधान, गुणसागर, अजर-अमर, पूर्ण, अनंत।[3] **(२) जगत्-सम्बन्धी गुण:** कर्ता-भर्ता-हर्ता, त्रिभुवनपतिराइ, जग के माता पिता, जगतपिता जगदीश

---

[1] दीनानाथ: जाकौजै॥३६॥ जापर दीनानाथ ढरै॥३५॥

दयानिधि: दयानिधि तेरी गति लखि न परै॥१०४॥

दीनदयाल: सोइ कछु कीजै दीनदयाल॥१२७॥

[2] वैकुण्ठनाथ: वैकुण्ठनाथ सकल सुखदाता सूरदास सुखधाम॥९२॥ तजि सेवा वैकुंठनाथ की नीच नरनि के संग रहै॥५३॥

निधि: जाइ समाइ सूर वा निधि में, बहुरि जगत नहिं नाचौ॥८१॥३५४॥

वृन्दावनचन्द्र: सूरदास पर कृपा करौ प्रभु श्री वृन्दावनचन्द्र॥१६३॥

गोकुलपति: हित करि मिलै लेहु गोकुलपति अपने गोधन मांह॥५१॥

ब्रजराज: लीजै पार उतारि सूर कौं महारज ब्रजराज॥१०८॥

ब्रजनाथ: मेरी कौन गति ब्रजनाथ॥१२६॥

[3] अन्तर्यामी: वे रघुनाथ चतुर कहियत है अन्तरजामी सोई॥५४३॥ कमल नैन, करुनामय, सकल अंतरजामी॥१२४॥

अविनासी: आदि सनातन, हरि अविनासी। सदा निरन्तर घट घट वासी॥६२१॥

पुरातन: पुरुष पुरातन सो निर्वानी॥६२१॥

अनादि, सानंद: तुम अनादि, अविगत, अनंत गुन-पूरन परमानन्द॥१६३॥

सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ: तुम सर्वज्ञ, सवै विधि समरथ, असरन सरन मुरारि॥१११॥

सुखरासि: अविनासी सुखरासी॥१११॥

गंभीर, उदार: अति गंभीर उदार उदधि हरि, जान सिरोमनि राइ॥८॥

कलानिधान, गुणसागर: कलानिधान सकल गुणसागर॥७॥

अजर-अमर: जरा मरन तें रहित अमाया॥६२१॥

पूर्ण: पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित॥४४८४॥

अनंत: पूरन ब्रह्म पुरान बखानै। चतुरानन सिव अंत न जानै॥६२१॥

जगद्गुरु।[1] **(३) भक्त-सम्बन्धी गुण:** अकारण हितकारी, दयालु, दीनबन्धु, भक्तवत्सल, करुनामय, शील की राशि, दाता, अभयदाता, अशरण-शरण, उदार तथा भक्तप्रेमी, आर्त दुख दाहक, पतितपावन, प्रीति के वशीभूत, प्रवीन, सुजान, चतुर, नागर।[2] **(४) रूप-सम्बन्धी गुण:** गरुड़गामी, कमलनैन ससिबदन।[3]

---

[1] कर्ता-भर्ता-हर्ता: कारन करनहार करतार। करता हरता आपुहि सोइ॥२६१॥ दाता भुक्ता हरता करता, विश्वम्भर जग जानि॥११०५॥

त्रिभुवनपतिराइ: मेरी नौका जनि चढौ त्रिभुवनपतिराई॥६३१॥

जग के माता पिता: सांची विरुदावलि तुम जग के पितु माता॥१२३॥

जगतपिता जगदीश जगद्गुरु: जगतपिता जगदीस जगतगुरु निज भक्तनि की सहत ढिठाई॥३॥

[2] अकारण हितकारी: बिनु बदलै उपकार करत है स्वारथ बिना करत मित्राई॥३॥

दयालु: जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे कौ सब कछु सरसाई॥१॥

दीनबन्धु: दीनबन्धु हरिभक्तकृपानिधि वेद पुराननि गाये॥७॥

भक्तवत्सल: सूरदास प्रभु भक्तबछल तुम पावन नाम कहाये॥७॥

करुनामय: भक्त विरह कातर करुनामय डोलत पाछैं लागे॥८॥

शील की राशि: तिनका सौ अपने जन कौ गुन मानत मेरु समान। सकुचि गनत अपराध समुदहि बूंद तुल्य भगवान्॥८॥

दाता: भूख भये भोजन जु उदर कौ, तृषा तोय, पट तन कौ॥९॥

अभयदाता: दीन कौ दयालु सुन्यौ अभयदान दाता॥१२३॥

अशरण-शरण: स्याम सुन्दर मदन मोहन बानि असरन सरन॥२०२॥

उदार तथा भक्तप्रेमी: लग्यौ फिरत सुरभी ज्यों सुत संग उचित गमन गृह बन कौ॥९॥

आर्त दुख दाहक: दीनानाथ हमारे ठाकुर साँचे प्रीति निबाहक। सूरदास सठ तातैं हरि भजि आरत के दुखदाहक॥१९॥

पतितपावन: सूर पतितपावन पद अम्बुज सो क्यों परिहरि जाउं॥१२८॥

प्रीति के वशीभूत: प्रीति के बस्य ये हैं मुरारी॥२६३६॥

प्रवीन: चित दै सुनौ स्याम प्रवीन॥४७२५॥

सुजान: सुनहु स्याम सुजान तिय गजगामिनी की पीर॥४७२७॥

चतुर: परम उदार चतुर चिंतामनि कोटि कुबेर निधन कौ॥९॥

नागर: सूरदास तुम हौ अति नागर बात तिहारी जानी॥८९७॥

[3] सकल अघहरन हरि गरुड गामी॥२१४॥

कमलनैन ससिबदन:

कमल नैन, ससिबदन मनोहर देखे हो पति अति विचित्र गति॥६२५॥

शतपथ (१०/१/१/८)- द्विदलता के दो विशाल रूप जड़ और जंगम हैं। फिर ये भी स्वयं नाना द्विदलों में विभक्त हुए हैं। श्रीकृष्ण शब्द में श्री और कृष्ण इन्हीं द्विदलों के नाम हैं। राधा और कृष्ण भी यही हैं। प्रकृति और पुरुष इन्हीं के अपर नाम हैं। कृष्ण जैसे राधा के साथ, पुरुष जैसे प्रकृति के साथ खेलता है, वैसे ही भगवान् मानों अपनी लीला के द्वारा खेल रहा है। खेल भी लीला है और खेलने का साधन भी लीला है। शतपथकार महर्षि याज्ञवल्क्य ने इस द्विदलता के खेल को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा था।

सूरसागर में निम्नलिखित धामों के नाम पाये जाते हैं- वैकुण्ठ, क्षीरसागर, स्वर्ग, सुरपुर, हरिपुर, गोकुल, वृन्दावन, अभयपद, मुक्ति, सुखधाम, सरोवर, चरणसरोवर, श्यामकमलपद, वन।[1] 'सूरदास विष्णु पद पावै सोइ।' कहकर सूरदास ने वैकुण्ठ को निज धाम , निज पद तथा विष्णुपद भी कह दिया है। पदसंख्या ३४० में वाराणसी को मुक्ति क्षेत्र का नाम दिया है। सूर लीला को लीलाकैवल्यार्थ नहीं मानते। पदसंख्या १७६ में उन्होंने स्पष्ट लिखा है- 'सत्यभक्तहिं तारिबे कौ लीला विस्तारी'। प्रभु ने लीला का विस्तार वस्तुतः भक्त को भवसागर से पार लगाने के लिए किया है।

---

[1] वैकुण्ठ:

पदसंख्या १०, ८२, १०४, ४०४, ४०५, ४२४, ४२५, ६२७ आदि में भी यह नाम आया है जैसे- वकी कपट करि मारन आई सो हरि जू वैकुण्ठ पठाई॥३॥ पदसंख्या ३९९ में वैकुण्ठ को देव-निवास भी कहा गया है जैसे- यों कहि पुनि वैकुंठ सिधारे। विधि हरि महादेव सुर सारे॥३९९॥

क्षीरसागर: क्षीर समुद्र मध्य तें यों हरि दीरघ वचन उचारा॥६२२॥

स्वर्ग: तुम मोसे अपराधी माधव के तक स्वर्ग पठाये॥७॥

सुरपुर: सूर विमान चढ़े सुरपुर सों आनन्द अभय निसान बजायौ॥५८५॥

हरिपुर: याहि समुझि जो रहै लौ लाइ। सूर बसै सो हरिपुर जाइ॥३९४॥

गोकुल: रघुकुल राघव, कृष्ण सदा ही गोकुल कीन्हों थानों॥११॥

वृन्दावन: छांड़ौ नाहि स्याम स्यामा की वृन्दावन रजधानि॥८७॥ पद संख्या १०४, १८८, १९३ आदि में भी इसका उल्लेख है।

मुक्ति: मोको मुक्ति विचारत हौ प्रभु पचिहौ पहर घरी॥१३०॥

सुखधाम: केसी कंस कुबलया मुष्टिक सब सुखधामसिधारे॥१५८, १७९ में भी।

सरोवर: चलि सखि तिहिं सरोवर जाहिं। जिहि सरोवर कमल कमला रवि बिना बिकसाहिं॥३३८॥

चरणसरोवर: चकई री चलि चरन सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग॥३३७॥

श्यामकमलपद: भृंगी री भजि स्याम कमलपद जहाँ न निसि कौ त्रास॥ जहं विधु भानु समान एकरस सो बारिज सुखरास॥३३९॥

वन: सुवा चलि ता वन कौ रस पीजै॥३४०॥

चतुर्थ अध्याय

तुलसीदास की रचनायें एवं अद्वैत वेदान्त का भक्ति विमर्श

विषय विश्लेषण की सुविधा को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत अध्याय को कुल तीन बिन्दुओं में विभाजित किया गया है- १. अद्वैत वेदान्त का भक्ति विमर्श, २. तुलसीदास और ३. तुलसीदास की रचनाओं में भक्तितत्त्व। पुनः उपरोक्त बिन्दुओं को उप-बिन्दुओं में विभाजित किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय के प्रथम चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- अद्वैततत्त्व का स्वरूप क्या है? अद्वैत वेदान्त के अनुसार मुक्ति का कारण क्या है? अद्वैत वेदान्त के अनुसार भक्ति मुक्ति का कैसा कारण है? अद्वैत वेदान्त के अनुसार भक्ति और ज्ञान में कैसा सम्बन्ध है? अद्वैत वेदान्त के अनुसार भक्ति का स्वरूप क्या है? आचार्य शङ्कर का दार्शनिक सम्प्रदाय क्या है? अद्वैत वेदान्त की परम्परा में तुलसीदास की भूमिका क्या थी?

प्रस्तुत अध्याय के द्वितीय चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- तुलसीदास कौन थे? तुलसीदास का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं जीवन यात्रा कैसी थी? रामभक्ति-साहित्य किसे कहते हैं? तुलसीदास का रामभक्ति-साहित्य से क्या सम्बन्ध था? रामभक्ति साहित्य परम्परा में तुलसीदास का योगदान क्या था? रामभक्ति-साहित्य का मूल स्रोत क्या है? वेदान्त विचार को विस्तार देने में क्षेत्रीय भाषा की भूमिका क्या थी?

प्रस्तुत अध्याय के तृतीय चरण का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है- तुलसी के काव्य में लोकमंगल की भावना, मर्यादामार्ग की स्थापना और समन्वय की दृष्टि। तुलसीदास की काव्य रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय क्या है? तुलसीदास का सगुणब्रह्म क्या है? वह निर्गुण से सगुण रूप कब धारण करता है? वह निर्गुण से सगुण रूप कैसे धारण करता है? निर्गुण से सगुण रूप धारण करने का प्रयोजन क्या है? अद्वैत वेदान्त की भक्ति परम्परा में तुलसीदास का योगदान क्या था?

रामचरितमानस, विनयपत्रिका, उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र, भागवतपुराण आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका सहयोग प्रस्तुत अध्याय के लेखनकार्य में लिया गया। तुलसीदास की पाँच प्रमुख काव्य रचनाओं के नाम हैं- १.रामचरितमानस, २.विनयपत्रिका, ३.गीतावली, ४.कवितावली और ५.दोहावली। इन पाँच ग्रन्थों के आधार पर भक्ति का प्रतिपादन किया जायेगा। इस अध्याय के लेखनकार्य का मूल आधार रामचरितमानस, विनयपत्रिका और उपनिषद् है। यथा अवसर अन्य ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है। विषय विश्लेषण को आसान बनाने के लिये आलोचनात्मक-विधा के ग्रन्थों का सहारा लिया गया है।

4.1 अद्वैत वेदान्त का भक्ति विमर्श

वेदान्तदर्शन का आधार प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र) है। उपनिषद् प्रस्थानत्रयी का मूल है। भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र उपनिषद् की व्याख्या हैं। अनेक आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा और अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से वेदान्त का प्रतिपादन किया। शङ्कराचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त ब्रह्माद्वैतवाद है। आचार्य शङ्कर के कहते हैं-

'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते'[1]

अपने स्वरूप का अनुसंधान करना जैसे- मैं कौन हूँ? कहाँ से आया? ब्रह्म और आत्मा में क्या सम्बन्ध (अभेद) है? ब्रह्म और आत्मा किस रूप में एक है? इसका अनुभव या इसकी जिज्ञासा करना भी भक्ति है।

आचार्य शङ्कर ने एकमात्र ब्रह्म को परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने जीव- जगत् का अस्तित्व नहीं माना है। वे इनको रज्जु में सर्प की भाँति भ्रम मानते हैं। माया को ब्रह्म की शक्ति माना है। माया के योग से निर्विशेष ब्रह्म सगुण रूप में अभिव्यक्त होता है, इस अवस्था में उसे जगत् का कारण मानते हैं। जीव- जगत् का अस्तित्व न रहने से उनके सम्बन्ध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अद्वय तत्त्व की स्थापना के कारण इस मत को अद्वैतवाद भी कहा जाता है।

विनयस्तोत्राणि: षट्पदी। **शिवस्तोत्राणि:** शिवमानसपूजा, श्रीशिवापराधक्षमापनस्तोत्रम्, वेदसारशिवस्तवः, शिवाष्टकम्, श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्, द्वादशज्योतिर्लिङ्गानि, द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्। **शक्तिस्तोत्राणि:** ललितापञ्चकम्, मीनाक्षीपञ्चरत्नम्, देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्, भवान्यष्टकम्, आनन्दलहरी।

विष्णुस्तोत्राणि: श्रीलक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रम्। **श्रीकृष्णस्तोत्राणि:** श्रीगोविन्दाष्टकम्, अच्युताष्टकम्, कृष्णाष्टकम्, श्रीकृष्णाष्टकम्। **विविधदेवस्तोत्राणि:** श्रीगङ्गाष्टकम्, श्रीगङ्गास्तोत्रम्, श्रीयमुनाष्टकम्, यमुनाष्टकम्।

[1] विवेकचूड़ामणि- (३२)।

प्रकीर्णस्तोत्राणि: प्रातःस्मरणम् (परब्रह्मणः, श्रीविष्णोः, श्रीरामस्य, श्रीशिवस्य, श्रीदेव्याः, श्रीगणेशस्य, श्रीसूर्यस्य, श्रीभगवद्भुक्तानाम्), साधनपञ्चकम्, धन्याष्टकम्, कौपीनपञ्चकं स्तोत्रम्, परापूजा, चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्, द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्।

श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त करने के दो मार्ग हैं। पहला प्रवृत्तिमार्ग और दूसरा निवृत्तिमार्ग। भक्ति ज्ञानकर्मोभयात्मक होने से उभयनिष्ठ है। अपराभक्ति का सम्बन्ध प्रवृत्तिमार्ग से तथा पराभक्ति का सम्बन्ध निवृत्तिमार्ग से है। श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है[1]-

(i) अपराभक्ति

(ii) पराभक्ति

(i) अपराभक्ति

आर्तादिभक्तत्रय द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को अपराभक्ति कहते हैं। अपराभक्ति सकाम और रागात्मिका वृत्ति वाली होती है।[2] सगुणभक्त द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को अपराभक्ति कहते हैं। पराभक्ति साध्यावस्था है और अपराभक्ति साधनावस्था है। अपराभक्ति को साधनभक्ति भी कहते हैं।

(ii) पराभक्ति

ज्ञानीभक्त द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को पराभक्ति कहते हैं। पराभक्ति निष्काम भावना युक्त, ज्ञान लक्षण वाली और अनन्य प्रेम वाली होती है।[3] पराभक्ति

---

[1] सा इयं ज्ञाननिष्ठा आर्तादिभक्तत्रयापेक्षया परा चतुर्थी भक्तिः इति उक्ता। तया परया भक्त्या भगवन्तं तत्त्वतः अभिजानाति। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५५)।

एवम्भूतो ज्ञाननिष्ठो मद्भक्तिं मयि परमेश्वरे भक्तिं भजनं पराम् उत्तमां ज्ञानलक्षणां चतुर्थी लभते 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इति उक्तम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५४)।

[2] सा इयं ज्ञाननिष्ठा आर्तादिभक्तत्रयापेक्षया परा चतुर्थी भक्तिः इति उक्ता। तया परया भक्त्या भगवन्तं तत्त्वतः अभिजानाति। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५५)। वही यह ज्ञाननिष्ठा आर्तादि भक्तियों की अपेक्षा से चतुर्थी परा भक्ति कही गयी है। उस (ज्ञाननिष्ठारूप) पराभक्ति से भगवान् को तत्त्व से जानता है। जिससे उसी समय ईश्वर और क्षेत्रज्ञ विषयक भेदबुद्धि पूर्ण रूप से निवृत्त हो जाती है। इसीलिये ज्ञाननिष्ठा रूप भक्ति से मुझे जानता है।

एवम्भूतो ज्ञाननिष्ठो मद्भक्तिं मयि परमेश्वरे भक्तिं भजनं पराम् उत्तमां ज्ञानलक्षणां चतुर्थी लभते 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इति उक्तम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५४)। अर्थात् ऐसा ज्ञाननिष्ठ पुरुष, मुझ परमेश्वर की ज्ञानरूप पराभक्ति को पाता है, अर्थात् 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इसमें जो चौथी भक्ति कही गयी है उसको पाता है।

[3] सा इयं ज्ञाननिष्ठा आर्तादिभक्तत्रयापेक्षया परा चतुर्थी भक्तिः इति उक्ता। तया परया भक्त्या भगवन्तं तत्त्वतः अभिजानाति। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५५)।

एवम्भूतो ज्ञाननिष्ठो मद्भक्तिं मयि परमेश्वरे भक्तिं भजनं पराम् उत्तमां ज्ञानलक्षणां चतुर्थी लभते 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' इति उक्तम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१८/५४)।

साध्यावस्था है और अपराभक्ति साधनावस्था है। पराभक्ति अपराभक्ति से श्रेष्ठ होती है। भक्त भक्ति के द्वारा परमेश्वर को तत्त्वतः जान लेता है। अतः साधक को मोक्ष प्राप्त हो जाता है।[1]

(iii) भक्ति का स्वरूप

श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार **'भजनं भक्तिः'** अर्थात् भजन का नाम भक्ति है।[2] भक्ति एक भजन-क्रिया है जिसका साध्य ईश्वर है। भक्ति को परिभाषित करते हुये आचार्य शङ्कर कहते हैं कि **'आत्मदेवस्य उपासना एव भक्तिः'** अर्थात् आत्मदेव की उपासना ही भक्ति है। क्योंकि भक्ति ज्ञान के समकक्ष होकर अपने स्वरूप का अन्वेषण करती है। शङ्कराचार्य ने **'आत्मदेवस्य उपासना एव भक्तिः'** की व्याख्या में **'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिः'** को लिखा। **'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिः'** का अर्थ यह है कि जीव अपने वास्तविक स्वरूप को जानना चाहता है और ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध की खोज करना चाहता है।

आचार्य शंकर के मत में उपासना का प्रयोजन चित्तशुद्धि है। क्योंकि चित्त के शुद्ध होने पर ही ब्रह्मसाक्षात्कार सम्भव है। कहने का तात्पर्य यह है कि **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः'** को आत्मसात् करने के लिये चित्त का शुद्ध होना आवश्यक है। चित्तशुद्धि उपासना से होती है। चित्तशुद्धि के अनेक उपायों में से उपासना भी एक उपाय है। अनेक प्रकार की उपासना वर्णित है।

आचार्य शङ्कर ने 'परापूजा' नामक स्तोत्र लिखा है।[3] यह स्तोत्र निर्गुण ज्ञानमार्ग की अवधारणा पर आधारित है। परापूजा का आचरण करने से भगवत्कृपा मिलती है। आचार्य शङ्कर पूर्वपक्ष की शैली को अपनाते हुये परापूजा का विधान बताते हैं[4]-

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि।

स्थितेऽद्वितीयभावेऽस्मिन्कथं पूजा विधीयते॥१॥

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।

स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः॥२॥

---

[1] पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। (श्रीमद्भगवद्गीता-८/२२)।
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५४)॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशतो तदनन्तरम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५५)॥

[2] श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (८/१०)। श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य- (१४/२६)।

[3] परापूजा स्तोत्र, स्तोत्ररत्नावली पृष्ठ संख्या- (२६९)।
[4] परापूजा स्तोत्र, स्तोत्ररत्नावली पृष्ठ संख्या- (२६९)।

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।

अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम्॥३॥

निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च।

निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलङ्कारो निराकृतेः॥४॥

निरञ्जनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः।

निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह॥५॥

विश्वानन्दपितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते।

स्वयंप्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादिभासकः॥६॥

प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः।

वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते॥७॥

स्वयंप्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः।

अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत्॥८॥

एवमेव परापूजा सर्वावस्थासु सर्वदा।

एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः॥९॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,

पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।

सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,

यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥१०॥

पूजा का स्वरूप बताते हुये शङ्कराचार्य कहते हैं- **'यत्-यत् कर्म करोमि तत्-तत् अखिलम् शम्भो तव आराधनम्।'**[1] अर्थात् हम अपने जीवन में जो भी काम करते रहते हैं वह सब आपकी आराधना है। **'आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं, पूजा ते**

[1] शिवमानसपूजा- (४)। स्तोत्ररत्नावली पृष्ठ संख्या- (२०)।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/२७)॥

विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः। सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो, यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥'[1]

आचार्य शङ्कर ने भक्ति को उपासना के अर्थ में माना है। उपासना में जब बुद्धितत्त्व का प्राधान्य हो तो ज्ञानमार्ग (निर्गुण या अव्यक्तोपासना) और जब हृदयतत्त्व का प्राधान्य हो तो भक्तिमार्ग (सगुण या व्यक्तोपासना) कहलाता है।

निर्गुण उपासना को अव्यक्तोपासना कहते हैं। अव्यक्ततत्त्व हमारी समस्त इन्द्रियों की पहुँच से परे है।[2] अतः अव्यक्ततत्त्व की उपासना ज्ञान से की जाती है। ज्ञान की खोज (ज्ञानयज्ञ) भी एक प्रकार की भक्ति है। इसलिए निर्गुण उपासना को ज्ञानमार्ग कहते हैं। निर्गुण उपासना में ज्ञान की प्रधानता होती है। निर्गुण उपासक ज्ञानयज्ञ के द्वारा ब्रह्म की उपासना करता है।[3] निर्गुण उपासना का उपास्यतत्त्व निर्गुणब्रह्म है। निर्गुण, निर्विशेष एवं समस्त उपाधियों से रहित अक्षरब्रह्म परमात्मा की उपासना (ध्यान) करना निर्गुण उपासना है।[4]

अन्तःकरण तत्त्वज्ञान का साधन है। शुद्ध अन्तःकरण में ही ज्ञानोदय सम्भव है। अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिये अनेक उपाय प्राप्त होते हैं। जिनमें से उपासना भी अन्तःकरण को शुद्ध करने का एक उपाय है। पवित्र अन्तःकरण में ज्ञानोदय होता है। विवेकज्ञान से मनुष्य के मन में वैराग्य पैदा होता है। यह वैराग्य मुक्तिमार्ग की यात्रा में सहायक होता है।

भक्तिमार्ग कहता है कि विषय की तरफ से मुड़िये और अपने स्रोत की तरफ देखिये। दैनिक क्रिया करते हुये अपना ध्यान ईश्वर की तरफ लगाइये। भक्ति और अन्य मार्गों में परस्पर अङ्गाङ्गीभाव सम्बन्ध हो सकता है। इसके बाद भी भक्ति मुक्ति का एक स्वतन्त्र साधन है।

4.2 तुलसीदास

ऐतिहासिक दृष्टि के आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया जाता है- आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल। मध्यकाल को

---

[1] शिवमानसपूजा- (४)। स्तोत्ररत्नावली पृष्ठ संख्या- (२०)।

[2] निर्गुण उपासना को अव्यक्तोपासना कहते हैं। अव्यक्त का अर्थ है- 'इन्द्रिय अगोचर'। अव्यक्तोपासना का अर्थ है- 'अव्यक्ततत्त्व की उपासना'।

[3] ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/१५)॥

[4] श्रीमद्भगवद्गीता- (अध्याय-१२ भूमिकाभाष्य)।

ये च अन्ये अपि त्यक्तसर्वैषणाः सन्न्यस्तसर्वकर्माणो यथाविशेषितं ब्रह्म अक्षरं निरस्तसर्वोपाधित्वाद् अव्यक्तम् अकरणगोचरम्। (श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य-१२/१)।

श्रीमद्भगवद्गीता- (९/१४)।

भक्तिकाल भी कहते हैं। भक्तिकाल की काव्य रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय भक्तितत्त्व है। मध्यकालीन भक्ति की दो धारायें हैं- निर्गुणभक्ति और सगुणभक्ति। सगुणभक्ति धारा की दो शाखायें हैं- पहली कृष्णभक्ति शाखा और दूसरी रामभक्ति शाखा। तुलसीदास रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं।

गोस्वामी तुलसीदास राम के अनन्यभक्त थे। उनका सारा जीवन ही राम की भक्ति में व्यतीत हुआ था। उनकी भक्ति दास्यभाव की थी। वे भगवान् राम को अपना स्वामी मानते थे। तुलसीदास एक महान् लोकनायक और युगद्रष्टा थे। वे एक समन्वयवादी कवि थे। उनके काव्य में अपने समय के प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तरों का समन्वय हुआ है। वे ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं मानते थे।

गोस्वामी तुलसीदास महान् समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में अनेक उच्च आदर्शों की स्थापना की। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में आदर्श स्थापित किये। पारिवारिक जीवन में माता, पिता, गुरु, पति, पत्नी, भाई और स्वामी आदि के प्रति जो-जो कर्त्तव्य होना चाहिये उन सभी का आदर्श रूप रामचरितमानस में देखा जा सकता है। तुलसीदास ने भगवान् राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है।

4.2.1 तुलसीदास का जीवन परिचय

अन्य भारतीय मनीषियों की तरह तुलसीदास ने भी अपने जीवनवृत्त के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं लिखा है। इनके जन्मस्थान, जन्म वर्ष आदि को लेकर विद्वान् एकमत नहीं हैं। 'कवितावली' और 'दोहावली' तुलसीदास की काव्य-रचना है। 'कवितावली' और 'दोहावली' में उनके जीवनवृत्त के विषय में कुछ संकेत मिलता है।

तुलसीदास के बचपन का नाम रामबोला था। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। तुलसीदास का विवाह रत्नावली नामक कन्या से हुआ था। रत्नावली पं. दीनबन्धु पाठक की पुत्री थी। तुलसीदास के गुरु नरहरिदास थे। तुलसीदास को आदि कवि वाल्मीकि का अवतार माना जाता है।

तुलसीदास का जन्म सन् १५३२ ई. में श्रावणमास शुक्लपक्ष सप्तमी के दिन राजापुर (चित्रकूट: वर्तमान में बाँदा जनपद, उ.प्र.) नामक स्थान पर हुआ था। कुछ विद्वानों के मत में तुलसीदास का जन्म सोरों (वर्तमान में एटा जिला, उ.प्र.) नामक स्थान पर हुआ था। तुलसीदास की मृत्यु सन् १६२३ ई. में काशी के अस्सी घाट (काशी: वर्तमान में वाराणसी जनपद, उ.प्र.) पर हुई ।

तुलसीदास ने अयोध्या, काशी, चित्रकूट आदि अनेक तीर्थों की यात्रा किया। उन्होंने काशी में जाकर शेषसनातन नामक विद्वान से वेद-वेदाङ्ग, दर्शन, इतिहास और पुराणों का ज्ञान प्राप्त किया। भगवान् की भक्ति और सन्तों का सत्संग इनके जीवन का मुख्य कार्य बन गया। तुलसीदास की कविताओं का एक ही विषय है- मार्यादा पुरुषोत्तम राम की भक्ति। उन्होंने कुल १२ अमूल्य ग्रन्थों की रचना किया। रामचरितमानस उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। रामचरितमानस में राम के सम्पूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

4.2.2 तुलसीदास की रचनायें

तुलसीदास ने सबसे पहले 'हनुमान-चालीसा' लिखा। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' लिखने के पूर्व 'हनुमान-चालीसा' लिखकर हनुमान् जी का गुणगान किया और हनुमान् जी की प्रेरणा से 'रामचरितमानस' लिखा। यह हनुमान् जी द्वारा रचित 'हनुमद-रामायण' का एक अंश है। 'रामचरितमानस' भक्ति के लिये वरदान है। तुलसीदास के बारह ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते हैं-

१. रामललानहछू	५. रामचरितमानस	९. कृष्णगीतावली
२. वैराग्यसंदीपनी	६. पार्वतीमंगल	१०. बरवैरामायण
३. रामाज्ञाप्रश्न	७. गीतावली	११. दोहावली
४. जानकीमंगल	८. विनयपत्रिका	१२. कवितावली

इसमें 'हनुमानबाहुक' भी सम्मिलित है। प्रस्तुत अध्याय में कवितावली, दोहावली, गीतावली, विनयपत्रिका और रामचरितमानस इन पाँच ग्रन्थों के आधार पर भक्ति का प्रतिपादन किया जायेगा।

(i) कवितावली

इसमें रामकथा ब्रजभाषा में लिखी गई है। कवितावली में दो तरह के छन्द पाये जाते हैं। एक वे छन्द जो रामकथा से सम्बन्धित हैं , दूसरे वे जो अन्य विविध विषयों से सम्बन्धित हैं। यह मुक्तक काव्य है। इसमें कवित्त, दोहा, सवैया आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। कवितावली में कुल सात काण्ड हैं- बालकाण्ड कवितावली, अयोध्याकाण्ड कवितावली, अरण्यकाण्ड कवितावली, किष्किन्धाकाण्ड कवितावली, सुन्दरकाण्ड कवितावली, लंकाकाण्ड कवितावली और उत्तरकण्ड कवितालवली।

(ii) दोहावली

दोहावली में कुल ५७३ दोहे हैं। इसके कई दोहे रामचरितमानस आदि तुलसी की अन्य रचनाओं में भी मिलते हैं। इन दोहों के साथ नव-कल्पित दोहों को मिलाकर एक 'सतसई' भी तैयार की गयी है। दोहावली के दोहे विविध विषयों से सम्बन्धित हैं। कुछ दोहे कवि के जीवन की अनेक घटनाओं से सम्बन्धित हैं। कवितावली के बाद दोहावली के इन दोहों से ही तुलसीदास के जीवनवृत्त निर्माण में हमें सहायता मिलती है।

(iii) गीतावली

इसमें रामकथा गीत रूप में गायी गयी है। गीतावली मूल रूप से कृष्णकाव्य परम्परा की गीत पद्धति पर लिखी गयी है। गीतावली में अवधी मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। गीतावली में ३२८ गीत हैं। गीतावली का उत्तरकाण्ड अन्य ग्रन्थों के उत्तरकाण्ड से भिन्न है। उसमें रामरूप वर्णन, राम-हिण्डोला आदि का वर्णन मिलता है। गीतावली में कुल सात काण्ड हैं- बालकाण्ड गीतावली, अयोध्याकाण्ड गीतावली, अरण्यकाण्ड गीतावली, किष्किन्धाकाण्ड गीतावली, सुन्दरकाण्ड गीतावली, लंकाकाण्ड गीतावली और उत्तरकाण्ड गीतावली।

(iv) विनयपत्रिका

तुलसीदास ने विनयपत्रिका में भक्ति-भावना को सुमधुर गीतों में प्रस्तुत किया है। विनयपत्रिका ब्रजभाषा में रचित है। इसमें कुल २७९ स्तोत्र हैं। प्रारम्भ के ६३ स्तोत्र गणेश, शिव, पार्वती, गंगा, हनुमान्, जानकी जी आदि के गुणगान के साथ राम जी की स्तुतियाँ हैं। विनयपत्रिका में **'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन'** जैसे लोकप्रिय स्तोत्र हैं।

(v) रामचरितमानस

रामचरितमानस में राम के सम्पूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गयी है। रामचरितमानस में कुल सात काण्ड हैं- बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। 'श्रीमद्भागवतपुराण' के बाद भारतीय जन मानस को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला ग्रन्थ रामचरितमानस रहा है। रामचरितमानस को रामायण की कोटि में रखा गया है। क्योंकि इसमें भगवान् राम के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण किया गया है।

4.2.3 तुलसीदास की काव्यभाषा

भारतीय परम्परा को ज्ञान परम्परा कहते हैं। वेदों में निहित ज्ञान उपनिषद्, भगवद्गीता और पुराण के माध्यम से होता हुआ सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुआ। कहने का तात्पर्य यह है

कि वैदिक संस्कृत में निहित ज्ञान पहले लौकिक संस्कृत में आया और फिर जन साधारण की भाषा (ब्रजभाषा, अवधीभाषा इत्यादि) में अभिव्यक्त हुआ। भाषा विचार और भाव अभिव्यक्ति का माध्यम अवश्य है परन्तु भारतीय परम्परा में भाषा की अपेक्षा विचार, भाव और उसकी अभिव्यक्ति को ज्यादा महत्त्व दिया गया है।

तुलसीदास संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। संस्कृत भाषा में पारंगत होते हुये भी तुलसीदास ने अपनी काव्य रचनाओं के लिये अवधी भाषा का चयन किया। अवधीभाषा जन साधारण की भाषा थी। तुलसीदास की कुछ काव्य रचनायें ब्रजभाषा में भी मिलती हैं। इनका (अवधीभाषा और ब्रजभाषा) दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। तुलसीदास ने क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से वेदान्त के चिन्तन को जन-जन तक पहुँचाया।

अवधी बोली को अवधीभाषा बनाने का श्रेय तुलसीदास को दिया जाता है। अवधीभाषा को साहित्यिक भाषा के उच्च सिंहासन पर आसीन करने का श्रेय तुलसीदास को प्राप्त है। तुलसीदास ने लोकगीतों की रचना भी किया था। तुलसीदास ने स्वरचित गेय पदों, लीलागान और लोकभाषा के माध्यम से वेदान्त के भक्ति विषयक चिन्तन को जन-जन तक पहुँचाया।

क्षेत्रीय भाषा ने वेदान्त चिन्तन को विस्तार दिया। भक्ति ने वेदान्त के चिन्तन को सहज रूप में प्रस्तुत किया। भक्ति ने आम लोगों को वेदान्त की तरफ आकर्षित किया। भक्ति ने वेदान्त को लोकप्रिय बनाया। लोकगीतों की परम्परा ने वेदान्त चिन्तन के प्रचार-प्रसार को आसान बना दिया। इस प्रकार से वेदान्त की चिन्तन परम्परा नित्य-निरन्तर आगे बढ़ती गयी।

4.2.4 रामभक्ति साहित्य

रामानन्द के बारह शिष्य प्रसिद्ध थे- १.अनन्तानन्द, २.कबीरदास, ३.सुखानन्द, ४.सुरसुरानन्द, ५.पद्मावती, ६.नरहर्यानन्द, ७.पीपानरेश, ८.भावानन्द, ९.रैदास, १०.धनासेन, ११.योगानन्द और १२. गालवानन्द। इन्हें द्वादश महाभागवत के नाम से जाना जाता है। नरहर्यानन्द के शिष्य गोस्वामी तुलसीदास थे।

रामानन्द की भक्ति धारा द्विमुखी हो गयी- १.निर्गुणभक्ति धारा और २. सगुणभक्ति धारा। निर्गुणभक्ति धारा में निर्गुण निराकार राम तथा सगुणभक्ति धारा में सगुण साकार अवतारी राम की भक्ति लोकप्रिय हुई। निर्गुणभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास हैं। सगुणभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास हैं।

4.3 तुलसीदास की रचनाओं में भक्तितत्त्व

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा

यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।

यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां

वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥[1]

रामचरितमानस की उपरोक्त पंक्तियों में अद्वैत वेदान्त की पद्धति का अनुशरण किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास राम की अनन्यभक्ति के आकांक्षी हैं। तुलसीदास के गुरु नरहरिदास थे। नरहरिदास रामानन्दीय महात्मा थे। तुलसीदास की दो प्रमुख रचनायें हैं- रामचरितमानस और विनयपत्रिका, इनकी सहायता से रामभक्ति का निरूपण आसानी से किया जा सकता है।

प्रभु के नाम अनेक हैं पर उनकी रुचि रामनाम की ओर है।[2] तुलसी के लिये माता, पिता, गुरु सब कुछ राम ही हैं। उन्हें राम का सगुण-साकार कोशललेश रूप पसंद है- **'कोउ ब्रह्म निरगुन ध्याव, अव्यक्त जेहि श्रुति गाव। मोंहि भाव कोशल मूप, श्रीराम सगुन स्वरूप'।**[3]

वे राम को निर्गुण-सगुण तथा निराकार-साकार दोनों रूप प्रदान करते हैं। निर्गुण-निराकार रूप में चिदाघन स्वरूप वाले और सगुण-साकार में नरदेहधारी दशरथ पुत्र राम हैं। वस्तुतः तुलसी निर्गुण-निराकार को लीला में सगुण-साकार बना देते हैं।

तुलसीदास के अनुसार सृष्टि की रचना लीला का एक भाग है- **'सम्भु बिरञ्चि बिस्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना'।**[4] लीला का उद्देश्य दुष्टों का दमन और सज्जनों की रक्षा करना

---

[1] रामचरितमानस बालकाण्ड श्लोक संख्या ६।

अर्थात् जिसकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्राह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य-जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण कमल ही भवसागर से तरने की इच्छा वालों के लिये एकमात्र नौका हैं,उन समस्त कारणों से पर (सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहलाने वाले भगवान् हरि की मैं वन्दना करता हूँ।

[2] जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका।

राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिक॥

(रामचरितमानस अरण्यकाण्ड-७४)॥

[3] कोउ ब्रह्म निरगुन ध्याव, अव्यक्त जेहि श्रुति गाव।

मोंहि भाव कोशल मूप, श्रीराम सगुन स्वरूप। (रामचरितमानस लंकाकाण्ड-१३९)।

[4] सम्भु बिरञ्चि बिस्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥ (रामचरितमानस बालकाण्ड-१७२)॥ प्रभु के अंशों से अनेका ब्रह्मा, विष्णु और शिव उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के द्वारा भगवान् सृष्टि की रचना, पालन और संहार कराते हैं।

है।[1] लीला के लिये भगवान् अवतार लेते हैं। वे देव-रक्षा, भक्त-हित, भूमि-भार हरण और वर्णाश्रम मर्यादा की स्थापना करते हैं।[2] तुलसीदास ने राम के मर्यादा और प्रशान्त स्वरूप को अपने काव्य में दिखाया। इसीलिये तुलसीदास को लोकधर्म का प्रतिष्ठाता कहा जाता है।

तुलसीदास राम को ब्रह्म की संज्ञा देते हैं।[3] तुलसी की सम्मति में द्वैत-बुद्धि अज्ञान का परिणाम है।[4] वेदों के समान तुलसी भी मोक्ष को परमपद कहते हैं।[5] वे उपनिषदों की शब्दावलियों का प्रयोग राम के लिये करते हैं। तुलसीदास कहते हैं- **'नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा'।[6]**

तुलसी के अनुसार प्रभुकृपा से ही आत्मज्ञान और फिर अद्वैत स्थिति सम्भव होती है।[7] वे सत्सङ्ग, श्रद्धा, गुरुकृपा, भगवत्कृपा और शरणागति पर जोर देते हैं। उनके अनुसार परमतत्त्व मन, वाणी और बुद्धि से अतर्क्य है।[8] गुरु की प्राप्ति भी भगवत्कृपा से होती है।

तुलसी नवधाभक्ति के लिये प्रसिद्ध हैं।[9] इसके अतिरिक्त उन्होंने भक्ति के दो भेद किये- १.भेदभक्ति और २.अभेदभक्ति।[1] तुलसीदास ने भक्त के गुणों को भी बताया है। भगवद्गीता

---

[1] जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥

करहिं अनीति जाहिं नहीं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।

तब तब धरि प्रभु बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

(रामचरितमानस बालकाण्ड-१४८)॥

[2] (विनयपत्रिका-२४८) और (रामचरितमानस १४८)।

[3] राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्वरहित सब उर पुर बासी॥ (रामचरितमानस बालकाण्ड-१४४)॥

[4] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड १८६।

[5] (रामचरितमानस बालकाण्ड-२३७) और (रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड-१४०)।

[6] नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा॥ (रामचरितमानस बालकाण्ड-१७२)॥

सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। (रामचरितमानस उत्तरकाण्ड-१०४)॥

राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।

अविगत अलख अपार, नेति-नेति नित निगम कह॥ (रामचरितमानस बालकाण्ड-१४८)॥

[7] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १२८।

[8] रामचरितमानस बालकाण्ड १४८।

[9] रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड (६३ और ६४) में राम शबरी से नवधा भक्ति के विषय के विषय के विषय में कहते हैं-

१. संतों का संसर्ग

२. हरि कथा में अनुराग

३. गुरु सेवा

४. हरिगुणगान

(७/१६) के समान वे भी भक्तों के चार भेद करते हैं- १.आर्त, २.अर्थार्थी, ३.जिज्ञासु और ४.ज्ञानी।

उन्होंने भगवद्गीता के समान श्रद्धा के भी तीन भेद बताया है। तुलसीदास श्रीमद्भगवद्गीता (१७वाँ अध्याय) की दैवीसम्पदा को विद्या और आसुरीसम्पदा को अविद्या कहते हैं।[2] इनको सत्संग के माध्यम से समझा जा सकता है। विद्या भवसागर से पार करने वाली है तो अविद्या आबद्ध करने वाली है।

4.3.1 भक्ति

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। उसके लिये कुछ लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। जिसकी प्राप्ति के लिये वह सतत् प्रयत्नशील रहता है। भारतीय मनीषियों ने इस लक्ष्य को पुरुषार्थ नाम दिया। पुरुषार्थों की संख्या चार है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है, परम पुरुषार्थ है, परमेश्वर का परम धाम है। मोक्ष प्राप्त करने के बाद जीव परम आनन्द का अनुभव करता है।[3] भक्ति मोक्ष प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है।[4]

---

५. दृढ़ विश्वास पूर्वक राम नाम का जप

६. संसार को राममय देखना और संतों को राम से अधिक समझना

७. जो कुछ मिले उसी में संतोष करना परदोष दर्शन से पृथक् रहना

८. सज्जनों के धर्म में निरन्तर निरत रहना अर्थात् दम, शील और विविध प्रकार के कर्मों से वैराग्य

९. निष्कपट होकर सबसे सरल व्यवहार करना और राम के भरोसे रहकर हृदय में हर्ष तथा दैन्य अनुभव न करना।

[1] (रामचरितमानस अरण्यकाण्ड-१२) और (रामचरितमानस लंकाकाण्ड-१३८)।
[2] रामचरितमानस अरण्यकाण्ड में दैवीम्पदा की विद्या से और आसुरी सम्पदा की अविद्या से तुलना की गयी है।
[3] 'सः न च पुनरावर्त्तते।' (छान्दोग्योपनिषद्-८/१५/१)। 'यदल्पं तन्मर्त्यम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१४/१)।
'यो वै भूमा तत्सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्।' (छान्दोग्योपनिषद्- ७/१३/१)।
[4] मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी। (विवेकचूड़ामणि-३२)॥

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥

मामेवैष्यसि युकत्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥

तदाद्रष्टु स्वरूपावस्थानम्। (योगसूत्र)।

ब्रह्मसंस्थः अमृतत्त्वम् एति॥ (छान्दोग्योपनिषद्-२/२३/२)॥

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/१/३)॥

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्। (ब्रह्मसूत्र-१/१/७)।

भक्त्या जानातीति चेन्नाऽभिज्ञया साहाय्यात्॥ (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-१/२/६)

आम बोलचाल की भाषा में भक्ति का तात्पर्य- भगवान् या अपने इष्टदेव के लिये किया गया श्रद्धेय कर्म (जैसे पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन, दान, उपासना, तप, जप इत्यादि) से है। दार्शनिक दृष्टि से भक्ति का अर्थ थोड़ा अलग है। हृदयतत्त्व के माध्यम से भगवान् का सान्निध्य प्राप्ति और साक्षात्कार करने का प्रयास ही भक्ति है।

वेदान्त की भक्ति चिन्तन परम्परा का बीज वेदों के प्रकृति प्रेम एवं वैदिक ऋचाओं की स्तुति, प्रार्थना आदि में देखा जा सकता है। गीता की भक्ति निष्काम कर्म पर आधारित थी। लोकरक्षा निष्काम कर्म वाली भक्ति का मूल था। श्रीकृष्ण कहते हैं- **'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।'**[1] कृष्ण ने जिस भक्ति-भावना का सूत्रपात गीता में किया था उसका व्यापक विस्तार पुराणों में देखा गया। भगवद्गीता में जिस भक्ति-भावना की प्रतिष्ठा हुई उसकी अविरल धारा पुराणों से होती हुई सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुई।

तुलसीदास सगुण ब्रह्म को मानने वाले थे। उनका मानना था कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। लेकिन सगुण रूप उनको ज्यादा भाता है, ज्यादा मन के नजदीक होता है। इसलिये वे भगवान् राम के सगुण रूप को मानते हैं। तुलसी भगवान् राम पर अटूट श्रद्धा रखते थे। बहुत ही भरोसा रखते थे। उन्होंने कहा है-

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।

एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥[2]

उन्हें एक ही प्रभु पर विश्वास है, एक का ही भरोसा करते हैं और उस एक के लिये ही वे जीवित रहते है। चातक बने हुये हैं। राम रूपी जो घनश्याम है उनके लिये वे चातक हैं।

इतना अटूट विश्वास है उन्हें राम पर। यहाँ तक कि वे राम के साथ अपने विभिन्न सम्बन्धों को मानते हैं। उनका मानना है कि मुझे तो आपके साथ सम्बन्ध रखना है। आपको जो भावे, जो उचित लगे, जो अच्छा लगे उसे ही मान लीजिये। तुलसी कहते हैं-

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।

---

[1] 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)॥ 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४)॥

[2] दोहावली- २७७।

मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो॥

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो,

तात-मात, गुर-सखा, तू सब बिधि हितू मेरो॥

तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।

ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरण-सरन पावै॥[1]

तुलसीदास हर हाल में सिर्फ भगवान् राम के चरणों में रहना चाहते हैं। चाहे माता-पिता का रिश्ता मान लीजिये, चाहे गुरु का रिश्ता मान लीजिये, चाहे स्वामी और दास्य का रिश्ता मान लीजिये, चाहे सखा का रिश्ता मान लीजिये।

'**तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।**' अर्थात् हमारे बहुत से नाते हैं जो आपको अच्छा लगे वो मान लीजिये। तुलसी हर हाल में प्रभु की शरण में रहना चाहते हैं। तुलसी की भक्ति दास्य भाव की है। तुलसीदास की भक्ति-भावना दास्यभक्ति कहते हैं।

अब प्रश्न यह है कि दास्यभक्ति क्या होती है? प्रभु को अपना स्वामी और अपने आपको प्रभु का दास (सेवक) समझकर परम श्रद्दा पूर्वक उनकी सेवा करना।[2] प्रभु की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित कर देना। भक्त के मन में सेवक का भाव होता है जो उसके अहंकार को नष्ट कर देता है। साधक का अहंकार शून्य होना भक्ति-भावना की पहली उपलब्धि होती है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'तू मेरा भक्त हो जा' फिर तू मेरे को ही प्राप्त होगा।[3]

जौ जगदीस तौं अति भलौ, जौ भूपति तौ भाग।

तुलसी चाहत जनम भर, रामचरन अनुराग॥[4]

अर्थात् तुलसी हर हाल में प्रभु की शरण में रहना चाहते हैं। तुलसी की भक्ति दास्य भाव की है। दास्य भक्ति के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हनुमान् हैं। शिव पार्वती से उनके सम्बन्ध में कहते हैं-

हनूमान समान बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार-बार प्रभु निज मुख गाई॥[1]

---

[1] विनयपत्रिका पद संख्या ७९।

[2] कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-२/७)॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-४/३)॥

[3] (श्रीमद्भगवद्गीता-९/३४) तथा (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६५)।

[4] दोहावली- ९१।

तुलसीदास के अनुसार ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं है। जहाँ निर्गुण रूप, ज्ञान का रूप है वहीं सगुण रूप, भक्ति का रूप है। लेकिन दोनों ही अलग-अलग नहीं हैं। दोनों की अपनी एक विशेषता है- **'भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा'** इनमें ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं है। **'उभय हरहि भव-सम्भव खेदा'** उनमें कोई भेद-भाव नहीं है। **'भव-सम्भव खेदा'** अर्थात् जो इनमें भेदभाव करते हैं वो गलत है। ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं है क्योंकि एक व्यक्ति ज्ञान के आधार पर ईश्वर की आराधना करता है तो एक प्रेम के आधार पर ईश्वर की आराधना करता है। प्रेम और ज्ञान दोनों ही वो मार्ग हैं जो ईश्वर तक ले जाते हैं।

भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा।

उभय हरहि भव-सम्भव खेदा॥

भक्तिहीन ज्ञान भगवान् को प्रिय नहीं है- **'सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू। कर्णधार बिनु जिमि जलयानू॥'**[2] प्रभुकृपा के बिना माया से पार पाना सम्भव नहीं है। तुलसीदास कहते हैं- **'अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटै राम करहु जौ दाया॥'**[3]

ज्ञान का परिणाम अद्वैत भावना है। द्वैत अज्ञान-सम्बद्ध है। द्वैतभाव ही माया के परिवार मद-क्रोधादि का जनक है- **'द्वैत बुद्धि बिनु क्रोध किमि द्वैत कि बिनु अज्ञान।'**[4] अतः जब तक ज्ञान का उदय नहीं होता, तब तक जीव माया के बन्धनों में ही ग्रसित रहता है। विवेक के जाग्रत होते ही मोह, भ्रम आदि भाग जाते हैं और भगवान् चरणों में अनुराग उत्पन्न होता है- **'होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरण अनुराग जागा॥'**[5]

प्रभु के निर्गुण और सगुण दो रूप हैं। पर नाम इन दोनों से भी बढ़कर है, क्योंकि वह इन दोनों को भक्त के लिये सुगम कर देता है। इसी से दोनों का निरूपण भी किया जाता है।[6] अतः नाम ब्रह्म और राम दोनों को अपने वश में रखता है।

हृदय में निर्गुण ब्रह्म का ध्यान हो और नेत्रों के सामने सगुण स्वरूप की सुन्दर झाँकी हो। इन दोनों के बीच में रसना पर सुन्दर रामनाम हो। यह दृश्य वैसा ही होगा जैसे स्वर्ण के सम्पुट में ललित रत्न सुशोभित हो- **'हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम। मनहुँ पुरट संपुट**

---

[1] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ७३।
[2] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड २७८।
[3] रामचरितमानस किष्किन्धाकाण्ड २४।
[4] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड १८७।
[5] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड ९४।
[6] रामचरितमानस बालकाण्ड ३९।

लसत लसत तुलसी ललित ललाम।'[1] रामनाम लेने से ही वाणी की शोभा है। इस बात को मद-मोह छोड़कर विचार लेना चाहिये।[2]

परम सत्ता रहस्यात्मक है। जो व्यक्ति इस रहस्यात्मक व्यक्तित्व की खोज में निरत होते हैं, वे साधक हैं। जो इससे प्रेम करते हैं, वे भक्त हैं। ज्ञानी इसे ब्रह्म, कर्मकाण्डी इसे परमात्मा और भक्त इसे भगवान् कहकर पुकारते हैं। सबके पथों के नाम भी इसी आधार पर पृथक्-पृथक् हैं। भक्त का प्रेममार्ग भक्ति कहलाता है। भक्तिमार्ग में इस प्रकार भक्त, भगवान् और भक्ति तीन तत्त्वों की प्रधानता है। इस मार्ग का उपदेष्टा कोइ सिद्ध संत होता है, जिसे गुरु कहते हैं।

जो प्रभु के प्यारे हैं, जिन्हें राम अपना समझते हैं, ऐसे पुण्यवान् व्यक्ति संसार में बहुत थोड़े हैं- **'तिन्ह सम पुन्यपुंज जग थोरे। जिनहिं राम जानत करि मोरे॥'**[3] राम सदैव अपने भक्त की रुचि रखते हैं- **'राम सदा सेवक रुचि राखी।'**[4] भगवान् भक्त की भक्ति के वशीभूत हो जाते हैं- हैं- **'रघुपति भगत-भगतिबस अहहीं।'**[5] तुलसीदास कहते हैं कि भक्तिमार्ग सरस, सरल, सुलभ सुलभ मार्ग है- **'सुलभ सुखद मारग यह भाई।'**[6]

तुलसीदास कहते हैं कि भक्ति से मुक्ति मिलती है- **'राम भजत सोइ मुक्ति गुसाईं। अनइच्छित आवै बरियाईं॥ भगति करत बिनु जनत प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा॥'**[7] तुलसीदास कहते हैं कि भगवान् की भक्ति उनकी कृपा के बिना नहीं मिलती है- **अति हरि कृपा जासु पर होई। पाँउँ देहि येहि मारग सोई॥**[8] **जहँ लगि साधन बेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी॥**[9]

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग।

तुलसी चातक प्रेम को नित्त नूतन रुचि रंग॥[10]

गोस्वामी जी कट्टर मर्यादावादी थे यह पहले कहा जा चुका है। मर्यादा का भंग वे लोक के लिये मंगलकारी नहीं समझते थे। मर्यादा का उल्लंघन देखकर ही बलराम जी वरासन पर

---

[1] दोहावली- ७।
[2] रामचरितमानस सुन्दरकाण्ड २४।
[3] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड २७५।
[4] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड २२०।
[5] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड २६६।
[6] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ६८।
[7] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड २०४।
[8] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड २२१।
[9] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड २१८।
[10] दोहावली- २८०।

बैठकर पुराण कहते हुए सूत पर हल लेकर दौड़े थे। शूद्रों के प्रति यदि धर्म और न्याय का पूर्ण पालन किया जाये, तो गोस्वामीजी उनके धर्म ऐसा कष्टप्रद नहीं समझते थे कि उसे छोड़ना आवश्यक हो। यह पहले कहा जा चुका है कि वर्णविभाग केवल कर्म विभाग नहीं है, भावविभाग भी है।[1] श्रद्धा, भक्ति, दया, क्षमा आदि उदात्त वृत्तियों के नियमित अनुष्ठान और अभ्यास के लिए भी वे समाज में छोटी बड़ी श्रेणियों का विधान आवश्यक समझते थे। इन भावों के लिए आलम्बन ढूँढना एकदम व्यक्ति के ऊपर ही नहीं छोड़ा गया था। इनके आलम्बनों की प्रतिष्ठा समाज ने कर दी थी। समाज में बहुत ऐसे अनुन्नत अन्तःकरण के प्राणी होते हैं, जो इन आलम्बनों को नहीं चुन सकते। अतः उन्हें स्थूल रूप से यह बता दिया गया कि अमुक वर्ग यह कार्य करता है, अतः यह तुम्हारी दया का पात्र है; अमुक वर्ग इस कार्य के लिये नियत है, अतः यह तुम्हारी श्रद्धा का पात्र है। यदि उच्च वर्ग का कोई मनुष्य अपने धर्म से च्युत है तो उसकी विगर्हणा; उसके शासन और उसके सुधार का भार राज्य के या उसके वर्ग के ऊपर है निम्न वर्ग के लोगों के पर नहीं। अतः लोकमर्यादा की दृष्टि से निम्न वर्ग के लोगों का धर्म यही है कि उसपर श्रद्धा का भाव रखे; न रख सकें तो कम से कम प्रकट करते रहें। इसे गोस्वामी का 'सोशल डिसिप्लिन' समझिये।[2] इसी भाव से उन्होंने प्रसिद्ध नीतिज्ञ और लोकव्यस्थापक चाणक्य का यह वचन है-

पतितोऽपि द्विज श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः।[3]

अनुवाद करके रख दिया है

पुजिय बिप्र सील गुन हीना। सूद्रा न गुन गन ग्यान प्रबीना।[4]

जिसे कुछ लोग उनका जातीय पक्षपात समझते हैं। जातीय पक्षपात से उस विरक्त महात्मा को क्या मतलब हो सकता है-

लोग कहें पोचु सो न सोचु न सँकोचु मेरे,

ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चाहत हैं।[5]

काकभुशुंडि की जन्मान्तरवाली कथा द्वारा गोस्वामी ने प्रकट कर दिया है कि लोकमर्यादा और शिष्टता के उल्लंघन को वे कितना बुरा समझते थे। काकभुशुंडि अपने शूद्र जन्म की बात कहते हैं[1]-

---

[1] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४४।
[2] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४५।
[3] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४५।
[4] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४५।
[5] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४५।

एक बार हरि मन्दिर जपत रहेउँ सिव नाम॥

गुरु आएउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥

गुरु दयालु नहिं कछु कहेउ उर न रोष लवलेस॥

अति अघ गुरु अपमानता सहि नहिं सके महेस॥

मन्दिर माँझ भई नभ बानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी॥

जद्यपि तब गुरु के नहिं क्रोधा। अति कृपाल उर सम्यक बोधा॥

तदपि साप हठि देइहउँ तोहीं। नीति बिरोध सुहाइ न मोंहीं।

जौ नहिं दंड करौं सठ तोरा। भ्रष्ट होइ स्रुति मारग मोरा॥[2]

श्रुति प्रतिपादित लोकनीति और समाज के सुख का विधान करने वाली शिष्टता के ऐसे भारी समर्थक होकर वे अशिष्ट सम्प्रदायों को उच्छृंखलता, बड़ों के प्रति उनकी अवज्ञा चुपचाप कैसे देख सकते थे।[3]

ब्राह्मण और शूद्र, छोटे और बड़े के बीच कैसा व्यवहार वे उचित समझते थे, यह चित्रकूट में वशिष्ट और निषाद के मिलने में दिखिये—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥

रामसखा ऋषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥[4]

केवट अपनी छोटाई के विचार से वशिष्ट ऐसे ऋषीश्वर को दूर ही से प्रणाम करता है, पर ऋषि अपने हृदय की उच्चता का परिचय देकर उसे बार-बार गले लगाते हैं। वह हटता जाता है, वह उसे बरबस भेंटते हैं। उस उच्चता से किस नीच को द्वेष हो सकता है? यह उच्चता किसे खलने वाली हो सकती है[5]?

काकभुशुंडि वाले मामले में शिव जी ने शाप देकर लोकमत की रक्षा की और काकभुशुंडि के गुरु ने कुछ न कहकर साधुमत का अनुसरण किया। साधुमत का अनुसरण व्यक्तिगत साधन है, लोकमत लोक शासन के लिये है। इन दोनों का सामञ्जस्य गोस्वामी जी की धर्मभावना के

---

[1] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४५।
[2] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४५।
[3] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४५।
[4] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४६।
[5] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४६।

भीतर है। चित्रकूट में भरत की ओर से वशिष्ट जी जब सभा में प्रस्ताव करने उठते हैं, तब राम से कहते हैं[1]-

भरत विनय सादर सुनिय करिय बिचार बहोरि।

करब साधुमत, लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥[2]

गोस्वामी अपने राम या ईश्वर को भी लोकमत के वशीभूत कहते हैं-

लोक एक भाँति को, त्रिलोकनाथ लोकबस,

आपनो न सोच, स्वामी सोच ही सुखात हौं।[3]

जबकि दुनियाँ एक मुँह से तुलसी को बुरा कह रही है तब उन्हें अपनाने का विचार करके राम बड़े असमंजस में पड़ेगे। तुलसी के राम स्वेच्छाचारी शासक नहीं; वे लोक के वशीभूत हैं क्योंकि लोक भी वास्तव में उन्हीं का व्यक्त विस्तार है।[4]

अबतक जो कुछ भी कहा गया उससे गोस्वामी व्यक्तिवाद के विरोधी और लोकवाद के समर्थक से लगते हैं। व्यक्तिवाद के विरुद्ध ध्वनि स्थान स्थान पर सुनाई पड़ती है; जैसे

(क) मारग सोइ जा कहुँ जो भावा।[5]

(ख) स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार।[6]

पर उनके लोकवाद की भी मर्यादा है। उनका लोकवाद वह लोकवाद नहीं है जिनका अकांड तांडव रूस में हो रहा है। वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हरण नहीं चाहते जिसमें व्यक्ति इच्छानुसार हाथ पैर भी नहीं हिला सके, अपने श्रम, शक्ति और गुण का अपने लिये कोई फल ही न देख सके। वे व्यक्ति के आचरण का इतना ही प्रतिबन्ध चाहते हैं जितने से दूसरों के जीवनमार्ग में बाधा न पड़े और हृदय की उदात्त वृत्तियों के साथ लौकिक सम्बन्धों का सामंजस्य बना रहे।[7] राज-प्रजा, उच्च-नीच, धनी-दरिद्र, सबल-निर्बल, शास्य-शासक, मूर्ख-पंडित, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र इत्यादि भेदों के कारण जो अनेकरूपात्मक सम्बन्ध प्रतिष्ठित हैं, उनके निर्वाह के अनुकूल मन (भाव), वचन और कर्म की व्यवस्था ही उनका

[1] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४६।
[2] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४६।
[3] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४६।
[4] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४६।
[5] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४६।
[6] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४६।
[7] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४६।

लक्ष्य है, क्योंकि इन सम्बन्धों के सम्यक् निर्वाह से ही वे सबका कल्याण मानते हैं। इन सम्बन्धों की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति प्राधान्य वाद के वे अवश्य विरोधी हैं।[1]

उन पर स्त्रियों के ऊपर महापातक लगाया जाता है; पर यह अपराध उन्होंने अपने विरति की पुष्टि के लिये किया है। उसे उनका वैरागीपन समझना चाहिये। सब रूपों में स्त्रियों की निन्दा उन्होंने नहीं की है। केवल प्रमदा या कामिनी के रूप में, दाम्पत्य रति के आलम्बन के रूप में, की है- माता, पुत्री, भगिनी, आदि के रूप में नहीं।[2]

इससे सिद्ध है कि स्त्री जाति के प्रति उन्हें कोई द्वेष नहीं था। अतः उक्त रूप में स्त्रियों की जो निन्दा उन्होंने की है, वह अधिकतर तो अपने ऐसे और विरक्तों के वैराग्य को दृढ़ करने के लिये, और कुछ लोक के अत्यन्त आसक्ति को कम करने के विचार से। उन्होंने प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों के लिये कुछ न कुछ कहा है। उनकी कुछ बातें तो विरक्त साधुओं के लिये हैं, कुछ साधरण गृहस्थों के लिए, कुछ विद्वानों और पंडितों के लिये।[3]

सिद्धान्त और अर्थवाद का भेद न समझने के कारण ही गोस्वामी की बहुत सी उक्तियों के लेकर लोग परस्पर विरोध आदि दिखाया करते हैं। वे प्रसंग विशेष में कवि के भीतर उद्देश्य की खोज न करके केवल शब्दार्थ ग्रहण करके तर्कवितर्क करते हैं। जैसे एक स्थान पर वे कहते हैं[4]-

सठ सुधरहि सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥[5]

फिर दूसरे स्थान पर कहते हैं-

नीच निचाई नहिं तजैं जो पावैं सतसंग।[6]

इनमें से प्रथम उक्ति सत्संग की महिमा हृदयंगम करने के लिये की गयी है और दूसरी उक्ति सठ या नीच की भीषणता दिखाने के लिये। एक का उद्देश्य है सत्संग की स्तुति तथा दूसरी का दुर्जन निन्दा। अतः ये दोनों सिद्धान्त रूप में नहीं हैं, अर्थवाद के रूप में हैं। ये पूर्ण सत्य नहीं है आंशिक सत्य है, जिसका उल्लेख कवि, उपदेशक आदि प्रभाव उत्पन्न करने के लिये

[1] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४७।
[2] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४७।
[3] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४७।
[4] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४८।
[5] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४८।
[6] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४८।

करते हैं। काव्य का उद्देश्य शुद्ध विवेचन द्वारा सिद्धान्त निरूपण नहीं होता, रसोत्पादन या भावसंचार होता है। बुद्धि की क्रिया की कविजन आंशिक सहायता ही लेते हैं।[1]

अब रहे शूद्र! समाज चाहे किसी ढंग का हो, उसमें छोटे काम करने वाले तथा अपनी स्थिति के अनुसार अल्प विद्या, शील और शक्ति रखने वाले कुछ न कुछ रहेंगे ही। ऊँची स्थिति वालों के लिये जिस प्रकार इन छोटी स्थिति के लोगों की रक्षा और सहायता करना तथा उनके साथ कोमल व्यवहार करना आवश्यक है, उसी प्रकार इन छोटी स्थिति वालों के लिये बड़ी स्थिति वालों के प्रति आदर और सम्मान प्रदर्शित करना भी। नीची श्रेणी के लोग अहंकार से उन्मत्त होकर ऊँची श्रेणी के लोगों का अपमान करने को उद्यत हों, तो व्यवहारिक दृष्टि से उच्चता किसी काम के नहीं रह जाये। विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम, शील और वैभव यदि अकारण अपमान से कुछ अधिक रक्षा न कर सकें तो उनका सामाजिक मूल्य कुछ भी नहीं।[2] ऊँची नीची श्रेणियाँ समाज में बराबर थीं और बराबर रहेंगी। अतः शूद्र शब्द को नीची श्रेणी के मनुष्य का-कुल, शील, विद्या, बुद्धि, शक्ति आदि सब में अत्यन्त न्यून का-बोधक मानना चाहिये। इतनी न्यूनताओं को अलग अलग न लिखकर वर्ण विभाग के आधार पर उन सबके लिये एक शब्द का व्यवहार कर दिया गया है। इस बात को मनुष्य जातियों का अनुसंधान करने वाले आधुनिक लेखकों ने भी स्वीकार किया है कि वन्य और असभ्य जातियाँ उन्हीं का आदर सम्मान करती हैं जो उनमें भय उत्पन्न कर सकते हैं। यही दशा गँवारों की है। इस बात को गोस्वामी जी को अपने चौपाई में कहा है[3]-

ढोल, गँवार, शूद्र, पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी॥[4]

जिससे कुछ लोग इतना चिढ़ते हैं । चिढ़ने का कारण है, 'ताड़न' शब्द जो ढ़ोल शब्द के योग में आलंकारिक चमत्कार उत्पन्न करने के लिए लाया है। 'स्त्री' का समावेश भी सुरुचिविरुद्ध लगता है, पर वैरागी समझकर उनकी बात का बुरा न मानना चाहिये।[5]

4.3.2 शरणागति

शरणागति भक्तिविशेष है। कुछ मायने में शरणागति भक्ति से विलक्षण है जैसे- शरणागति जीवन में एक बार ही की जाती है जबकि भक्ति प्रतिदिन और जीवन पर्यन्त की जाती है। शरणागत का शाब्दिक अर्थ है- 'शरण में आया हुआ'। किन्तु आध्यात्मिक सन्दर्भ में शरणागत

[1] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४८।
[2] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४८।
[3] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४९।
[4] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४९।
[5] गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४९।

का अर्थ- 'ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण से है'।[1] भगवान् को उनकी कृपा के बिना नहीं जाना जा सकता है। शरणागति प्रभुकृपा का एक साधन है[2] शरणागति भक्ति की सर्वोच्च अवस्था है।

उपनिषद् में भगवान् को 'शरणागत वत्सल' कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि भगवान् अपने शरण में आये हुये भक्त से उतना ही प्यार करते हैं तथा उतना ही पालन-पोषण करते हैं जितना कि एक माँ-बाप अपनी सन्तान से करते हैं। तुलसीदास लिखते हैं-

सखा नीति तुम नीक बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी।

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥

सरनागत कहँ जो तजहिं निज अनहित अनुमानि।

ते नर पामर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि॥[3]

वैष्णव धर्म के आचार्यों ने शरणागति को छः भागों में विभाजित किया है- १. अनुकूल का संकल्प, २. प्रतिकूल का त्याग, ३. गोमृत्ववरण, ४. रक्षा का विश्वास, ५. आत्मनिक्षेप और ६. कार्पण्य।[4] शरणागति के स्वरूप का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ पर केवल उनका उदाहरण प्रस्तुत किया जायेगा।

(i) अनुकूल का संकल्प

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।

स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं।[5]

(ii) प्रतिकूल का त्याग

जानकी जीवन की बलि जैहौं।

श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहों॥[6]

---

[1] तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६२)॥

[2] तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६२)॥

[3] रामचरितमानस सुन्दरकाण्ड दोहा संख्या ४५।

[4] अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोमृत्ववरणं तथा। २८।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥२९॥
(अहिर्बुध्न्यसंहिता ३७।२८२,९)॥
उपरोक्त श्लोक ब्रह्माण्डपुराण (३/४१/७६-७७) में भी उपलब्ध होता है।

[5] विनयपत्रिका- १०५।

[6] विनयपत्रिका- १०४।

(iii) गोसृत्ववरण

तू दयाल, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंजहारी॥

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।

तात मात सखा गुरु तू सब बिधि हितु मेरो।[1]

(iv) रक्षा का विश्वास

सब दिन सब लायक भव गायक रघुनायक गुन ग्राम की।

बैठे नाम कामतरु तर डर कौन घोर घन घाम को॥[2]

(v) कार्पण्य

तुम तजि हौं कासौं कहौं और को हितू मेरे।

दीन बंधु! सेवक सखा! आरत अनाथ पर सहज छोहु केहि केरे॥[3]

(vi) आत्मनिक्षेप

सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप ताप माया।

निसिबासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया॥[4]

उपरोक्त अङ्गो को शरणागति की आधारशिला कहा जाता है। उपरोक्त पद्धति से आप अपने चेतना में व्याप्त ईश्वर की शरण में जा सकते हैं। प्रभु की शरण प्राप्त करने के लिये साधक में श्रद्धा और विश्वास का होना आवश्यक है। माया जाल को पार करने का एकमात्र उपाय शरणागति है। शिव पार्वती से हनुमान् के सम्बन्ध में कहते हैं-

हनूमान समान बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार-बार प्रभु निज मुख गाई॥[5]

---

[1] विनयपत्रिका- ७९।
[2] विनयपत्रिका- १५५।
[3] विनयपत्रिका- २७३।
[4] विनयपत्रिका- १३८।
[5] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ७३।

4.3.3 नवधा भक्ति

तुलसीदास के अनुसार नवधाभक्ति है- १.संतों का संसर्ग, २.हरिकथा में अनुराग, ३.गुरुसेवा, ४.हरिगुणगान, ५.दृढ़ विश्वासपूर्वक राम नाम का जाप, ६.सज्जनों के धर्म में निरंतर निरत रहना अर्थात् दम, शील और विविध प्रकार के कर्मों से वैराग्य, ७.संसार को राममय देखना और संतो को राम से भी अधिक समझना, ८.जो कुछ मिले उसी में संतोष करना और परदोष-दर्शन से पृथक् रहना, ९.निष्कपट होकर सबसे सरल व्यवहार करना और राम के भरोसे रहकर हृदय में हर्ष और दैन्य का अनुभव न करना। अरण्यकाण्ड में राम शबरी से कहते हैं-

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानौं एक भगति कर नाता॥

भगतिहीन नर सोहै कैसा। बिनु जल बारिद देखिय जैसा॥

नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥

प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।

चौथि भगति मम गुन गन करै कपट तजि गान॥[1]

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजनु सो बेद प्रकासा॥

छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥

सातवं सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥

आठवं जथा लाम संतोष। सपनेहु नहिं देखै पर दोषा॥

नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥[2]

इन नौ में से यदि एक भी किसी के पास है, तो वह भगवान् का अतिशय प्रेमपात्र होता है। भगवान् के दर्शनों का फल परम अनुपम है। जीव इससे अपने सहज स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। अरण्यकाण्ड में राम शबरी से कहते हैं-

नव महं एकहु जिनके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥

---

[1] रामचरितमानस अरण्यकाण्ड ६३।

[2] रामचरितमानस अरण्यकाण्ड ६४।

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे।[1]

मुख्य रूप से भक्ति के दो भेद हैं- पहला साधनभक्ति और दूसरा साध्यभक्ति। साधनभक्ति को अपराभक्ति 'गौणी' और साध्यभक्ति को पराभक्ति भी कहते हैं। साधनभक्ति से साध्यभक्ति की प्राप्ति होती है।[2] नवधाभक्ति अपराभक्ति में आती है अर्थात् नवधाभक्ति को अपराभक्ति के अन्तर्गत रखा जाता है। आर्तादि भक्तत्रय नवधाभक्ति का अभ्यास करते हैं।

पुराणों में नौ प्रकार की भक्ति बतायी गयी है।[3] जिसे नवधाभक्ति कहते हैं। नवधाभक्ति अर्थात् भक्ति नौ लक्षणों वाली है।[4] नवधाभक्ति के नौ रूप हैं- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।[5] नवधाभक्ति का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ पर केवल उनका उदाहरण प्रस्तुत किया जायेगा-

(i) श्रवण

रामचरित जो सुनत अघाहीं। रस विसेष जाना तिन नाहीं॥

जीवन मुक्त महा मुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरन्तर तेऊ॥

भवसागर चह पार जो पावा। रामकथा ता कहं दृढ़ नावा॥[6]

(ii) कीर्तन

कलिजुग जोग न जग्य न ज्ञाना। एक अधार राम गुन गाना॥

सब भरोस तजि जो भजि रामहिं। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं॥

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रकट कलि माहीं॥[7]

(iii) स्मरण

---

[1] रामचरितमानस अरण्यकाण्ड ६४।

[2] मामुपेत्य पुनर्जन्मः दुःखालयमशाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-८/१५)॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५४)॥
इदं परमं गुह्यमं मद्भक्तेष्वभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/६८)॥

[3] नवविधश्चैव पुराणादिषु (भक्तिमीमांसा-१/२/३)।

[4] इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ (भागवतपुराण-६/५/२४)॥

[5] श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (भागवतपुराण-७/५/२३)॥
श्रीमद्भागवत पुराण में प्रह्लाद जी ने कहा है- 'भगवान् विष्णु के नाम, रूप, गुण और प्रभाव आदि का श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान् की चरणसेवा, पूजन और वन्दन एवं भगवान् में दासभाव, सखाभाव और अपने को समर्पण कर देना- यह नौ प्रकार की भक्ति है।

[6] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ७७।

[7] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड १६४।

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

बिबसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अध दहहीं॥[1]

(iv) पादसेवन

बिचरहि अवनि अवनीस चरन सरोज मन मधुकर किये।[2]

(v) अर्चन

तुमहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा॥

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जिंमाय देहिं बहु दाना॥[3]

(vi) वन्दन

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी॥[4]

(vii) दास्य

हनूमान समान बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार-बार प्रभु निज मुख गाई॥[5]

(viii) सख्य

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहं बेरे॥

मम हित लागि जनम इन हारे। भरतहु ते मोंहि अधिक पियारे॥[6]

(ix) आत्मनिवेदन

रामचन्द्र रघुनायक तुमसों हौं बिनती केहि भांति करौ।

---

[1] रामचरितमानस बालकाण्ड १४३।
[2] विनयपत्रिका १३५।
[3] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १३०।
[4] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १३०।
[5] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ७३।
[6] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड १८।

अघ अनेक अवलोकि आपने, अनघ नाम अनुमानि डरौं॥[1]

4.3.4 भक्ति के साधन

अब प्रश्न यह है कि भक्ति साध्य है या साधन? भक्ति अपने अङ्ग साधनों की साध्य है[2] अर्थात् भक्ति के अङ्ग अनुष्ठानीय होने के कारण भक्ति के साधन कहे जाते हैं। भक्ति मुक्ति (मोक्ष) का साधन है[3] अर्थात् भक्ति का साध्य मुक्ति (मोक्ष) है।

भक्ति के अङ्ग भक्ति-भावना को सुदृढ़ करने के साधन हैं जो अनिवार्य हैं। भक्ति सीढ़ियों में अन्तिम सीढ़ी है तथा भक्ति के अंग, अन्य प्रारम्भिक सीढ़ियाँ हैं। भक्तिवेदान्त के अनुसार भक्ति अन्तिम सोपान है जिस पर आरूढ़ होकर जीव प्रभु को प्राप्त करता है। भक्तिवेदान्त के आचार्य भक्त के समस्त व्यवहारों का साध्य भगवद्भक्ति को मानते हैं।

तुलसीदास के अनुसार भक्ति के अङ्ग साधन हैं- भगवत्कृपा, गुरुकृपा, सत्संग, ज्ञान, कर्म, तप, वैराग्य, श्रद्धा-विश्वास, प्रेम, रामकृपा।[4] तुलसीदास के अनुसार भक्ति-प्राप्ति का सबसे सुगम साधन सत्संग है-

---

[1] विनयपत्रिका १४१।

[2] श्रीमद्भागवत पुराण (३/२९/१५ से लेकर १९ तक) , नारदभक्तिसूत्र (३४ से ५० तक तथा ६१, ६२, ६३, ६४, ७४, ७६, ७८ और ७९), शाण्डिल्यभक्तिसूत्र (१८, २१, २६, ४५, ४९, ५९, ६४, ६५, ७४, ८३, ८५ और ९६) में भक्ति के अङ्गों का वर्णन किया गया है। भक्तिरसामृतसिन्धु (१/९) में उत्तम भक्ति के अङ्गों की चर्चा की गयी है।

[3] 'मोक्ष कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।' (विवेकचूड़ामणि-३२)। श्रीमद्भागवतपुराण (४/२०/२१) और श्रीमद्भगवद्गीता (११/४८, ५३ और ५४) में भक्ति को भगवत्प्राप्ति का उपाय बताया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण (११/४/१) के अनुसार भक्ति ही भगवत्प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।

[4] सत्संग

सतसंगति मुद मंगलमूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥ (रामचरितमानस, बालकाण्ड-८)॥ जनेसु सन्त अनन्त समाना। (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-१७८)॥ संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं। (विनयपत्रिका-५४)।

ज्ञान

द्वैत बुद्धि बिनु क्रोध किमि द्वैत कि बिनु अज्ञान। (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-१८७)। भक्तिहीन ज्ञान भगवान् को प्रिय नहीं है- सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू। कर्णधार बिनु जिमि जलयानू॥ (रामचरितमानस, अयोकाण्ड-२७८)॥

कर्म

हरिहिं समरपे बिनु सतकर्मा। (रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड-३९)।

वैराग्य

अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटै राम करहु जौ दाया॥ (रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्डका.-२४)॥

श्रद्धा-विश्वास

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-१३८)।

भक्ति स्वतंत्र सकल गुनखानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥

पुण्यपुञ्ज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

पुण्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥[1]

वह सोपान जिस पर चढ़कर भगवान् के दर्शन होते हैं, प्रेम ही है- **'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किये जोग जप ज्ञान बिरागा॥'**[2] विनपत्रिका २०३ में निम्नांकित साधनों का वर्णन किया गया है-

१.अभिमान छोड़कर गुरुचरणों की सेवा करना, २.प्रेमभाव, ३. अद्वैत मत, ४.त्रिगुणातीत स्थिति, ५.अन्तःकरण चतुष्टय, पंचतत्त्वों के पंच गुण (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) तथा षडवर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य) का परित्याग, ६. सप्त-धातु निर्मित शरीर को क्षणभंगुर समझकर परोपकार में संलग्न रहना, ७.प्रभु को अष्टधा प्रकृति से अलग समझना, ८.आत्मज्ञान, ९.इन्द्रिय-संयम, १०.मन-दामन, ११.दान, १२.जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति में निरन्तर भगवद्भजन में निरत रहना, १३.चतुर्दश भुवनों में प्रभु की व्याप्ति का अनुभव, १४.प्रेमाभक्ति में मग्न होकर हरि की आनन्दमयी लीला तथा इस रस का आस्वाद लेना। इन साधनों में संख्या ३, ४, ७ और ८ ज्ञानपरक है, संख्या १, ५, ६, ९, १० और ११ कर्मपरक तथा संख्या २, १२, १३ और १४ भावपरक हैं।

श्रद्धा धर्म का मूल है और तीन प्रकार की है- सात्त्विकी, राजस और तामस। भक्ति के क्षेत्र में सात्त्विकी श्रद्धा ही फलवती होती है। (उत्तरकाण्ड ९८)।

प्रेम

जप तप ब्रत मख सम दम दाना। बिरति बिवेक जोग बिज्ञाना॥

सबकर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ खेमा॥ (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-१४८)॥

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किये जोग जप ज्ञान बिरागा॥ (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-८६)॥

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा॥ (रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड-१३८)॥

परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूर। जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरपूर॥ (विनयपत्रिका-२०३)॥

स्वारथ परमारथ रहित, सीता राम सनेहु। तुलसी सो फल चारि को, फल हमार मत एहु॥ (दोहावली-६०)॥

परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा। परनिन्दा सम अघ न गरीसा॥ (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-२०८)॥

[1] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ६८।
[2] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ८६।

भक्ति साधन या साध्य द्विविध रूप वाली है। ज्ञान, वैराग्यादि साधनों द्वारा यह साध्य बनती है और भगवत्प्राप्ति के लिये यह अन्तिम साधनरूप है। इन दो रूपों के अतिरिक्त भक्ति का एक तीसरा रूप भी है, जिसमें भक्ति स्वयमेव साधन तथा साध्यरूपा है। भक्ति के लिये यह सिद्धान्त भी तुलसी को मान्य है। मोक्षसुख की निरन्तरता हरिभक्ति द्वारा साध्य होती है। भगवद्भाजन के बिना मोक्ष द्वारा प्राप्त सुख अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता। ऐसा विचार करके भगवद्भक्त मुक्ति का भी तिरस्कार करके भक्ति-भाव में ही लीन रहना चाहता है।

गीता के षोडश अध्याय में जिस दैवी तथा आसुरी सम्पदा का वर्णन है, वही मानस के अरण्यकाण्ड में वर्णित माया का द्विविध रूप है। दैवी सम्पदा विद्या है तथा आसुरी सम्पदा अविद्या। एक जीव को भव सागर से पार करने वाली है, तो दूसरी भव-पाशों में आबद्ध करने वाली है- '**एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥**' (अरण्य.-२७)॥ गीता-(९/१२/१३)।

4.3.5 भक्त

भक्ति-भावना के तीन आधार स्तम्भ हैं- पहला भक्ति, दूसरा भक्त और तीसरा भज्य। भजन-क्रिया को भक्ति कहते हैं। भक्ति एक क्रिया है जिसका साध्य ईश्वर है और आश्रय जीव है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि भक्ति विषय, आश्रय और सम्बन्ध रूपी अंशत्रय की अपेक्षा रखती है। जहाँ ईश्वर विषय है और जीव आश्रय है। ईश्वर और जीव दोनों की भजन (उपासना/भावना) के साथ प्रपत्ति सम्बन्ध है।

इस अध्याय में अबतक भक्ति और उसके अङ्गोपाङ्गों का विस्तृत विश्लेषण किया गया और अब भक्ति के द्वितीय स्तम्भ (भक्त) का विवेचन किया जायेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता[1] के समान तुलसी ने भी बालकाण्ड दोहा ३८ में चार प्रकार के भक्त माने हैं- आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी।[2] तुलसी की सम्मति में चारों प्रकार के भक्त पुण्यात्मा, पापहीन और उदार होते हैं। चारों को नाम का आधार रहता है, पर ज्ञानी भक्त प्रभु को सबसे अधिक प्रिय है।

निर्गुण का उपासक ज्ञानी मोक्ष पाता है, पर सगुणोपासक मोक्ष नहीं चाहते। राम उनको अपनी भक्ति देते हैं- 'सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहं राम भगति निज देहीं॥'[3]

[1] श्रीमद्भगवद्गीता- (७/१६)।
[2] रामचरितमानस बालकाण्ड दोहा ३८।
[3] रामचरितमानस लंकाकाण्ड १३८।

जो प्रभु के प्यारे हैं, जिन्हें राम अपना समझते हैं, ऐसे पुण्यवान् व्यक्ति संसार में बहुत थोड़े हैं।[1] राम सदैव अपने भक्त की रुचि रखते हैं- 'राम सदा सेवक रुचि राखी।[2] वे भक्त की भक्ति के वशीभूत हो जाते हैं- रघुपति भगत-भगतिबस अहहीं।[3] दास्य भक्ति के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हनुमान् हैं। शिव पार्वती से उनके सम्बन्ध में कहते हैं-

हनुमान् सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी।

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार-बार प्रभु निज मुख गाई॥[4]

वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचने पर जब राम ऋषि से अपने रहने के स्थान के लिये पूछने लगे, तो वाल्मीकि ने जो उत्तर दिया, उसमें भक्तों के लक्षण का अच्छा समावेश है। वाल्मीकि कहते हैं-

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी॥

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिनके मन माहीं॥

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा।

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जिमाइ देहिं बहु दाना॥

तुम्ह तें अधिक गुरुहि जिय जानी। सकल भाव सेवहिं सनमानी॥

सब करु मागहिं एक फलु राम चरन रति देहु॥[5]

भक्त के लिये निष्कपट होना परम आवश्यक है- निरमल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥[6] उमा सन्त कै इहै बड़ाई। मन्द करत जो करै भलाई॥[7] छल-छिद्रों से रहित मन ही निर्मल होता है। ऐसे निर्मल, धर्मशील भक्तों के पास सुख-सम्पत्ति बिना बुलाये ही आती है- जिमि सरिता सागर महं जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥ तिमि सुख सम्पति

[1] तिन्ह सम पुन्यपुंज जग थोरे। जिनहिं राम जानत करि मोरे॥ (रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड-२७५)॥
[2] रामचरितमानस अयोकाण्ड २२०।
[3] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड २६६।
[4] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ७३।
[5] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १३०।
[6] रामचरितमानस सुन्दरकाण्ड ४६।
[7] रामचरितमानस सुन्दरकाण्ड ४३।

बिनहिं बुलाए। धरमसील पहिं जाहिं सुभाए॥[1] राम विभीषण से अपने स्वभाव की बात कहते हुए भक्त की विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार करते हैं-

सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुसुंडी सम्भु गिरिजाऊ॥

जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही।।

तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना॥

जननी जनक बन्धु सुत दारा। तनु धन भवन सुहृद परिवारा॥

सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बांध बटि डोरी॥

समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष शोक भय नहिं मन माहीं॥

अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे॥[2]

अर्थात् जो मानव माता, पिता, बन्धु, पत्नी, पुत्र, शरीर, धन, सुहृद, परिवार आदि सबकी ममता को छोड़कर मेरे चरणों में अपना मन लगा देता है, जो इच्छारहित, हर्ष, शोक, भय आदि से पराङ्मुख और समदर्शी है, वह चर एवं अचर सबसे द्रोह करके भी यदि भयभीत होकर मेरे शरण में आ जाता है, तो वह मेरे हृदय में वैसे ही बस जाता है, जैसे लोभी के हृदय में धन।

एकमात्र राम का आश्रय, मन, वचन, कर्म से प्रभु की सेवा करना, जाग्रत, स्वप्नादि सभी अवस्थाओं में एक प्रभु की शरण ग्रहण करना, राम के अतिरिक्त अन्य किसी की भी शरण में न जाना, राम को अपना स्वामी, सखा, पिता, माता तथा गुरु समझना, अनन्य भक्ति के सूचक लक्षण हैं। वाल्मीकि कहते हैं-

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥

जिनके कपट दंभ नहिं माया। तिन्हके हृदय बसहु रघुराया॥

सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंशा गारी॥

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥

तुमहिं छांड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिनके मन माहीं॥[1]

[1] रामचरितमानस बालकाण्ड ३२७।
[2] रामचरितमानस सुन्दरकाण्ड ५०।

सरगु नरकु अपवरगु समाना। जहं तहं देख धरे धनु बाना॥

जाहि न चाहिय कबहुं कछु तुम सन सहज सनेहु।[2]

कागभुशुण्डि के प्रति कहे गये राम के निम्न वचन अनन्य भक्त की प्रभुप्रियता प्रकट करने के लिए पर्याप्त है-

सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सबतें अधिक मनुज मोहि भाए॥

तिन महं द्विज, द्विज महं स्रुतिधारी। तिन महं निगम धरम अनुसारी॥

तिह महं प्रिय बिरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुँ तें अति प्रिय बिज्ञानी॥

तिन्हतें पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥

पुनि-पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥[3]

4.3.6 ईश्वर

भजन-क्रिया का साध्य ईश्वर है। भक्ति-भावना ईश्वर के अस्तित्व पर आश्रित है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने वाला भक्त प्रतिक्षण ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करता है। भक्त के लिये उसका ईश्वर ही उसका सर्वस्व है। वह एक क्षण के लिये भी ईश्वर से अलग नहीं होना चाहता है।[4]

तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। तुलसी को राम का यह सगुण, साकार, कोशललेश रूप ही अधिक प्रिय था। लंकाकाण्ड के अन्त में वे इन्द्र के मुख से कहलाते हैं-

कोउ ब्रह्म निरगुन ध्याव, अव्यक्त जेहि श्रुति गाव।

मोंहि भाव कोशल मूप, श्रीराम सगुन स्वरूप।[5]

तुलसीदास अपने राम को निर्गुण एवं सगुण, निराकार तथा साकार दोनों रूप प्रदान करते हैं। अतः उनके राम एक ओर चिदानन्द स्वरूप वाले हैं तो दूसरी ओर नरदेहधारी भी। इन

---

[1] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १३१।

[2] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १३२।

[3] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड १३१।

[4] भक्त भक्तिभावना में लीन रहता है। क्योंकि ईश्वर ही भक्त के लिये प्राण, जीवन एवं आधार हैं।
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१०/९)॥
'जीवनं सर्वभूतेषु।' (श्रीमद्भगवद्गीता-७/९)।

[5] रामचरितमानस लंकाकाण्ड १३९।

दोनों से पृथक् उनका एक तीसरा रूप भी है, जिसमें यह निखिल ब्रह्माण्ड ही उनका शरीर समझा गया है। तीनों ही रूपों में वे अनन्तसौन्दर्य सम्पन्न है। निम्नलिखित अर्द्धालियों में इन तीनों रूपों का उल्लेख है-

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानद परधामा॥

व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेइ धरि देह चरित कुत नाना॥[1]

तुलसी निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म को ही लीला में सगुण तथा साकार बना देते हैं। निराकार रूप में भी राम लीला करते हैं। यथा-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु कर्म करै बिधि नाना॥

आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेखा॥

असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाय नहिं बरनी॥[2]

परन्तु उनकी नयन-गोचरी लीला रचना तथा अवतारों में ही प्रकट होती है। जगत् की उत्पत्ति और प्रलय भगवान् की भृकुटि का विलास मात्र है, लीला का खेल है। तुलसी लिखते हैं-

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ विस्व पुनि पावइ नासा।[3]

नट इव कपट चरित करि नाना। सदा स्वतन्त्र राम भगवाना।[4]

तुलसी को यही सगुण लीला प्रिय है, निर्गुण नहीं। काकभुशुण्डि के मुख से तुलसी कहलाते हैं-

निरगुन मति नहिं मोहिं सुहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥[5]

लीला में राम और उनकी शक्ति, पुरुष और उनकी प्रकृति, ब्रह्म और उनकी माया दोनों एक साथ रहते हैं। तुलसी राम की ही भाँति आदिशक्ति सीता के भृकुटिविलास मात्र से भी सृष्टि

[1] रामचरितमानस बालकाण्ड २३।
[2] रामचरितमानस बालकाण्ड १४२।
[3] रामचरितमानस लंकाकाण्ड ५३।
[4] रामचरितमानस लंकाकाण्ड ९४।
[5] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड १८२।

की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं।[1] लीला का कोइ हेतु नहीं है। प्रभु स्वयं लीलामय हैं। उनकी लीला लीला के लिए है- **'प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी।'**[2]

सृष्टि की रचना इसी लीला का एक भाग है। रचना के समय- **'सम्भु बिरञ्चि बिस्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना**[3]॥ प्रभु के अंशों से अनेका ब्रह्मा, विष्णु और शिव उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के द्वारा भगवान् सृष्टि की रचना, पालन और संहार कराते हैं। ये तीनों ही क्रियाएँ प्रभु की लीलाएँ हैं। परमेश्वर अपने सेवकों और भक्तों के कारण लीला शरीर भी धारण करते हैं। यथा **'भगत् हेतु लीला तनु गहई'**[4]। **'सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद'**[5]।

राम अथवा विष्णु के अवतारों का उल्लेख भी तुलसी ने कई बार किया है। मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम रूप में भगवान् विष्णु ही प्रकट हुये थे।[6] विनयपत्रिका के पद ५२ में वृष्णिवंशी राधारमण कृष्ण, शुद्धबोध बुद्ध, विष्णुयश-पुत्र कल्कि, बलि को छलने वाले वटुरूपधारी वामन, प्रह्लाद रक्षक नृसिंह तथा अन्य अवतारों का वर्णन है। तुलसी को राम का धनुर्धर रूप अतीव प्रिय है।[7] अवतारों के कई कारण हैं, यथा देव-रक्षा, भक्त-हित, भूमि-भार-हरण तथा वर्णाश्रम-मर्यादा की स्थापना। इस लीला का उद्देश्य दुष्टों का दमन और सज्जनों की रक्षा करना है-

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥

करहिं अनीति जाहिं नहीं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।

तब तब धरि प्रभु बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहिं सुरन, राखहिं निज श्रुति सेतु।

जग विस्तारहिं बिसद जस, राम जनम कर हेतु॥[8]

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

निज इच्छा निरमित तनु माया-गुन-गोपार॥[9]

---

[1] रामचरितमानस बालकाण्ड १७६।
[2] रामचरितमानस बालकाण्ड १६८।
[3] रामचरितमानस बालकाण्ड १७२।
[4] रामचरितमानस बालकाण्ड १७२।
[5] रामचरितमानस बालकाण्ड २३०।
[6] रामचरितमानस लंकाकाण्डा १३६।
[7] (विनयपत्रिका २४८) तथा (रामचरितमानस बालकाण्ड १४८)।
[8] रामचरितमानस बालकाण्ड १४८।
[9] रामचरितमानस बालकाण्ड २२४।

समस्त साधनाओं में प्रभु सच्चिदानन्द स्वरूप ही माने गये हैं। यही उनका वास्तविक रूप है, जिसे परमधाम में स्थित अरूप और अनाम भी कहा जाता है। इस रूप में वे वाणी, मन और बुद्धि से अतर्क्य हैं।[1] हिरण्यगर्भ अथवा जेष्ठ ब्रह्म बनकर वे ही विश्व या ब्रह्माण्ड का विराट् रूप धारण करते हैं। यह उनका प्रथम अवतार है। विश्वरूप के अतिरिक्त नारादि देहों में अवतरित होकर उनका तीसरा रूप प्रत्यक्ष होता है। उनका पर अथवा वास्तविक रूप अगम्य है। विश्वरूप की लीलाएँ मुनियों को हृदयगम्य हो जाती हैं। नरादि की लीलाएँ ऊपर से तो सबको प्रत्यक्ष होती हैं, परन्तु उनके रहस्यों को अवगत करने वाले कुछ थोड़े से ही साधक होते हैं। वाल्मीकि इस तथ्य का उद्घाटन इस प्रकार करते हैं-

राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।

अविगत अलख अपार, नेति-नेति नित निगम कह॥

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।

नर तन धरेउ संत सुर काजा। करहु कहहु जस प्राकृत राजा॥[2]

चिदानन्दमय होने के कारण ही वे सहज प्रकाशस्वरूप हैं- सहज प्रकाश रूप भगवाना[3]। अथर्ववेद- (१०/७/३२,३३,३४ तथा १०/८/१) में प्रभु के विराट स्वरूप का वर्णन किया गया है, जिसमें पृथ्वी प्रभु का पैर है. अन्तरिक्ष उदर है, द्यौ मूर्धा है, सूर्य-चन्द्र नेत्र हैं, अग्नि मुख है, वायु प्राणापान है, दिशायें श्रोत्र हैं, भूत-भविष्यत् तथा वर्तमान सबका वह अधिष्ठाता है। प्रभु के इसी विराट् या जेष्ठ ब्रह्म के रूप का वर्णन करती हुई मन्दोदरी रामचरितमानस (लं-२०.२१) में रावण से कहती है।

तुलसीदास ने भगवान् के नामों में राम, ब्रह्म, सच्चिदानन्द, पुरुष, परमात्मा, रघुकुलमणि, रघुवीर, रघुपति, रघुराज, कोशलपति, भगवान्, इन्दिरापति, इन्दिरारमन, रमारमन, रमेश, रमानाथ, रमानिवास, सीतावर, श्रीरमण, श्रीपति, अवधेश, सुरेश, त्रिभुवनधनी, श्रीरंग, हरि, वासुदेव, प्रभुनाथ, उरुगाय, अनन्त, विष्णु, जिष्णु, माधव, विन्दुमाधव, केशव, नन्दकुमार, गोविन्द, जानकीनाथ, जानकी-जीवन का अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है परन्तु उन्होंने सब नामों में राम नाम को ही प्रधानता दी है। प्रभु के नाम अनेक हैं, इसे वे स्वीकार करते हैं, पर उनकी रुचि राम नाम की ओर है-

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका।

---

[1] रामचरितमानस बालकाण्ड १४८।

[2] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १२७, १२८।

[3] रामचरितमानस बालकाण्ड १४०।

राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिक॥

राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।

अपर नाम उडुगन बिमल, बसहु भगत उर ब्योम॥[1]

भगवान् में जो अनन्त सौन्दर्य है, वह उनके अनन्त गुणों के कारण है। अपने परमधाम में वे अगुण, अखण्ड, अनन्त, अनादि, अनूप, अनीह, अनामय, अज, अलख, अविनाशी, निराकार, निर्मोह, निरंजन, नित्य तथा एकरस है। जीव की दृष्टि से वे न्याये, कर्मफलदाता, नाना योनियों में घूमने वाले, ज्ञानी तथा गुणधाम हैं। जड़ जगत् की दृष्टि से प्रकाशक, स्रष्टा, पालक संहारक और सर्वव्यापक हैं। भक्त की दृष्टि से राम परम उदार, दानी, पतितपावन, उत्थापितों के स्थापक, अशरणशरण और करुण के कोष हैं।

अगुन अखंड अनन्त अनादी। जेहि चिन्तहिं परमारथवादी॥

नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा॥[2]

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा॥

सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥[3]

व्यापक ब्रह्म अलख अविनासी। चिदानन्द निरगुन गुनरासी॥

महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस अहई॥[4]

सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा॥

व्यापक व्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ शक्ति भगवंता॥

अगुन अद्रभ गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥

निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुखसंदोहा॥

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी॥[5]

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्वरहित सब उर पुर बासी॥[1]

---

[1] रामचरितमानस अरण्यकाण्ड ७४।
[2] रामचरितमानस बालकाण्ड १७२।
[3] रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड ९४।
[4] रामचरितमानस बालकाण्ड ३७४।
[5] रामचरितमानस उत्तरकाण्ड १०४।

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रकट परावर नाथ।[2]

सहज प्रकास रूप भगवाना।[3]

ब्रह्म का जीव और जगत् के साथ सम्बन्ध वारि और वीचियों के सम्बन्ध की भाँति है, ऐसा उन्हिंने मानस के उत्तरकाण्ड, दोहा १६८ में लिखा है। द्वैत बुद्धि उनकी सम्मति में अज्ञान का परिणाम है। जबतक जीव अज्ञान ग्रसित है, तब तक वह ईश्वर के साथ ऐक्य का अनुभव नहीं कर सकता।

[1] रामचरितमानस बालकाण्ड १४४।
[2] रामचरितमानस बालकाण्ड १४०।
[3] रामचरितमानस बालकाण्ड १४०।

पञ्चम अध्याय

वेदान्त और भारतीय समाज

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥[1]

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥[2]

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥[3]

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥[4]

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥[5]

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥[6]

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता- (२/४६)।
[2] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३२)।
[3] श्रीमद्भगवद्गीता- (७/१९)।
[4] श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६६)।
[5] श्रीमद्भगवद्गीता- (१८/६५)।
[6] श्रीमद्भगवद्गीता- (९/३४)।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥[1]

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥[2]

दक्षिण भारत में भक्ति के विकास में शैव नायनारों का महनीय योगदान है। नायनारों की संख्या ६३ बताई जाती है जिसमें अय्यार, तिरूज्ञान, सम्बन्दर, सुन्दरमूर्ति तथा माणिक्कवाचगर प्रसिद्ध नायनार सन्त थे। इनके भक्ति गीत 'देवारम' में संग्रहीत हैं। जिनका संकलन 'नम्बि-आण्डार-नम्बि' ने किया था। नायनार भक्ति को ही भगवद्प्राप्ति का एकमात्र साधन मानते थे। उन्होंने जातीय भेदभाव रहित सभी जनों के लिये शिवभक्ति के द्वार खोल दिए। चालुक्य, चोल, राष्ट्रकूट तथा पल्लव राजाओं ने शिवभक्ति को उन्नतावस्था में पहुँचाया। इन राजवंशों के कई राजाओं ने शैवधर्म को राजधर्म घोषित किया एवं विभिन्न मन्दिरों का निर्माण करवाया। राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम ने एलोरा का प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर एवं राजेन्द्र चोल ने प्रसिद्ध वृहदीश्वर मन्दिर बनवाया।

नायनारों की तरह वैष्णव सन्त आलवारों ने भी भक्ति विकास में योगदान दिया। आलवार का अर्थ होता है जिसने ईश्वर का सहज साक्षात् ज्ञान प्राप्त किया हो और ईश्वर के ध्यान में मग्न रहता हो।[3] आलवारों की संख्या १२ थी- १.भूतयोगी, २.सरोयोगी, ३.महायोगी, ४.भक्तिसार, ५.शठकोप, ६.मधुरकवि, ७.कुलशेखर, ८.विष्णुचित्, ९.आण्डाल, १०.भक्तांघ्रिरेणु, ११.योगीवाह तथा १२.परकाल।[4]

इनका समय सातवीं-नवीं शताब्दी माना गया है। इनमें सात ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, दो शूद्र और एक निम्न जाति का था। आलवारों का आठवीं शताब्दी ई. में उत्कर्ष हुआ और वही शताब्दी चोल एवं पाण्ड्य प्रदेशों में वैष्णव सम्प्रदाय तथा शंकर के महान् आन्दोलन का

[1] श्रीमद्भगवद्गीता- (१२/४)।
[2] श्रीमद्भगवद्गीता- (१२/१)।
[3] प्रा. भा. का इति. एवं सं., पृ. ७२०।
[4] भा. द. का इति., पृ. ५५।

समय रहा है। आलवारों के समय तक संस्कृत जनसामान्य की भाषा नहीं रही, वह केवल विद्वत्वर्ग तक सीमित हो गई। अतः आलवारों ने जनता का प्रतिनिधित्व करते हुए तमिल भाषा को अपने गीतों एवं भक्ति उपदेशों का माध्यम बनाया। इनके गीतों का संग्रह 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' में हुआ जिसका संकलन नाथमुनि ने किया था। इनका भक्तिमार्ग अतीव सरल तथा हृदयपक्ष की प्रधानता वाला था। आराध्य के अर्चावतार के समक्ष अनुनय, विनय, नाम, जप, सङ्कीर्तन, पुष्पार्पण तथा मन्त्रादि से उसकी उपासना से ही भगवत्साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है। भक्ति ही मुक्ति का हेतु है। भक्ति द्वारा ही भगवान् का कृपापात्र बना जा सकता है, अन्य साधन व्यर्थ हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी इन आलवारों की अवतारी पुरुष के रूप में उपासना करते हैं। विभिन्न आलवारों को विष्णु के गदा, चक्रादि का अवतार माना गया है। व्रज के गोपालों, गोपियों, यशोदा आदि से तादात्म्य स्थापित कर भक्ति द्वारा कृष्ण की उपासना, सर्वप्रथम आलवार सन्तों में ही दृष्टिगोचर होती है। जिस प्रकार नाटक का प्रेक्षक अपने देश-काल तथा दृश्यगत नटादि अनुकर्त्ता के माध्यम से अनुकार्यादि के देश-काल को विस्मृत कर उसके और उसके सम्बन्धियों (बन्धु-बान्धवों) के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है और विगलित वेद्यान्तर होकर हर्षित एवं शोकाकुल होता है उसी प्रकार भक्त भी ईश्वर का सघन चिन्तन मनन करते हुये अपना देशकाल एवं स्थिति विस्मृत कर देता है और ईश्वर के प्रति उस अनुरक्तावस्था अथवा तादात्म्यावस्था में एक नगण्य सा भी संकेत उसे राधा अथवा गोपी के काल्पनिक लोक में पहुँचा देता है और वह अति उत्तेजित और कामुक प्रेमी के सभी भावों का अनुभव करने लगता है।[1]

नवीं शताब्दी ई. में आचार्य शङ्कर का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने जैन-बौद्ध मतों का खण्डन कर अद्वैत सिद्धन्त की स्थापना की। यद्यपि उन्होंने ब्रह्म को परम सत्य माना है और जीव का ब्रह्म के अंश रूप में ऐक्य प्रतिपादित किया है तथापि वे ईश्वर की व्यावहारिक सत्ता को नकार न

[1] भा. द. का इति., पृ. ५५।

सके। उन्होंने भक्ति को ध्यान रूपी मानसिक क्रिया माना है तथा स्वस्वरूपानुसन्धान अथवा स्वात्मतत्त्वानुसन्धान स्वरूपा कहा है।[1]

आलवारों के पश्चात् आचार्य परम्परा में भक्ति का विकास हुआ। नाथमुनि, यमुनाचार्य, रामानुज, मध्वादि ने मध्व की भक्ति को दार्शनिक आधार प्रदान किया। वस्तुतः रामानुजाचार्य आदि आचार्यों ने शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद-मायावाद का मुखर विरोध किया और द्वैतवाद की स्थापना कर सगुणोपासना के विकास में योगदान दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने वेद प्रतिपादित ज्ञान एवं कर्म का भक्ति के साथ समन्वय किया।[2]

आचार्य परम्परा में रामानुज का विशिष्ट स्थान है। वे यमुनाचार्य के शिष्य थे। उन्होंने चित् (जीव) और अचित् (प्रकृति) से विशिष्ट ब्रह्म को सत्ता मानकर विशिष्टाद्वैत की स्थापना की। रामानुज के अनुसार ईश्वर का स्नेह पूर्वक अनुध्यान भक्ति कहलाता है।[3] यह प्रेमपूर्वक ध्यान प्रपत्ति और ध्रुवास्मृति अर्थात् भगवान् का तैलधारावत् अविच्छिन्न स्मरण होना चाहिये।[4] सत्कर्म और बौद्धिक ज्ञान का समुच्चय भक्ति प्राप्ति में सहायक होता है। सत्कर्म चित्त को शुद्ध करते हैं तथा ज्ञान चित्, अचित् एवं ईश्वर स्वरूप का प्रकाशक है। भक्ति की प्राप्ति में भगवत्कृपा ही हेतु है। रामानुज ने भक्ति के दो भेद माने हैं- साधन भक्ति, साध्यभक्ति। साधन भक्ति के अन्तर्गत नवधा भक्ति आती है। विभिन्न साधनों से अभ्यास करते-करते जब भगवत्साक्षात्कार होता है तो भगवान् और भक्त की सायुज्यावस्था पराभक्ति का रूप धारण कर लेती है।

द्वैतवाद के प्रवर्तक मध्वाचार्य ने ईश्वर-जीव, जीव-जीव, ईश्वर-जड़, जीव-जड़, जड़-जड़ के मध्य नित्य द्वैत स्वीकार किया है। अतः इस मत को द्वैत के नाम से जाना जाता है। मध्वाचार्य का द्वैत पर इतना आग्रह है कि उन्होंने मुक्तावस्था में भी जीवों के मध्य ज्ञान एवं आनन्द के तारतम्य से भेद माना है। मध्व के अनुसार मोक्ष भगवत्कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है

[1] स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते॥ स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः। वि.चू. ३/३२।
[2] त. और हि. का भ. सा., पृ. २५८।
[3] स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः। गी. भा.।
[4] साक्षात्काररूपा ध्रुवा स्मृतिरेव भक्तिशब्देनाभिधीयते। श्री. भा.।

और इस भगवत्कृपा का साधन भक्ति है। उनके अनुसार भगवान् के प्रति ज्ञानपूर्वक अनन्य स्नेह ही भक्ति है।[1] रामानुज की तरह मध्वाचार्य भी भक्ति को ध्यानरूपा मानते हैं और ध्यान को उन्होंने भगवदितर विषयों के प्रति तिरस्कारपूर्वक भगवान् का अखण्ड स्मरण कहा है।[2]

निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत मत की स्थापना की। इनके मतानुसार कारण और कार्य में भेद भी है अभेद भी। जिस प्रकार मृत्तिका (कारण) घट से तात्त्विक दृष्टि से एक है तथा नाम, रूप, आकार, प्रयोजनादि की दृष्टि से पृथक् है उसी प्रकार कारण ब्रह्म और कार्य जगत् में भेदाभेद है। निम्बार्काचार्य प्रथम वैष्णव थे जिन्होंने मधुराभक्ति की दार्शनिक दृष्टिकोण से व्याख्या की। उन्होंने राधाकृष्ण की युगलोपासना का प्रतिपादन किया तथा श्रीराधा को पराश्री या पराह्लादिनी शक्ति के रूप में कृष्ण के वामाङ्ग में प्रतिष्ठित किया।[3] निम्बार्क के इस मत पर शिव के अर्धनारीश्वर स्वरूप का प्रभाव पड़ा है। भक्ति का चरमोत्कर्ष प्रेमाभक्ति में, प्रेमाभक्ति का गोपीभाव में और गोपीभाव की चरम परिणति राधाभाव में है। ईश्वर की दैन्यभाव से प्रेमविशिष्टा शरणागति ही उत्तमा भक्ति है।[4] इन्होंने भी भगवद्रत्युद्रेक में नवधा भक्ति को कारण माना है। निम्बार्क के मतानुसार भक्तिमार्ग की उपासना के पूर्ण होने के तीन सोपान हैं- प्रथम सोपान में जगत् का ब्रह्मरूप में दर्शन, द्वितीय जीव की ब्रह्मरूप में भावना, तृतीय सोपान पर जीव और जगत् से अतीव सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वाश्रय एवं आनन्दमय ब्रहम ध्यान आता है।[5] निम्बार्क सम्प्रदाय प्रेमलक्षणा रागात्मिका पराभक्ति ही भक्ति साधना का चरम लक्ष्य है।

शुद्धाद्वैत प्रतिष्ठापक आचार्य वल्लभ के मत में शुद्ध ब्रहम ही अद्वैत तत्त्व है। इनका ब्रह्म मायासम्बन्धरहित होने से शुद्ध तथा सजातीय (जीव), विजातीय (जड़ पदार्थ) एवं स्वगत (अन्तर्यामी) भेदरहित होने के कारण अद्वैत है। इनका मत पुष्टिमार्ग भी कहा जाता है।

---

[1] ज्ञानपूर्वपरस्नेहो नित्यो भक्तिरितीर्यते। महाभा. तात्प. १/१७०।

[2] ध्यानं चेतरतिरस्कारपूर्वकं भगवद्विषयाऽखण्डस्मृतिः। मध्वसि., पृ. १३९।

[3] भा. द. –आलो. एवं अनु., पृ. ३२४।

[4] कृपाऽस्य दैन्यादि युजि प्रजायते यथा भवेत् प्रेम विशेषलक्षणा।

भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिका परा॥ दश., श्लो., ८।

[5] सं. सा. में भ. र., पृ., १५८।

पुष्टिमार्ग में भक्ति से तात्पर्य है ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेमपूर्वक शरणागति। इस प्रकार की शरणागति भगवदनुग्रह से ही प्राप्य है पुष्टिमार्ग का अर्थ ही होता है भगवदनुग्रह।[1] 'तत्त्वार्थदीप' में भक्ति का लक्षण देते हुए कहा गया है 'भगवान् के माहात्म्य ज्ञानपूर्वक उनके प्रति सुदृढ़ सर्वातिशायी प्रेम ही भक्ति है और केवल उसी से मुक्ति सम्भव है।'[2] वल्लभाचार्य ने सायुज्य भक्ति के स्थान पर भगवान् की रसमय सेवा को भक्ति की परमगति मानी है।

अचिन्त्यभेदाभेद सम्प्रदाय या गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु थे। वैसे तो उन्होंने किसी मठ या सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की किन्तु श्रीकृष्ण के प्रति इनकी तन्मयता, विह्वलता तथा उन्मत्त प्रकृष्ट भक्ति देखकर लोग स्वयं ही उनके अनुयायी बन गये। उनके अनुयायियों में रूपगोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रघुनाथदास, रघुनाथभट्ट, गोपालभट्ट और जीवगोस्वामी- इन षड्गोस्वामियों का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने चैतन्यीय भक्ति को शास्त्रीय आधार प्रदान किया। इस मत में भक्ति ही भगवत्साक्षात्कार का एकमात्र साधन है। भुक्ति एवं मुक्ति सभी प्रकार की इच्छाओं से शून्य कृष्ण का अनुकूल अनुशीलन भक्ति है।[3] यह भक्ति तीन प्रकार की होती है- साधन, भाव तथा प्रेमा। इन तीनों में उत्तरोत्तर की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। प्रेमा भक्ति भी स्नेह, मान, प्रणयादि दशाओं को पार करती हुई महाभावदशा में पर्यवसित हो जाती है। इस महाभावावस्था को वही भक्त प्राप्त कर सकते हैं, जो कृष्ण की परकीया भाव से आराधना करते हों।

इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त वैखानस एवं शाक्त तथा महाराष्ट्र के बारकारी सम्प्रदाय का भी भक्ति के विकास में विशेष योगदान है।

उपर्युक्त साम्प्रदायिक आचार्यों के अतिरिक्त भक्तिशास्त्रीय आचार्यों ने भी भक्ति के स्वरूप पर विचार किया है, जिसमें शाण्डिल्य एवं नारद प्रमुख हैं। शाण्डिल्य के अनुसार ईश्वर में परम

---

[1] पोषणं तदनुग्रहः, भाग. २/१०/४।

[2] माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।

स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा॥ भा. द. –आलो. एवं अनु., पृ. ३३०।

[3] अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥ भ. रसा. सि., १/१/११।।

अनुरक्ति भक्ति है।[1] शाण्डिल्य ने भक्ति को कर्म, ज्ञान एवं योग से श्रेष्ठ माना है।[2] उन्होंने भक्ति को दो प्रकार का माना है- साध्यभक्ति तथा साधनभक्ति। साध्यभक्ति ईश्वर के प्रति सर्वोत्कृष्ट अनुराग है एवं भजन, कीर्तन आदि नव प्रकार की भक्ति साधन भक्ति है। साधन भक्ति पराभक्ति की प्राप्ति में हेतुरूपा है।[3] नारद मत में भक्ति परमप्रेमरूपा तथा अमृतस्वरूपा है।[4] भगवान् के प्रति समस्त आचारों को समर्पित कर देना तथा ईश्वर की क्षणमात्र विस्मृति होने पर अत्यन्त व्याकुल हो जाना ही भक्ति है।[5] इस भक्ति के प्राप्त्यनन्तर भक्त को किसी अन्य पदार्थ की कामना नहीं रह जाती।[6] नारद के अनुसार ऐसी भक्ति व्रज की गोपियों में प्राप्य है।[7] नारदमुनि ने भी भक्ति को कर्म, ज्ञान एवं योग से श्रेष्ठ कहा है क्योंकि भक्ति स्वयंफलरूपा अर्थात् साध्यरूपा होती है, ज्ञानादि तो साधन मात्र नहीं हैं। यद्यपि परमप्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा साध्यभक्ति एक ही है किन्तु आसक्ति भेद से वह ११ प्रकार की हो जाती है- गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति तन्मयासक्ति तथा परमविरहासक्ति।[8] नारदमुनि ने साधना भक्ति को त्रिगुणों पर आधारित सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक तथा आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी भक्त भेद के आधार पर तीन प्रकार का कहा है। इस प्रकार दोनों ही आचार्यों ने साध्य भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुये साधना भक्ति को भी स्थान दिया है।

शाण्डिल्य एवं नारद के अतिरिक्त बोपदेव, उत्पलदेव, श्रीधरस्वामी, लक्ष्मीधर आदि आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में भक्ति की चर्चा की है। इनमें से उत्पलदेव शैवाचार्य थे। इन्होंने अपनी शिवस्तोत्रावली के प्रथम एवं पञ्चदश स्तोत्र में भक्ति की महिमा का गान किया है। साथ ही भक्ति को आनन्दरूप कहते हुये भक्ति के लिये रस शब्द का भी प्रयोग किया है। बोपदेव,

---

[1] सा परानुरक्तिरीश्वरे। शा. सू. १/१/२।
[2] तदेव कर्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्यशब्दात्। वही, १/१/२४।
[3] भक्त्या भजनोपसंहाराद्दौण्या परायै तद्हेतुत्वात्। वही, २/२२/१।
[4] सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च। ना. भ. सू., २,३।
[5] नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति। वही, सू. १९।
[6] वही, सू. ५।
[7] यथा व्रजगोपिकानाम्। वही, सू. २१।
[8] वही, सू. ८२।

श्रीधरस्वामी तथा लक्ष्मीधर ने भक्ति की चर्चा के साथ ही भक्ति की रसरूपता का प्रतिपादन किया है।

भारतीय परम्परा को ज्ञान परम्परा कहते हैं। भारत की ज्ञान परम्परा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की मजबूत आधारशिला है। भारतीय ज्ञान परम्परा दुनियाँ की सबसे प्राचीन ज्ञान परम्परा है। भारतीय ज्ञान परम्परा दुनियाँ की सबसे सशक्त ज्ञान परम्परा है। भारतीय ज्ञान परम्परा भारत की पहचान है।

ज्ञान मनुष्य के जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करता है इन्हीं अर्थों में भारतीय परम्परा को ज्ञान परम्परा कहते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल वेद है। वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग उपनिषद् है। उपनिषद् को वैदिक साहित्य का ज्ञानकाण्ड कहते हैं। उपनिषदें वेदान्त की पर्याय हैं अर्थात् वेदान्त ज्ञान की बात करता है।

उसी ज्ञान में वेदान्त की सार्थकता है, उसी में वेदान्त की प्रासंगिकता है, उसी में वेदान्त की उपयोगिता है। वेदान्त कहता है कि **'ईशावास्य इदं सर्वं यत्किञ्च जागत्यां जगत्। त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद धनं॥'**[1] अर्थात् वेदान्त त्याग परम्परा की बात करता है। त्याग का दूसरा नाम संन्यास है।

संन्यास को ज्ञान भी कहते हैं। वेदान्त ऐसी संन्यास परम्परा की बात करता है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे की खुशी के लिये अपनी खुशियों का त्याग कर देता है। हमारे ऋषि, महर्षि और महात्माओं ने लोगों के कल्याण के लिये अपना पूरा का पूरा जीवन ही लगा दिया। ऋषियों ने लोगों की भलाई के लिये पूरा जीवन तपस्यारत रहे।

कहने का तात्पर्य यह है कि वेदान्त व्यक्तिगत खुशी को प्राथमिकता नहीं देता है बल्कि सामूहिक या सार्वभौमिक खुशी को प्राथमिकता देता है। वेदान्त तात्कालिक सुख की बात नहीं करता है बल्कि अनन्त सुख की बात करता है।

[1] ईशावास्योपनिषद- १।

वेदान्त ऐसी दृष्टि की बात करता है जो समतामूलक समाज की मूल भावना पर आधारित हो, जो समाज की समग्रता की बात करती हो। वेदान्त कहता है- **'मयि सर्वमिदं प्रोक्तं यथा सूत्रे मणिगणा'**[1]। कहने का अर्थ यह है कि वेदान्त एकत्व की बात करता है। जब हम संसार के सभी प्राणियों में एकत्व की दृष्टि रखेंगे तो हमारे अन्दर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रहेगा।

इस एकत्व की दृष्टि से हम ऐसे समाज का निर्माण कर सकते हैं जिसमें न तो जातिगत भेदभाव हो, न तो क्षेत्रगत भेदभाव हो, न तो भाषागत भेदभाव हो..... और न ही लिङ्ग आधारित भेदभाव हो। एकत्व की दृष्टि के आधार पर हम एक ऐसे समाज की कल्पना कर सकते हैं जिसमें ऊँच-नीच, जाति-पाँति, अमीर-गरीब आदि का भेदभाव न हो। यही वेदान्त की सार्थकता है, उपयोगिता है, प्रासंगिकता है।

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[2] की व्याख्या करते हुये आदि शङ्कराचार्य कहते हैं कि **'यद् रूपेण यन्निश्चितं तद् यदि न व्यभिचरति तत् सत्'**, **'यद् रूपेण यन्निश्चितं तद् यदि व्यभिचरति तत् मिथ्या'**। तो दो चीजें हमारे यहाँ ऋषि ने हमें दी है- एक कूटस्थ नित्य है, एक ध्रुव सत्य है, जो ध्रुव सत्य त्रिकालाबाधित है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। जिसको उन्होंने देव, ब्रह्म या आत्मा जो भी है, उन्होंने नामकरण किया है। लेकिन उस अधिष्ठान पर जो एक जागतिक प्रक्रिया है वह परिवर्तनशील है। जितनी आकृतियाँ हैं वो परिवर्तनशील हैं। यह एक दूसरी स्थिति है। परिवर्तनशील जो भी सत्ता है उसका एक दार्शनिक शब्द है 'मिथ्या'।

इसीलिये इस बात को हमें ध्यान रखना है कि जब आचार्य शङ्कर मिथ्या कहते हैं तो उसका मतलब ये नहीं है कि आकाश कुसुम के समान है। जब वो मिथ्या कहते हैं तो संसार की उस स्थिति को कहते हैं जो परिवर्तनशील है, वह आकृति परक है। आकृति का जो अधिष्ठान है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

[1] श्रीमद्भगवद्गीता- ।
[2] तैत्तिरीयोपनिषद्- ।

इसीलिये वे स्वर्ण और स्वर्ण से बने हुये आभूषणों की बात करते हुये कहते हैं कि हमारी बुद्धि यदि स्वर्ण परक होती है तो एकत्व से युक्त हो जाती है। यदि हमारी बुद्धि आभूषण की आकृतियों से युक्त होती है तो अनेकता को महत्त्व देने लगती है।

जैसा कि समाज में हम देखते हैं कि इसी आकृति को ध्यान में रखकर तरह-तरह के धर्म बने हैं, तरह-तरह के समाज बने हैं, इसी में वर्णाश्रम व्यवस्था है, इसी में जाति-प्रथा आ गयी है। जब हम इसको वास्तविक मानकर चलते हैं तो फिर वहाँ पर समस्या आने लगती है। इसके कारण समाज में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ आयी हैं।

उनका ये कहना है कि जिसको आधार बनाकर आप इन सारी विसंगतियों को आगे बढ़ा रहे हैं वह वस्तुतः परिवर्तनशील है स्थिति है हमारी बुद्धि ऐसी नहीं होनी चाहिये क्योंकि ऋषि ने ऐसा नहीं कहा है। ऋषि से मतलब है ऐसे व्यक्ति जिन्होंने इस ब्रह्माण्ड की वास्तविकता का अनुभव किया है। अनुभव करने के कारण वे ऋषि हैं। यह इनका निश्चित मत है कि **'एकमेवाद्वितीयं'**[1] या **'एकोऽहं बहुस्यामः'** कोई तार्किक परिणति नहीं है बल्कि ये ऋषि का अनुभव है- **'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणै निगूढा'**[2]। इस आधार पर ये बात आयी है।

अब यदि ये बात सही है कि समाज में विसंगति है तो उस समय (शङ्कराचार्य के समय) के समाज की विसंगतियाँ भी वही थी जो आज के समाज में हैं। उस स्थिति में हमारे पास क्या विकल्प है? हम इन विसंगतियों में रहते हुये किस एकसूत्रता को खोजें जिसके आधार पर हम इन विसंगतियों को दूर कर सकते हैं।

हमारे पास ऐसे कई उदाहरण हैं कि जिस व्यक्ति ने उस मूलतत्त्व को देखा है और उस मूलतत्त्व के आधार पर समाज को देखा है। तो उसकी दृष्टि बदल जाती है, उसका व्यवहार बदल जाता है। फिर उसके अन्दर से ऊँच-नीच का भाव समाप्त हो जाता है, उसके अन्दर जाति-प्रथा नहीं रहती, उसके अन्दर वर्ण नहीं रहता। उनका मत है कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-

[1] छान्दोग्योपनिषद्- ६/२/१।
[2] श्वेताश्वतरोपनिषद्- १/३।

शूद्र इत्यादि भी आकृति के आधार पर है। इसीलिये ये अविद्या का परिणाम है। यदि हम इसमें आरुढ़ रहते हैं तो निश्चित रूप से हम अज्ञानी हैं। इसीलिये हमें इसको पार करना पड़ेगा और मूलतत्त्व तक जाना होगा, उसका अन्वेषण करना पड़ेगा, उसका अनुभव करना पड़ेगा।

उपनिषद् को उन्होंने इसलिये आधार बनाया क्योंकि उपनिषद् के अतिरिक्त दुनियाँ में कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिसमें एकत्व की बात हो- **'तज्ज्ञानं प्रसन्नकरं यदि इन्द्रियानां तद् गेयं यद् उपनिषत्सु विनिश्चितार्थं'**। उनका निश्चित मत है कि उपनिषद् ही एक ऐसा साहित्य है जो एकत्व की बात करता है, जो **'नेह नानास्ति किञ्चन'**[1] की बात करता है, जो **'मृतिका इत्येव सत्यं'**[2] की बात करता है, जो **'एकोऽहं बहुस्यामः'** की बात करता है। ऐसे उपनिषद् में जो निहितार्थ है उस आधार पर हम अन्वेषण करें, उस आधार पर हम उस तत्त्व की खोज करें जो कण-कण में व्याप्त है।

जो एक है, जो एक ही अनेक रूप में है और अनेक एक से भिन्न नहीं है। इस दृष्टि से यदि हम अपने व्यक्तित्व को विकसित करते हैं तो समाज की जो भी विषमता है चाहे वह मनुष्य से सम्बन्धित हो या दूसरे जीव-जन्तुओं से सम्बन्धित हो या नदी, पर्वत आदि से सम्बन्धित हो या पर्यावरण की समस्या हो। इन सारी चीजों में समस्या इसलिये है क्योंकि हमने मान लिया है कि भेद वास्तविक है।

'तस्मात् एतस्मात् आत्मनः आकाशो सम्भूतः आकाशात् वायुः वायुरग्निः'[3] इत्यादि के आधार पर हमारे ऋषि ने ये तय किया हुआ है कि सब आत्म-विस्तार है। आत्म-विस्तार तात्त्विक हो या अतात्त्विक हो ये बहस का विषय हो सकता है। आत्म-विस्तार तात्त्विक हो या अतात्त्विक हो परन्तु हम हैं और 'हम हैं' इसी की सुरक्षा हमें करनी है। समाज में समरसता लानी है। समाज में ऊँच-नीचता का भेद समाप्त करना है।

---

[1] विवेकचूड़ामणि- ४६९, कठोपनिषद्- २/१/११ तथा बृहदारण्यकोपनिषद्- ४/४/१९।
[2] छान्दोग्योपनिषद्- ६/१/४।
[3] तैत्तीरीयोपनिषद्- ।

यह तभी सम्भव है जब सब में व्याप्त एक तत्त्व को हम देखें, हम आकृति के आधार पर निर्णय न लें। इस तरह से उन्होंने जो सिद्धान्त स्थापित किया उसके आधार पर बहुत सारे उद्धरण ऐसे मिलेंगे जो आपको ये कहने के लिये पर्याप्त है कि उन्होंने हर एक कण-कण में, जीव में, मनुष्य में, सब में उस एक तत्त्व को आधार बनाकर के दर्शन स्थापित किया है।

यदि हम भेद को आधार मानकर चलेंगे तो हम कितने भी नियम बना लें, कितने भी कानून बना लें, कुछ भी कर लें लेकिन हम समस्या का समाधान नहीं कर सकते क्योंकि एक तरह से हम समाधान करेंगे तो दूसरी स्थिति खड़ी हो जाती है दूसरी स्थिति से तीसरी स्थिति खड़ी हो जाती है। एक घर में अनेक समस्या है, एक जाति में अनेक समस्या है।

इस सब का एकमात्र जो मूल आधार है वह है कि हम उस एक तत्त्व को देखें जो कि कण-कण में व्याप्त है और उसी को आधार बनाकर हम व्यक्तित्व का आकलन करें, न कि किस धर्म में जन्म लिया है, किस जाति में जन्म लिया है। समाज के लिये प्रभाव डाला और इसी के कारण उस समय के जितने सम्प्रदाय थे वैष्णव थे या शैव थे गाणपत्य थे सौर्य थे या कौमार्य थे उनको बहुत हद तक उन्होंने समन्वित करने का प्रयास किया और उसमें वो सफल भी हुये। बहुत हद तक उन्होंने प्राकृतिक तत्त्वों को एकीकृत करने का प्रयास किया, बहुत हद जीव-जन्तुओं में समत्व भाव लाने का प्रयास किया और बहुत हद तक सफल हुये।

उन्होंने बहुत अच्छी तरह इस बात को रखा कि जब वे मठ बना रहे थे तो उत्तर भारत के लोगों को दक्षिण भेज दिया, जो दक्षिण के लोग थे उनको उत्तर भेज दिया। आज भी पशुपतिनाथ में केरल या कर्नाटक के लोग हैं, आज भी केदारनाथ या बद्रीनाथ में वहाँ के लोग हैं।

तो इस तरह का चिन्तन कि हमें क्षेत्रीयता दूर करनी है। हमें जाति-पाँति को लेकर बात करनी है। 'मनीषापञ्चकम' में कहते हैं कि चाण्डाल हो या ब्राह्मण हो जिसने भी सिद्धि को प्राप्त किया वह मेरा गुरु है। ये मेरा दृढ़ मत है। तो इस तरह से कि जो एक स्तर तक गया

जिसमें वो समत्व आ गया वह सबके लिये प्रणम्य है। और वही समाज को योगदान कर सकता है। और ऐसे ही व्यक्ति हजारों वर्षों हमारे समाज को योगदान किया है।

बीसवीं शताब्दी हो इक्कीसवीं शताब्दी हो जोड़ने वाले लोग जो हैं वो जोड़ने वाले लोग के लिये एक वही तत्त्व है जो आधार बनता है जिसमें कि सबको हम जोड़ लें और यदि हम इसको छोड़ देते हैं और हम केवल ऊपरी आधार पर बात करते हैं तो ये सिर्फ तोड़ने की प्रक्रिया होती है। और वो तोड़ने की प्रक्रिया कहाँ तक जायेगी उसका कोई अन्त नहीं है।

वेदान्त ने समाज पर प्रभाव डाला, आजतक उसका असर है। इस प्रकार के चिन्तन यदि हम अपने युवा वर्ग में लायें तो हम एक भव्य समाज की रचना कर सकते हैं।

निष्कर्ष

वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग को वेदान्त कहते हैं अर्थात् उपनिषदें वेदान्त का पर्याय हैं। **'वेदान्तोनाम उपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च'** इस न्याय के अनुसार प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र) को वेदान्त की संज्ञा दी जाती है। प्रस्थान शब्द का अर्थ है- **'प्रतितिष्ठति ब्रह्मविद्या येषु'** अर्थात् जिनके ऊपर ब्रह्मविद्या आधारित है।

अनेक आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा और अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से वेदान्त का प्रतिपादन किया। वेदान्त के कुल ग्यारह सम्प्रदाय हैं- १.ब्रह्माद्वैतवाद, २.विशिष्टाद्वैतवाद, ३.द्वैतवाद, ४.द्वैताद्वैतवाद, ५.शुद्धाद्वैतवाद, ६.अचिन्त्यभेदाभेद, ७.अविभागाद्वैतवाद, ८.स्वरूपाद्वैतवाद, ९.भेदाभेद, १०.शैवविशिष्टाद्वैत, और ११.वीरशैवविशिष्टाद्वैत।

वेदान्त दर्शन के सम्प्रदायों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- पहला शाङ्करवेदान्त और दूसरा भक्तिवेदान्त। शाङ्करवेदान्त के अन्तर्गत शङ्कराचार्य और उनके अनुयायियों को रखा जाता है तथा भक्तिवेदान्त के अन्तर्गत रामानुज, मध्व, निम्बार्क, आचार्य वल्लभ एवं चैतन्यमहाप्रभु को रखा जाता है।

- शाङ्करवेदान्त के अनुसार मुक्ति का साधन ज्ञान है। भक्तिवेदान्त के अनुसार मुक्ति का साधन भक्ति है। वस्तुतः भक्ति ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा मुक्ति का साधन बनती है।[1]
- शाङ्करवेदान्त के आचार्यों ने निर्गुणभक्ति को पोषित किया। शाङ्करवेदान्त का ब्रह्म निर्गुणब्रह्म है। शाङ्करवेदान्त के स्रोत-ग्रन्थ उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र हैं।
- भक्तिवेदान्त के आचार्यों ने सगुणभक्ति को पोषित किया। भक्तिवेदान्त का ब्रह्म सगुणब्रह्म है। भक्तिवेदान्त के स्रोत-ग्रन्थ उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र और भागवतपुराण हैं।
- आचार्य शङ्कर ने अद्वैत की दृष्टि से भक्ति को पोषित किया। शङ्कराचार्य अव्यक्ततत्त्व की उपासना ज्ञान से करते हैं। शङ्कराचार्य के द्वारा लिखे हुये ग्रन्थों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है- १.भाष्य, २.प्रकरणग्रन्थ और ३.स्तोत्र। स्तोत्र अर्थात् स्तुतिपरक श्लोकबद्ध ग्रन्थ- **'स्तोत्रं कस्य न तुष्टये'**।

[1] भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशतो तदनन्तरम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-१८/५५)॥

- संसार का मूलतत्त्व निर्गुण है, उसी से सृष्टि की रचना हुई है। निर्गुण का अर्थ यह है कि मूलतत्त्व शब्द रहित है, रूप रहित है, रस रहित है, गन्ध रहित है, निराकार है तथा मन और बुद्धि से अतर्क्य है।
- **'एकमेवाद्वितीयम्'** अर्थात् संसार का मूलतत्त्व एक है। जहाँ भी एकत्व का रूप है वह निर्गुण है कहने का अर्थ यह है कि वह एक जहाँ भी है वह निर्गुण है लेकिन जैसे ही वह शक्ति से युक्त होता है सगुण रूप धारण कर लेता है- **'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्'**।
- मूलतत्त्व एक है और निर्गुण है। निर्गुणब्रह्म या निष्क्रियब्रह्म जब आत्मशक्ति से युक्त होता है या उसकी आत्मशक्ति सक्रिय हो जाती है तो वह सगुणब्रह्म हो जाता है।
- **'सर्व शक्ति समन्विता'** अर्थात् शक्ति से सम्पन्न है जो वह सगुणब्रह्म है। 'शक्तिसम्पन्न' से तात्पर्य यह है कि शक्ति का क्रियात्मक रूप होना। जैसे ही शक्ति सक्रिय होती है वह निर्गुण से सगुण बन जाता है। जब उसकी शक्ति क्रियात्मक हो जाती है तो सृष्टि की प्रक्रिया शुरु होती है। फिर आकाशादि सूक्ष्ममहाभूत पञ्चीकरण के रास्ते से होते हुये स्थूल जगत् का निर्माण करते हैं।
- आचार्य शङ्कर के अनुसार मूलतत्त्व निर्गुण है लेकिन वही निर्गुण अपनी शक्ति के द्वारा सगुण हो जाता है और जब शक्ति को समेट लेता है तो फिर से निर्गुण हो जाता है।
- **'एकोऽहं बहुस्याम'** जो एक है वही अपनी शक्ति के द्वारा बहुत हो जाता है और जो बहुत है फिर एक ही होता है। एक का अनेक हो जाना या अनेक का एक रहना, यह भी निर्गुण से सगुण है और सगुण से निर्गुण है।
- वेदान्त कहता है कोई भी देवी-देवता हो उनका वाह्य स्वरूप जो भी हो परन्तु आन्तरिक रूप से हम उनको परम तत्त्व ही मानते है। वही एक तत्त्व है जो सबको जोड़ता है। संसार के सभी रूपों में एकसूत्रता है।
- सगुणब्रह्म से तात्पर्य यह है कि उसकी सत्ता सब में है- **'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति'**। अर्थात् जो मुझे सर्वत्र देखता है और सब कुछ मुझमें देखता है। इस प्रकार का भाव व्यक्ति को अभेद दृष्टि प्रदान करता है।
- **'रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव'** ऐसे ईश्वर की बात कर रहे हैं जो शक्ति से युक्त है। उसकी शक्ति से सबकी रचना हुई है। जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, नदी-पर्वत आदि सब कुछ उसी का रूप है।
- सब में एक तत्त्व है कहने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार मिट्टी से बने बर्तनों में एक सत् तत्त्व मिट्टी है उसी प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि के मूल में एक तत्त्व है। इस प्रकार की दृष्टि की अभिव्यक्ति भक्ति आन्दोलन में हुई।

- वह ब्रह्म जिसको शङ्कराचार्य अद्वैत कहते हैं वही ब्रह्म का निर्गुण रूप है। उसी को लेकर कबीरदास अपना पूरा दर्शन आगे बढ़ाते है। सूरदास के सगुणब्रह्म का मतलब **'सर्वं कृष्णमयं जगत्'**। तुलसीदास के ब्रह्म का मतलब 'परम कारण जिसकी अभिव्यक्ति सभी रूपों में हुई है'।
- **'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति'** अर्थात् एकमात्र परम सत्ता स्वरूप परमेश्वर ही सत् है जिसे नारायण, परमात्मा, विष्णु, कृष्ण, परमेश्वर, वासुदेव और हरि इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। उस परम सत्ता को रामानुज ने विष्णु, नारायण और वासुदेव, मध्व ने राम और कृष्ण, निम्बार्क ने कृष्ण नाम से पुकारा है।
- भजन का नाम भक्ति है। भक्ति एक भजन-क्रिया है जिसका साध्य ईश्वर है और आश्रय जीव है।
- **'भज् सेवायाम्'** धातु से निष्पन्न 'भक्ति' शब्द हिस्से करना, वितरित करना, नियत करना, निर्दिष्ट करना, भाग लेना, ग्रहण करना, आश्रय लेना, समर्पण करना, उपभोग करना, सेवा, आराधना आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।
- 'भक्ति' शब्द 'क्तिन्' प्रत्यय से मिलकर बना है। 'क्तिन्' प्रत्यय तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है- करण, अधिकरण और भाव। करण अर्थ में- 'ईश्वर प्राप्ति की साधक क्रियाओं का वाचक होगा'। अधिकरण अर्थ में- 'उन सभी दशाओं की संज्ञा भक्ति होगी, जिसमें भगवत्भजन किया जाता है'। भाव अर्थ में- '**भजनं भक्तिः** विग्रहानुसार साध्य या प्रेमा भक्ति का वाचक होगा'।
- सामान्य भाषा में भक्ति का अर्थ पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन, उपासना, आराधना से है। परन्तु दार्शनिक दृष्टि से भक्ति का अर्थ 'हृदयतत्त्व के माध्यम से भगवान् का सान्निध्य प्राप्ति और साक्षात्कार करने का प्रयास ही भक्ति है'।
- आचार्य रामानुज के अनुसार **'स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः'** अर्थात् ईश्वर का स्नेह पूर्वक अनुध्यान भक्ति कहलाता है। यह प्रेमपूर्वक ध्यान प्रपत्ति और ध्रुवास्मृति अर्थात् भगवान् का तैलधारावत् अविच्छिन्न स्मरण होना चाहिये।
- आचार्य मध्व के अनुसार **'ज्ञानपूर्वपरस्नेहो नित्यो भक्तिरितीर्यते'** अर्थात् भगवान् के प्रति ज्ञानपूर्वक अनन्य स्नेह ही भक्ति है। भक्ति को ध्यानरूपा मानते हैं और ध्यान को उन्होंने भगवदितर विषयों के प्रति तिरस्कारपूर्वक भगवान् का अखण्ड स्मरण कहा है। भक्ति भगवत्कृपा का साधन है।
- आचार्य निम्बार्क के अनुसार **'कृपाऽस्य दैन्यादि युजि प्रजायते यथा भवेत् प्रेम विशेषलक्षणा। भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिका परा'**।

- आचार्य वल्लभ के अनुसार **'माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः'** अर्थात् 'भगवान् के माहात्म्य ज्ञानपूर्वक उनके प्रति सुदृढ़ सर्वातिशायी प्रेम ही भक्ति है और केवल उसी से मुक्ति सम्भव है। वल्लभ की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति हैं।
- अचिन्त्यभेदाभेद सम्प्रदाय के अनुसार **'अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा'** अर्थात् भुक्ति एवं मुक्ति सभी प्रकार की इच्छाओं से शून्य कृष्ण का अनुकूल अनुशीलन भक्ति है।
- शाण्डिल्यभक्तिसूत्र के अनुसार **'सा परानुरक्तिरीश्वरे'** अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति भक्ति है। भक्ति को दो प्रकार का माना है- साध्यभक्ति तथा साधनभक्ति। साध्यभक्ति ईश्वर के प्रति सर्वोत्कृष्ट अनुराग है एवं भजन, कीर्तन आदि नौ प्रकार की भक्ति साधन भक्ति है। साधन भक्ति पराभक्ति की प्राप्ति में हेतुरूपा है।
- नारदभक्तिसूत्र के अनुसार **'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च'** अर्थात् भक्ति परमप्रेमरूपा तथा अमृतस्वरूपा है। भगवान् के प्रति समस्त आचारों को समर्पित कर देना तथा ईश्वर की क्षणमात्र विस्मृति होने पर अत्यन्त व्याकुल हो जाना ही भक्ति है- **'नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति'**।
- पुराणों में नौ प्रकार की भक्ति बतायी गयी हैं- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।
- भक्ति विषय, आश्रय और सम्बन्ध रूपी अंशत्रय की अपेक्षा रखती है। जहाँ ईश्वर विषय है और जीव आश्रय है। ईश्वर और जीव दोनों की भजन (उपासना/भावना) के साथ प्रपत्ति सम्बन्ध है।
- भगवद्गीता के अनुसार भक्त चार प्रकार के होते हैं- १. आर्तभक्त, २. अर्थार्थीभक्त, ३. जिज्ञासुभक्त और ४. ज्ञानीभक्त।
- मुक्ति प्राप्त करने के चार प्रमुख मार्ग हैं- १. ज्ञानमार्ग, २. कर्ममार्ग, ३. योगमार्ग और ४. भक्तिमार्ग। **'ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना। अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे'**।
- भक्तिमार्ग सबसे सरल है, सुगम है, और सर्वश्रेष्ठ है। भक्तिमार्ग पर चलने के लिये किसी भी प्रकार की योग्यता या पूर्वशर्त की अनिवार्यता नहीं है। भक्तिमार्ग पर चलने के लिये केवल भगवद्भाव का होना आवश्यक है- **'भावग्राही जनार्दनः'**।
- ज्ञानमार्ग पर चलने के लिये साधन-चतुष्टय का होना आवश्यक है। कर्ममार्ग पर चलने के लिये विधि विहित कर्मज्ञान होना आवश्यक है। निष्काम कर्म का आचरण करना पड़ता है। विकलांग व्यक्ति योगासन नहीं कर सकता।

- भगवद्भक्त शूद्र नहीं हो सकता- **'न शूद्रा भगवद्भक्ताः विप्रा भागवतास्मृताः। सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये हि अभक्ता जनार्दने'**। मध्यकालीन भक्ति-साहित्य का सूत्रवाक्य भी यही कहता है- **'जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि का भजै सो हरि का होई'**।
- भक्तिमार्ग सबके लिये समान रूप से उपलब्ध है। किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं है। भक्तिमार्ग में छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, जाति-पाँति, गरीब-अमीर, कमजोर-बलशाली, विकलांग, ज्ञानी-अज्ञानी, महिला-पुरुष आदि का कोई भेदभाव नहीं है।
- शरणागति का तात्पर्य- 'ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण से है'। शरणागति भक्तिविशेष है। कुछ मायने में शरणागति भक्ति से विलक्षण है जैसे- शरणागति जीवन में एक ही बार की जाती है जबकि भक्ति प्रतिदिन और जीवन पर्यन्त की जाती है।
- शरणागति दो तरह की होती है- कपिकिशोरन्याय मार्जारकिशोरन्याय। शरणागति के छः अङ्ग हैं- १. अनुकूल का संकल्प, २. प्रतिकूल का त्याग, ३. गोमृत्ववरण, ४. रक्षा का विश्वास, ५. आत्मनिक्षेप और ६. कार्पण्य।
- भगवान् के सतत् ध्यान, चिन्तन, स्मरण, भगवान् पर अनन्य विश्वास और तत्परायण भजन का नाम उपासना है। वेदान्तसार के अनुसार 'सगुणब्रह्म विषयक मानसिक व्यापार उपासना है'।
- आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति उपासना का पर्याय है। शङ्कराचार्य ने उपासना को भक्ति के अर्थ में माना है। उपासना में जब बुद्धितत्त्व का प्राधान्य हो तो ज्ञानमार्ग (निर्गुण या अव्यक्तोपासना) और जब हृदयतत्त्व का प्राधान्य हो तो भक्तिमार्ग (सगुण या व्यक्तोपासना) कहलाती है।
- श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार उपासना दो प्रकार की होती है- सगुण उपासना और निर्गुण उपासना। **'एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते। ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः'**।
- सम्पूर्ण ऐश्वर्य एवं शक्तियों से युक्त तथा सत्त्वगुणरूप उपाधि वाले परमेश्वर की उपासना (ध्यान) करना सगुण उपासना है। इसमें उपासक अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परमेश्वर की प्रत्यक्ष सेवा करता है- **'एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते'**।
- निर्गुण, निर्विशेष एवं समस्त उपाधियों से रहित अक्षरब्रह्म परमात्मा की उपासना (ध्यान) करना निर्गुण उपासना हैं- **'ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः'**।
- आचार्य शङ्कर के अनुसार मुक्ति प्राप्त करने के दो मार्ग हैं- १. प्रवृत्तिमार्ग और २. निवृत्तिमार्ग। भक्ति ज्ञानकर्मोभयात्मक होने से उभयनिष्ठ है। अपराभक्ति का सम्बन्ध प्रवृत्तिमार्ग से है तथा पराभक्ति का सम्बन्ध निवृत्तिमार्ग से है।
- आर्तादिभक्तत्रय द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति-भावना को अपराभक्ति कहते हैं। ज्ञानीभक्त द्वारा सम्पादित की जाने वाली भक्ति भावना को पराभक्ति कहते हैं।

- आचार्य शङ्कर के अनुसार **'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते'** अपने स्वरूप का अनुसंधान करना जैसे- मैं कौन हूँ? कहाँ से आया? ब्रह्म और आत्मा में क्या सम्बन्ध (अभेद) है? ब्रह्म और आत्मा किस रूप में एक है? इसका अनुभव या इसकी जिज्ञासा करना भी भक्ति है। इस प्रकार के भाव को प्राप्त करने के लिये जो साधन अपनाते हैं वह भक्ति है।
- श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के अनुसार **'भजनं भक्तिः'** अर्थात् भजन का नाम भक्ति है। भक्ति एक भजन-क्रिया है जिसका साध्य ईश्वर है। शङ्कराचार्य कहते हैं- **'यत्-यत् कर्म करोमि तत्-तत् अखिलम् शम्भो तव आराधनम्।'** अर्थात् हम अपने जीवन में जो भी काम करते रहते हैं वह सब आपकी आराधना है।
- शाङ्करवेदान्त के मत में पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक के भेद से सत्ता तीन प्रकार की होती है। ब्रह्म की सत्ता पारमार्थिक होती है। जीव और जगत् की सत्ता व्यावहारिक होती है। शुक्ति में रजत की सत्ता प्रातिभासिक होती है।
- व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो भक्ति-भावना के सम्पादन में कम से कम दो सत्ता का होना स्वाभाविक है। भक्ति जनित द्वैतभाव ब्रह्मसाक्षात्कार के अनन्तर समाप्त हो जाता है।
- आचार्य शङ्कर के अनुसार भक्ति ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा मुक्ति का साधन बनती है- **'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्'**।
- वह ब्रह्म जिसको शङ्कराचार्य अद्वैत कहते हैं वही ब्रह्म का निर्गुण रूप है। उसी को आधार बनाकर कबीरदास अपना पूरा दर्शन आगे बढ़ाते है।
- कबीरदास ने उपनिषद् की पारिभाषिक शब्दावलियों को यथावत उद्धृत किया है। कबीरदास कहते हैं कि **'वेद पुरान कहत जाकी साखी'** अर्थात् कबीरदास अपनी रचनाओं में प्रतिपादित विषयों को प्रमाणित करने के लिये वेद-पुराण को साक्षी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।
- कबीरदास निर्गुणब्रह्म के उपासक थे। उनका उपास्य अरूप, अनाम, अनुपम, सूक्ष्मतत्त्व है। इसे वे राम के नाम से पुकारते हैं। कबीर के राम निर्गुण निराकार परम ब्रह्म हैं।
- कबीर ज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करते हैं परन्तु भक्ति उनके जीवन का प्राण है। कबीर मन-वचन-कर्म से भगवान् का सतत् स्मरण एवं भजन करते हैं- **'भगति भजन हरिनांव है, दूजा दुक्ख अपार। मनसा बाचा क्रमना कबीर सुमिरण सार'**।

- कबीरदास को भगवद्भजन में सुख मिलता है। कबीर के अनुसार भक्ति से मुक्ति मिलती है- **'चरन कंवल चित लाइये, रांम नांम गुण गाइ। कहे कबीर संसा नहीं, भगति मुकति गति पाइ रे'**।
- कबीरदास नारद द्वारा प्रतिपादित प्रेमाभक्ति का प्रतिपादन करते हैं- **'भगति नारदी मगन सरीरा, इहि बिधि भव तिरि कहै कबीरा'** अर्थात् अपने शरीर को नारद द्वारा कथित प्रेमा भक्ति से तन्मय करो और इस प्रकार इस संसार-सागर के पार हो जाओ।
- कबीर की रचनाओं का अधिकतर भाग वैष्णव भक्ति से ही सम्बन्ध रखता है। कबीर लिखते हैं- **'मेरे संगी दोइ जणां, एक वैष्णों एक रांम। वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नांम'**।
- ब्रह्मा, विष्णु और शंकर तीनों देव राम के तीन रूप हैं, तीन मूर्तियाँ हैं- **'तीनि देवौं एक मूरति, करै किसकी सेव'**।
- शरणागति भक्ति की सर्वोच्च अवस्था है। शरणागति का तात्पर्य- 'ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण से है। समर्पणभाव का उदाहरण- **'मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा। तेरा तुझकौं सौंपतां, क्या लागै मेरा'**।
- कबीरदास ने मुक्त-कण्ठ से गुरु का यशोगान किया हैं। सद्गुरु अपने शिष्य को मनुष्य से देवता बना देता है। कबीरदास ने अपने चिन्तन दृष्टि को विकसित करने के लिये गुरु का सहारा लिया। कबीरदास ने अपने गुरु से गूढ़तत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया।
- कबीर मूलतः भक्त थे। कबीर साधु-सन्तों की संगति और ईश्वर के भजन-चिन्तन में लगे रहते थे। गृहस्थ आश्रम में रहते हुये भी कबीरदास ने अपने आपको प्रभु भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचाया और यही सन्देश पूरी दुनिया को दिया।
- आचार्य वल्लभ कहते हैं कि **'सर्वं कृष्णमयं जगत्'** अर्थात् वे जीव-जन्तुओं में, एक-एक पत्ते में, कदम्ब के पेड़ में, पेड़-पौधे में, यमुना आदि सब में कृष्ण को ही देखते हैं। इसी को आधार बनाकर सूरदास ने अपने भक्ति-दर्शन को आगे बढ़ाया।
- आचार्य वल्लभ का आचारपक्ष पुष्टिमार्ग और सिद्धान्तपक्ष शुद्धाद्वैतवाद है। ईश्वर के अनुग्रह को पोषण (पुष्टि) कहा गया है- **'पोषणं तदनुग्रहः'**। भगवान् के इस विशेष अनुग्रह से उत्पन्न होने वाली भक्ति को पुष्टिभक्ति कहा जाता है।
- भगवान् श्रीकृष्ण के अनुग्रह को प्राप्त करने का मार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है। अनुग्रह को प्राप्त करने के लिये उनकी सेवा करनी चाहिये। अपने चित्त को भगवान् से जोड़ना ही सेवा है। अष्टयाम की सेवा को भगवद्-अनुग्रह का मुख्य साधन माना जाता हैं।
- अष्टयाम दर्शन सेवा पहरों में विभक्त है। जिनका क्रम इस प्रकार है- मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या आरती एवं शयन। पुष्टिमार्ग में भक्ति साधन भी है और साध्य भी है।

- सूरदास का सम्बन्ध वल्लभ वेदान्त की परम्परा से है। सूरदास की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है।
- सूरदास आचार्य वल्लभ के शिष्य थे। सूरदास वल्लभ से प्रेरित होकर काव्य रचनायें किया करते थे। सूरसाहित्य के अधिकतर पद गेय हैं। सूरदास के पद लोकगीतों की परम्परा की श्रेष्ठ कड़ी कहे जाते हैं।
- सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्यभक्त थे। सूरदास भजन-कीर्तन के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गायन किया करते थे। 'सूरसागर' लीला-गान का संग्रह है। सूरसागर के 'भ्रमरगीतसार' तथा 'कृष्ण की बाललीला' नामक प्रसंग बहुत महत्त्वपूर्ण है।
- सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का गायन करने में निमग्न रहते थे। अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में सूरदास दास्यभाव से लीला-गायन किया करते थे परन्तु गुरु वल्लभाचार्य से दीक्षा लेने के बाद सख्यभाव वाली लीला-गायन प्रारम्भ कर दिया।
- भगवान् श्रीकृष्ण सूरदास के ब्रह्म, परब्रह्म, परमात्मा या परम रूप हैं। सूरदास वृन्दावन के एक-एक पत्ते में, कदम्ब के पेड़ में, पेड़-पौधे में, यमुना आदि सब में कृष्ण को ही देखते हैं। यही सूरदास का सगुणब्रह्म है।
- तुलसीदास अद्वैत वेदान्त की पद्धति का अनुसरण करते हैं जैसे- रामचरितमानस के मंगलाचरण में रज्जु-सर्प वाले दृष्टान्त को उद्धृत करते हैं। रामचरितमानस में वे पग-पग पर अद्वैत दर्शन को पोषित करते हैं।
- तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। तुलसी को राम का यह सगुण, साकार, कोशललेश रूप ही अधिक प्रिय था- **'कोउ ब्रह्म निरगुन ध्याव, अव्यक्त जेहि श्रुति गाव। मोंहि भाव कोशल मूप, श्रीराम सगुन स्वरूप'**।
- वे राम को निर्गुण-सगुण तथा निराकार-साकार दोनों रूप प्रदान करते हैं। निर्गुण-निराकार रूप में चिदाघन स्वरूप वाले और सगुण-साकार में नरदेहधारी दशरथ पुत्र राम हैं। वस्तुतः तुलसी निर्गुण-निराकार को लीला में सगुण-साकार बना देते हैं।
- तुलसीदास की भक्ति-भावना दास्य भाव की है। प्रभु को अपना स्वामी और अपने आपको प्रभु का दास (सेवक) समझकर परम श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा करना। प्रभु की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित कर देना। भक्त के मन में सेवक का भाव होता है जो उसके अहंकार को नष्ट कर देता है।
- 'तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी। हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥ नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो। मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो॥ ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो, तात-मात, गुर-सखा, तू सब बिधि हितू मेरो॥ तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै। ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरण-सरन पावै'।

- ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं है क्योंकि एक व्यक्ति ज्ञान के आधार पर ईश्वर की आराधना करता है तो एक प्रेम के आधार पर ईश्वर की आराधना करता है। प्रेम और ज्ञान दोनों ही वो मार्ग हैं जो ईश्वर तक ले जाते हैं- **'भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहि भव-सम्भव खेदा'।**
- हृदय में निर्गुण ब्रह्म का ध्यान हो और नेत्रों के सामने सगुण स्वरूप की सुन्दर झाँकी हो। इन दोनों के बीच में रसना पर सुन्दर रामनाम हो। यह दृश्य वैसा ही होगा जैसे स्वर्ण के सम्पुट में ललित रत्न सुशोभित हो- **'हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम। मनहुँ पुरट संपुट लसत लसत तुलसी ललित ललाम'**।
- तुलसीदास के अनुसार नवधाभक्ति है- १.संतों का संसर्ग, २.हरिकथा में अनुराग, ३.गुरुसेवा, ४.हरिगुणगान, ५.दृढ़ विश्वासपूर्वक राम नाम का जाप आदि। **नव महं एकहु जिनके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई। सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे'**।
- तुलसीदास सृष्टि को परम कारण की अभिव्यक्ति मानते हैं। वे संसार के प्रत्येक प्राणी में उसी एक तत्त्व को देखते हैं- **'सियाराम मय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी'**।
- तुलसीदास एक समन्वयवादी कवि थे। उनके काव्य में अपने समय के प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तरों का समन्वय हुआ है। तुलसीदास महान् समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में अनेक उच्च आदर्शों की स्थापना की। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में आदर्श स्थापित किये। तुलसीदास ने भगवान् राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है।

भारतीय परम्परा को ज्ञान परम्परा कहते हैं। वेदों में निहित ज्ञान उपनिषद्, भगवद्गीता और पुराण के माध्यम से होता हुआ सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक संस्कृत में निहित ज्ञान पहले लौकिक संस्कृत में आया और फिर जन साधारण की भाषा (ब्रजभाषा, अवधीभाषा इत्यादि) में अभिव्यक्त हुआ। भाषा विचार और भाव अभिव्यक्ति का माध्यम अवश्य है परन्तु भारतीय परम्परा में भाषा की अपेक्षा विचार, भाव और उसकी अभिव्यक्ति को ज्यादा महत्त्व दिया गया है।

वेदान्त चिन्तन की अविरल धारा पुराण से होती हुयी सन्तों की वाणी में अभिव्यक्त हुई। सन्तों ने वेदान्त चिन्तन का प्रचार-प्रसार किया। सन्तों ने वेदान्त चिन्तन को क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। सन्तों ने वेदान्त चिन्तन को सरल भाषा में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया, सहज रूप में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया, लोकगीतों के रूप में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया। निःसन्देह क्षेत्रीय भाषा ने वेदान्त चिन्तन को विस्तार दिया। सन्तों ने भक्ति का प्रचार-प्रसार तेजी से किया।

सन्तों ने वेदान्त चिन्तन को भक्ति के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। भक्ति ने वेदान्त चिन्तन को सहज रूप में प्रस्तुत किया। भक्ति ने लोगों को वेदान्त की तरफ आकर्षित किया। भक्ति ने वेदान्त चिन्तन को लोकप्रिय बनाया। भक्ति ने समाज को एकसूत्र में बाँधने का काम किया। भक्ति ने प्रत्येक व्यक्ति के लिये मुक्ति का मार्ग खोल दिया। भक्ति ने सबको एक धरालत पर लाकर खड़ा कर दिया। भक्ति ने समाज सुधार आन्दोलनों को बल दिया। यही मध्यकालीन भक्ति का सर्वोत्तम आदर्श था।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची (Bibliography)

I. प्राथमिक स्रोत (Primary Text)

(i) प्रत्यक्ष स्रोत

संस्कृत के ग्रन्थ

- ईशादि नौ उपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ (हिन्दी अनुवाद), गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०६८।
- ईशादिदशोपनिषदः: शाङ्करभाष्यसहितम्, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, १९७८ ई.।
- छान्दोग्योपनिषद्: सानुवाद शांकरभाष्यसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०६८।
- बृहदारण्यकोपनिषद्: सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०६८।
- ब्रह्मसूत्र: शाङ्करभाष्य (सत्यानन्दी दीपिका), गोविन्द मठ टेढीराम, वाराणसी, संवत् २०४०।
- ब्रह्मसूत्रनिम्बार्कभाष्यम्: वेदान्तकौस्तुभ-वेदान्तकौस्तुभप्रभा-भावदीपिकाव्याख्यात्रयोपेतम्, निम्बार्क, मदन मोहन अग्रवाल, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २००० ई.।
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य भामतीटीका, वाचस्पति मिश्र, सम्पादक: रामचन्द्र शास्त्री, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, शक संवत्, १९३० ई.।
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, शङ्कराचार्य, (गोविन्दानन्दकृत भाष्यरत्नप्रभा टीका, वाचस्पति मिश्र कृत भामती टीका, आनन्दगिरि कृत न्यायनिर्णय टीका सहित), सम्पादक: जे.एल. शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संवत् १९८८ ई.।
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, शङ्कराचार्य, वाचस्पति मिश्र कृत भामतीटीका, हिन्दी व्याख्याकार: स्वामी योगिन्द्रानद, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संवत् २००५।
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, शङ्कराचार्य, सत्यानन्दी हिन्दी टीका सहित, गोविन्दमठ वाराणसी, छठाँ संस्करण, विक्रम संवत् २०४०।
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य: रत्नप्रभा-भाषानुवाद सहित, श्री भोलेबाबा यतिवर, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, २००४ ई.।
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (एकादशटीकासंयुतम्), शङ्कराचार्य, योगेश्वरदत्त शर्मा, नाग प्रकाशक, जवाहरनगर, दिल्ली, १९९७ ई.।

- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (भाग-१): भामती-कल्पतरु-परिमल सहित, सम्पादक: कन्हैयालाल जोशी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (भाग-२): भामती-कल्पतरु-परिमल सहित, सम्पादक: कन्हैयालाल जोशी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्, शङ्कराचार्य, (भामती-पंचपादिका-विवरण-तत्त्वदीपन-विवरणप्रमेय-संग्रह-ऋजुप्रकाशिका- नारायण सरस्वती कृत वार्तिक-नवीनटिप्पणीप्रदीप व्याख्योपव्याख्यानवकोपेतम्, संस्कृतभूमिका, सुचियत्रादिसमेतम्), अनन्तकृष्ण शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २००८ ई.।
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्, शङ्कराचार्य, सम्पादक और अनुवादक: सरयूप्रसाद उपाध्याय, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६६ ई.।
- ब्रह्मसूत्रश्रीभाष्यम्, भगवद रामानुज, सम्पादक: देवनाचार्य, श्री नृसिंहप्रिया, चेन्नै, २००६ ई.।
- ब्रह्मसूत्राणि मध्वभाष्यसहितम्, भाष्यदीपिकाप्रकाशनसमितिः, वेङ्गलूर, १९६४ ई.।
- ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्, मैथिली प्रकाशन, पुष्यपत्तन, १९७२ ई.।
- भगवद्गीता: रामानुजभाष्यतात्पर्यचन्द्रिकासहितम्, वेदान्तग्रन्थमाला, मद्रास, १९१० ई.।
- मध्वभाष्यम्, मध्वाचार्यः, पूर्णप्रज्ञ प्रकाशनम्, बैंगलोर, १९९५ ई.।
- वेदान्त-दर्शन (ब्रह्मसूत्र), हिन्दी व्याख्याकार: हरिकृष्ण दास गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०६६।
- शारीरकश्रीभाष्यम्, भगवद्रामानुजः, श्रीदाण्डवन् आश्रमम्, चेन्नई, १९९७ ई.।
- श्रीभाष्य: श्रुतप्रकाशिकायुतम्, रामानुज, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, १९९१ ई.।
- श्रीभाष्यम्, रामानुज, व्याख्याकार: ललित कृष्ण गोस्वामी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २०१० ई.।
- श्रीभाष्यम्, रामानुजाचार्यः, विशिष्टाद्वैतवेदान्तप्रचारिणी सभा, मद्रास, १९६९ ई.।
- श्रीभाष्यम्, श्रीरामानुजाचार्यः, संस्कृतसंशोधनसंसत्, मेलुकोट, १९८५ ई.।
- श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्, वल्लभाचार्य, भाष्यकार: श्री पुरुषोत्तम; श्री गोपेश्वर, अक्षय प्रकाशन, दिल्ली, २००५ ई.।
- श्रीमद्भगवते निम्बार्कवेदान्तस्य समन्वयः, डॉ. द्वारकादास काठियाबाबा, सुखचार काठियाबाबा आश्रम, बंगाल, २००२ ई.।

- श्रीमद्भगवद्गीता: शाङ्करभाष्य हिन्दी-अनुवाद सहित, अनुवादक: हरिकृष्णदास गोयन्दका, गीता प्रेस गोरखपुर, संवत २०६७।
- श्रीमद्भगवद्गीता: शाङ्करभाष्याद्येकादशटीकोपेता, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, १९८५ ई.।
- श्रीमद्वल्लभमहाप्रभुस्तोत्राणि, वल्लभाचार्य, सम्पादक: श्याममनोहर, श्रीवल्लभविद्यापीठ, कोल्हापुर।
- श्रीवल्लभ-वेदान्त: ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्, वल्लभाचार्य, व्याख्याकार: ललित कृष्ण गोस्वामी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २००१ ई.।

हिन्दी के ग्रन्थ

- कबीर ग्रंथावली, पारसनाथ तिवारी, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रित संस्करण-१९८९ ई.।
- कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९९२ ई.।
- कबीर ग्रंथावली, सम्पादक: श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९८५ ई.।
- कबीर बीजक मूल सढीक, कबीर, हिन्दी पुस्तकालय, मथुरा, १९७१ ई.।
- कबीर बीजक, कबीर, टीकाकार: रामकृष्णदास, त्रिलोक चन्द्र मेरठ, १९९५ ई.।
- कबीर बीजक, शुकदेव सिंह, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२ ई.।
- कबीर: साखी और सबद, पुरुषोत्तम अग्रवाल, निदेशक, नेशनलबुक ट्रस्ट, इण्डिया, नई दिल्ली, २००७ ई.।
- कवितावली, तुलसीदास, गोयल प्रकाशन, दिल्ली, १९७१ ई.।
- कवितावली, तुलसीदास, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९७६ ई.।
- कवितावली, तुलसीदास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९५३ ई.।
- भ्रमरगीतसार, सपादक: रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् २०४८।
- भ्रमरगीतसार, सूरदास, सम्पादक: रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००७ ई.।
- रामचरितमानस, तुलसी, दामोदर शर्मा; मातृदत्त त्रिपाठी, नाग पब्लिशर्स दिल्ली, २००६ ई.।
- रामचरितमानस, तुलसीदास, अनुवादक: श्यामसुन्दरदास राय, इण्डियन प्रेस प्रयाग, २००७ ई.।
- रामचरितमानस, तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, पैतीसवाँ संस्करण, संवत् २०४७।

- विनयपत्रिका, तुलसीदास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७ ई.।
- विनयपत्रिका, तुलसीदासकृत, टीकाकार: कृष्णदेव शर्मा, साहित्य भण्डार, मेरठ, नवीन संस्करण-१९७८ ई.।
- विनयपत्रिका: हरि-तोषिणी टीका, वियोगी हरि, रामदास पोडवाल, वाराणसी, १९६९ ई.।
- सम्पूर्ण सूरसागर: लोकभारती टीका, सम्पादक: किशोरी लाल गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००५ ई.।
- साखी, विजयदेव नारायण साही, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९४ ई.।
- सूरसागर सार: सटीक, सम्पादक: धीरेन्द्र वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९७४ ई.।
- सूरसागर, सूरदास, सम्पादक: जवाहरलाल चतुर्वेदी, बिनानी ट्रस्ट, कलकत्ता, १९६५ ई.।
- सूरसागर: भाग १ एवं २, सम्पादक: नन्ददुलारे वाजपेयी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत् २०३५।

(ii) अप्रत्यक्ष स्रोत

- अद्वैतसिद्धि: बालबोधिनी टीका सहित, लेखक: योगेन्द्रनाथ, सम्पादक: शीतांशु शेखरदेव शर्मा, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, १९७१ ई.।
- अपरोक्षानुभूति, शङ्कराचार्य, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- अपरोक्षानुभूतिः, शङ्कराचार्य, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण-१९५५ ई.।
- आनन्दभाष्यम्, भगवद्रामानन्दाचार्यः, ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, १९७६ ई.।
- आनन्दभाष्यम्, भगवद्रामानन्दाचार्यः, श्रीरामानन्दीयवैष्णवमहामण्डलम्, अयोध्या, १९२९ ई.।
- ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्डक-माण्डूक्य-तैत्तिरीय-ऐतरेयोपनिषदः; आनन्दभाष्यसहितः, रामानन्दवेदान्तप्रचारसमितिः, अहमदाबाद, १९६९ ई.।
- ऋग्वेद संहिता, वैदिक संसोधन मण्डल, पूना, १९४६ ई.।
- खण्डनखण्डखाद्यम्, हर्षप्रणीतम्, व्याख्याकार: आचार्य श्री ब्रह्मदत्त द्विवेदी, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८९ ई.।
- गूढार्थदीपिका, धनपतिसूरि, चौखम्भा संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी, १९०७ ई.।
- जीवन्मुक्तिविवेक, विद्यारण्यस्वामी प्रणीत, डॉ. महाप्रभुलाल गोस्वामी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, १९८४ ई.।

- तत्त्वप्रदीपिका, चित्सुखाचार्य, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३१ ई.।
- देवीभागवत पुराण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, विक्रम सम्वत् १९८८।
- नैष्कर्म्यसिद्धि: ज्ञानोत्तममिश्र कृत चन्द्रिका सहित, सम्पादक: कोलोनल जी. ए. जैकोब, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सम्वत् १९९२ ई.।
- पञ्चदशी, विद्यारण्यस्वामी, सम्पादक: रमाकान्त शुक्ल, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, २००३ ई.।
- पञ्चदशी: कव्याख्या सहित, टीकाकार: अच्युत राय, ओरियन्टल बुक हाऊस, पूना, सम्वत् १८९६।
- पञ्चपादिका विवरण, प्रकाशात्मयति कृत, अनुवादक: किशोरीलाल स्वामी, रामतीर्थ मिशन, देहरादून, सम्वत् २००१।
- पञ्चपादिका: विवरण-तात्पर्यदीपिका-भावप्रकाशिका सहित, सम्पादक: टी. चन्द्रशेखरन, मद्रास गवर्नमेन्टल ओरियण्टल सीरीज, मद्रास, सम्वत् १९५८।
- पञ्चीकरण, शङ्कराचार्य, सम्पादक: डॉ. कामेश्वर नाथ मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी संस्कृत ग्रन्थमाला, १९८३ ई.।
- पाञ्चरात्ररक्षा, वेदान्तदेशिकः, अडयार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, मद्रास, १९६७ ई.।
- पाशुपतसूत्रम्, व्याख्याकार: भगवत्पाद श्री कौण्डिन्य, सर्वदर्शनाचार्य श्रीकृष्णानन्दसागर, वाराणसी, १९८७ ई.।
- ब्रह्मसिद्धि, मण्डनमिश्र, सम्पादक: कुप्पुस्वामी शास्त्री, गवर्नमेन्ट प्रेस, मद्रास, सम्वत् १९३७।
- ब्रह्मसूत्र विज्ञानामृतभाष्यम्, विज्ञानभिक्षु, सम्पादक: केदारनाथ त्रिपाठी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, १९७९ ई.।
- ब्रह्मसूत्रभाष्य, श्रीकण्ठ, अप्पयदीक्षितकृत शिवार्कमणिदीपिकाव्याख्या सहित, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, १९८६ ई.।
- ब्रह्मसूत्रभाष्यम्, भास्कराचार्य, सम्पादक: विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, संवत् १९९१ ई.।
- ब्रह्मसूत्र-विद्योदयभाष्यम्, उदयवीर शास्त्री, विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली, २००३ ई.।

- भक्तिचन्द्रिका (नारदभक्तिसूत्राणां व्याख्या), डॉ. विश्वनाथ पाण्डेय, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९९५ ई.।
- भक्तिरसामृतसिन्धु, रूप गोस्वामी कृत, व्याख्याकार: श्यामनारायण पाण्डेय, साहित्य निकेतन कानपुर, १९६५ ई.।
- मनुस्मृति: कुल्लूकभट्टटीका सहित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९९७ ई.।
- विवरणप्रमेयसंग्रह, विद्यारण्य, सम्पादक: कृष्णपन्त शास्त्री, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, १९९६ ई.।
- वेदान्तपरिभाषा, धर्मराजाध्वरीन्द्र, व्याख्याकार: गजानन शास्त्री मुसलगांवकर, अनुवादक: श्रीरामशास्त्री मुसलगांवकर, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९८३ ई.।
- वेदान्तसार, सदानन्द यति, व्याख्याकार: बदरीनाथ शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २००३ ई.।
- वेदान्तसार, सदानन्द यति, व्याख्याकार: आद्याप्रसाद मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, संवत् २००७।
- वेदान्तसार: विद्वन्मनोरजनी टीका, सम्पादक: प्रो. रामतीर्थ यति, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९८९ ई.।
- वेदान्तसार: सुबोधिनी टीका सहित, सम्पादक: नृसिंह सरस्वती, चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन, १९७३ ई.।
- वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली, प्रकाशानन्द, हिन्दी व्याख्याकार: आचार्य लक्ष्मीश्वर झा, नाग प्रकाशन, दिल्ली, १९९६ ई.।
- शाण्डिल्यभक्तिसूत्रम्: नारायणतीर्थविरचितया भक्तिचन्द्रिकया समन्वितम्, सम्पादक: आचार्य श्रीबलदेव-उपाध्यायः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, विक्रम संवत् २०५५।
- शुद्धाद्वैतमार्तण्डः, श्री गिरिधर गोस्वामी, सम्पादक: सत्यनारायण मिश्र, वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, १८८८ ई.।
- शोध-प्रविधि, विनयमोहन शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संवत् १९८०।
- श्रीकरभाष्य, श्रीपति, हयवदन राव, अक्षय प्रकाशन, दिल्ली, २००३ ई.।
- श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई , १९८३ ई.।
- श्रीमद्भगवद्गीता: शङ्करानन्दभाष्य, अनुवादक: भोलेबाबा, विक्रम संवत् १९८१।

- श्रीमद्भगवद्गीता: श्रीधरभाष्य, अनुवादक: विश्वानन्द गदाधर नारायण, दिल्ली, १९७६ ई.।
- श्रीमद्भगवद्गीता: श्रीमधुसूदनसरस्वतीकृत गूढार्थदीपिकाव्याख्योपेता (समीक्षात्मकभूमिका-प्रतिव्याख्यहिन्दीभाष्यानुवाद-विमर्शाख्यव्याख्यात्मकटिप्पणीविविधानुक्रमणिकायुक्ता) भाग-१ और भाग-२, हिन्दीभाष्यानुवादकारः मदनमोहन अग्रवाल, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २००८ ई.।
- श्रीमद्भागवत महापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०५२।
- श्रीरामानन्दभाष्यम्, श्रीभगवदाचार्यः, ज्योतिषप्रकाश प्रेस, वाराणसी, १९६३ ई.।
- श्रीवेदान्तदर्शन: गोविन्दभाष्य, विद्याभूषण, व्याख्याकार: श्यामदास बलदेव, व्रजगौरव प्रकाशन, श्रीधाम वृन्दावन, २००३ ई.।
- संक्षेपशारीरक, सर्वज्ञातमुनि, सम्पादक: वझेभाउ शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संवत् १९९२।

II. द्वितीयक स्रोत (Secondary Text)

(i) स्वतन्त्रग्रन्थ

- अञ्जना, शङ्कर का अद्वैत दर्शन, परिमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २००६ ई.।
- अवस्थी, डॉ. विश्वम्भर दयाल, गोस्वामी तुलसीदास दर्शन और भक्ति, ऊर्जा प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८१ ई.।
- उपाध्याय, आचार्य बलदेव, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त, चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९७८ ई.।
- उपाध्याय, बलदेव, पुराणविमर्श, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५ ई.।
- उपाध्याय, बलदेव, भारतीय धर्म एवं दर्शन, चौखम्बा ओरियण्टल, दिल्ली, १९७७ ई.।
- उपाध्याय, बलदेव, भारतीय-दर्शन, शारदा मन्दिर वाराणसी, १९९१ ई.।
- उपाध्याय, बलदेव, श्री शङ्कराचार्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९५० ई.।
- एस. राधाकृष्णन, भगवद्गीता, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९६२ ई.।
- गगन देवगिरि, श्रीमद्भगवद्गीता के शाङ्करभाष्य का समालोचनात्मक अध्ययन, ज्योति प्रकाशन, पटना, १९७८ ई.।
- गुप्त, डॉ. दीनदयाल, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९७० ई.।

- गुप्त, डॉ. दीनदयाल, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (भाग-२), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००४ ई.।
- गैरोला, वाचस्पति, भारतीय दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६६ ई.।
- गौड़, ललित कुमार, वेदान्त सिद्धान्तमुक्तावली का समीक्षात्मक अध्ययन, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली, १९९४ ई.।
- चतुर्वेदी, कृष्णकांत, द्वैत वेदान्त का तात्त्विक अनुशीलन, विद्याप्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, १९८० ई.।
- चतुर्वेदी, कृष्णकांत, द्वैत वेदान्त का तारिक्क, विद्या प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, १९७१ ई.।
- चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तर भारत की संत परंपरा, भारती भण्डार प्रयाग, १९८४ ई.।
- जयसवाल, सुवीरा, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, मैकमिलन, नई दिल्ली, १९६७ ई.।
- झा, वीणा, शंकर का अद्वैत वेदान्त, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, १९८८ ई.।
- डा. धर्मवीर, कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८ ई.।
- डॉ. राधाकृष्णन, उपनिषदों का संदेश, राजपाल एण्ड सन्स, १९९० ई.।
- तिलक, बाल गंगाधर, श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य, अपोलो प्रकाशन, जयपुर, २००७ ई.।
- तिवारी, अवधेश प्रसाद, श्रीशङ्करदिग्विजय: एक अध्ययन, माधवाचार्य कृत, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, २००१ ई.।
- त्रिपाठी, चन्द्रबली, उपनिषद् रहस्य, एन. डी. नेशनल पब्लिकेशन हाउस, १९८६ ई.।
- त्रिभुवनदास, विशिष्टाद्वैतवेदान्त का विस्तृत विवेचन, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २०१३ ई.।
- दत्त एवं चटर्जी, भारतीय दर्शन, पुस्तकभण्डार पब्लिशिंग हाउस, पटना, १९९९ ई.।
- दास, रवीन्द्र कुमार, शङ्कराचार्य का समाज दर्शन: भक्ति एवं धर्म के सन्दर्भ में, विद्याभवन प्रकाशन, दिल्ली, २००६ ई.।
- द्विवेदी, कपिलदेव, वैदिक दर्शन, विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर भदोही, २००६ ई.।
- द्विवेदी, विश्वम्भर, अद्वैतवेदान्त एवं कश्मीर शैव अद्वैतवाद, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, २००५ ई.।

- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ संप्रदाय, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, १९६६ ई.।
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, मध्यकालीन धर्म-साधना, साहित्य भवन इलाहाबाद, १९६१ ई.।
- नन्द कुमार, आद्य शङ्कराचार्य, इतिहास शोध-संस्थान, दिल्ली, २००८ ई.।
- नाहर, रतिभान सिंह, भक्ति आंदोलन का अध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद, १९७८ ई.।
- पांडेय, मैनेजर, भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३ ई.।
- पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, भक्ति दर्शन विमर्श, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९९१ ई.।
- पाण्डेय, डॉ. शशिकान्त, अद्वैतवेदान्त में मायावाद, विद्यानिधि प्रकाशन, २००६ ई.।
- पाण्डेय, ब्रजेश कुमार, श्रीभाष्य सिद्धान्त और प्रतिपक्ष, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, २००८ ई.।
- पी.वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूने, १९५३ ई.।
- बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त, हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९५ ई.।
- भट्टाचार्य, अभेदानन्द, अद्वैत एवं द्वैताद्वैत दर्शन, एस.एस. पब्लिशर्स, दिल्ली, १९९२ ई.।
- भट्टाचार्य, माला, वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्त, बी. एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा, २००४ ई.।
- भण्डारकर, राधाकृष्ण गोपाल, वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६७ ई.।
- भण्डारी, डी. आर., भारतीय दार्शनिक चिन्तन, अखिल भारतीय दर्शन परिषद, नई दिल्ली।
- मलशनी, घनश्यामदास, वेदान्त की ज्ञानमीमांसा, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९७३ ई.।
- मलिक मोहम्मद, वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली, १९७१ ई.।
- महात्मा गाँधी, गीता माता (श्रीमद्भगवद्गीता), सस्ता साहित्य मण्डल, १९७७ ई.।
- मित्तल, प्रभुदयाल, चैतन्यमत व ब्रज साहित्य, साहित्य संस्थान, मथुरा, १९६२ ई.।

- मिश्र, शिवकुमार, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९९ ई.।
- मिश्रा, चञ्चला, वेदान्ततत्त्वविवेक: एक अध्ययन, डिप्टी पब्लिकेशन, दिल्ली, १९८९ ई.।
- योगार्थी, प्रमोद, उद्धवगीता में भक्तियोग दर्शन, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, २००५ ई.।
- राकेश, विष्णुदत्त, उत्तर भारत के निर्गुण पंथ साहित्य का इतिहास, साहित्य भवन इलाहाबाद, १९७५ ई.।
- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय दर्शन (भाग-1), राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९७३ ई.।
- रानाडे, रामचन्द्र दत्तात्रेय, उपनिषद्-दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, २०११ ई.।
- रामकृष्ण, ब्रह्मसूत्र के वैष्णवभाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६० ई.।
- रावत, डॉ. चन्द्रभान, कृष्ण भक्ति साहित्य: वस्तु स्त्रोत और संरचना, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति, १९७७ ई.।
- वर्मा, साँवलिया बिहारी लाल, भारत में प्रतीक पूजा का आरम्भ और विकास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, १९८९ ई.।
- वाजपेयी, आचार्य नंददुलारे, महाकवि सूरदास: सूरदास के काव्य, जीवन और भक्ति का अंतरंग विवेचन, राजकमल प्रकाशन, १९९२ ई.।
- शर्मा, उमेश चन्द्र, शङ्करवेदान्त में भक्ति, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, १९८८ ई.।
- शर्मा, उर्मिला, अद्वैतवेदान्त में तत्त्व एवं ज्ञान, छन्दस्वती प्रतिष्ठान,वाराणसी, १९९४ ई.।
- शर्मा, चन्द्रधर, भारतीयदर्शन: आलोचक एवं अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९९६ ई.।
- शर्मा, डा. राममूर्ति, अद्वैतवेदान्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९७२ ई.।
- शर्मा, मदनलाल, सूरदास: भक्ति दर्शन और काव्य, राजेश प्रकाशन, दिल्ली, १९९० ई.।
- शर्मा, मुंशीराम, भक्ति का विकास, चौखम्भा वाराणसी, १९५८ ई.।

- शर्मा, राममूर्ति, अद्वैतवेदान्त: इतिहास तथा सिद्धान्त, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९९८ ई.।
- शर्मा, राममूर्ति, शङ्कराचार्य, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९८९ ई.।
- शर्मा, लेखराम, आचार्य शङ्कर की भाष्य पद्धति, इन्दु प्रकाशन, दिल्ली, १९९८ ई.।
- शर्मा, वाचस्पति, अणुभाष्य: एक समीक्षात्मक अध्ययन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९९५ ई.।
- शास्त्री, आचार्य जगदीश लाल, श्रीमद्भागवतपुराणम्, मोतीलाल बनारसीदास, १९८३ ई.।
- शास्त्री, उदयवीर, वेदान्त दर्शन का इतिहास, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली, २००२ ई.।
- शास्त्री, प्रभाकर, भगवान्निम्बार्काचार्य: सिद्धान्त, उपासना एवं आचार्य परम्परा, रचना प्रकाशन, जयपुर, २००२ ई.।
- शास्त्री, विश्वनाथ, भारतीय दर्शनों में वेदान्त का स्थान, सरस्वती संस्कृत कालेज, लुधियाना, १९८६ ई.।
- शास्त्री, सत्यदेव, भामती और विवरण प्रस्थान का तुलनात्मक अध्ययन, भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२ ई.।
- शुक्ल, रमाकान्त, गौडीय वेदान्त, दुर्गा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २००८ ई.।
- शुक्ल, श्यामसुन्दर, हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६४ ई.।
- शेखावत, महेन्द्र, आधुनिक चिन्तन में वेदान्त, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९८६ ई.।
- श्रीवास्तव, जगदीश सहाय, अद्वैतवेदांत की तार्किक भूमिका, किताब महल, इलाहाबाद, १९९३ ई.।
- सातवलेकर, दामोदर, श्रीमद्भगवद्गीता, पुरुषार्थ बोधिनी टीका, बलसाड, १९६३ ई.।
- सिंह, गोपेश्वर, भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार, भारतीय प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, २००२ ई.।
- सिद्धप्पाराध्य, टी. जि., शक्तिविशिष्टाद्वैत दर्शन, रम्भापुरी संस्थान मठ, बालेहोन्नूर, १९६१ ई.।
- सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २००८ ई.।

- सुमन लता, विशिष्टाद्वैत की आचार-मीमांसा, परिमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २००० ई.।
- सूर साहित्य और अचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, १९९३ ई.।
- सेठ रमेश, महाराष्ट्र की वैणव-भक्ति परम्परा और तुकाराम, साहित्य शोध संस्थान, नई दिल्ली, २००२ ई.।
- सेठ, डा. रवीन्द्र कुमार, तमिल वैष्णव कवि: आलवार, साहित्य शोध संस्थान, नई दिल्ली, १९९१ ई.।

(ii) शोध-प्रबन्ध/ लघु शोध-प्रबन्ध

- अग्रवाल, पुरुषोत्तम, कबीर की भक्ति का सामाजिक अर्थ, लघु शोध-प्रबन्ध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, भाषा संस्थान, भारतीय भाषा केन्द्र, १९८५ ई.।
- अग्रवाल, रश्मि, पुष्टिमार्गीय प्रमुख स्तोत्रों का आलोचनात्मक अनुशीलन, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, कला संकाय, संस्कृत विभाग, १९९३ ई.।
- अत्री, मधु, शङ्कराचार्य प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, संस्कृत विभाग, १९९९ ई.।
- कमलिनी, हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य और रस नृत्य, लघु शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, हिन्दी विभाग, १९७४ ई.।
- झा, अजय कुमार, भक्ति रसायन का अध्ययन, लघु शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, संस्कृत विभाग, १९९७ ई.।
- तिवारी, अतुल कुमार, हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना और भक्ति काव्य, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, भाषा-साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, भारतीय भाषा केन्द्र, २००५ ई.।
- तिवारी, आरती, औपनिषदिक भक्तिमार्गस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्, विद्यावारिधिः शोध प्रबन्धः, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय वाराणसी, २००२ ई.।
- तिवारी, रमाकान्त, स्वामी करपत्री विरचित भक्तिरसायन का अध्ययन, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, संस्कृत विभाग, १९८५ ई.।
- त्रिपाठी, ज्ञानेन्द्र राम, आचार्य शुक्ल के भक्ति विवेचन का सामाजिक दृष्टिकोण, लघु शोध-प्रबन्ध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, भाषा-साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, भारतीय भाषा केन्द्र, १९९९ ई.।

- दास, रविन्दर कुमार, भक्ति और धर्म की सामाजिक चेतना: शङ्कर दर्शन के संदर्भ में, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, दर्शन विभाग, २००२ ई.।
- दुबे, सर्वेश कुमार, मानस में प्रतिपादित भक्ति की सामाजिकता, लघु शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, हिन्दी विभाग, १९८६ ई.।
- राय, रुस्तम, हिन्दी आलोचना के बदलते मूल्य और भक्ति काव्य का मूल्यांकन, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, भाषा-साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, भारतीय भाषा केन्द्र, १९९९ ई.।
- विलियम, ब्यर, कबीर की भक्ति भावना, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, हिन्दी विभाग, १९७३ ई.।
- विलियम्स, टायलर वाँकार, भक्ति काव्य में निर्गुण-सगुण विभाजन का ऐतिहासिक अध्ययन, लघु शोध-प्रबन्ध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, भाषा-साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, भारतीय भाषा केन्द्र, २००७ ई.।
- शर्मा, किरण, भक्ति वेदान्त, लघु शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, संस्कृत विभाग, १९८३ ई.।
- शर्मा, गीता रानी, तुलसी कृत दोहावली में भक्ति तत्त्व, लघु शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, हिन्दी विभाग, १९८६ ई.।
- शास्त्री, हरिराम, अद्वैतवेदान्तकबीरदर्शनयोः वर्तमान-भारतीय-समाज-हितानुचिन्तन-दिशा समीक्षात्मकमध्ययनम्, विद्यावारिधिः शोध प्रबन्धः, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय वाराणसी, १९९९ ई.।
- शेखर, सुधांशु, कबीर और तुलसी की भक्ति संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध-प्रबन्ध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, भाषा-साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, भारतीय भाषा केन्द्र, १९९९ ई.।
- श्रीवास्तव, रागिनी, प्रमुख संस्कृत काव्यों में भक्ति, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, कला संकाय, संस्कृत विभाग, १९९९ ई.।
- सिंह, ऋचा, श्रीमद्भागवत में प्रेम, भक्ति एवं माधुर्य: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, तिलकधारी कालेज, संस्कृत विभाग, २००९ ई.।
- सिंह, मनोज कुमार, भक्ति आंदोलन का स्वरूप चिंतन और हिन्दी आलोचना, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, कला संकाय, हिन्दी विभाग, २००१ ई.।

➢ सिंह, सुमन कुमारी, आचार्य शङ्कर का स्तोत्र साहित्य: एक समीक्षात्मक अध्ययन, पीएच्.डी. शोध-प्रबन्ध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, कला संकाय, संस्कृत विभाग, १९८९ ई.।

(iii) कोश ग्रन्थ

- अमरकोश, श्रीमदमरसिंहविरचितलिङ्गानुशासनरत्नप्रभाऽऽख्य संस्कृत-व्याख्या हिन्दी-टिप्पण्यादिभिश्च, व्या. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, सं. २००४।
- अमरकोश, अमरसिंह, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९६१।
- अमरकोश, संपा. हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा, संस्करण-१९७३।
- न्याय-कोश, झलकींकर, सम्पा. वासुदेव शास्त्री, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९२८।
- पारिजात-कोश, (संस्कृत-हिन्दी शब्दार्थकोश), सं.- ईश्वरचन्द्र, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २००५।
- पौराणिक शब्दकोश, राणाप्रसाद शर्मा, वाराणसी, १९८६
- भारतीय दर्शन परिभाषा कोष, दीनानाथ शुक्ल, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, १९९३।
- भारतीय दर्शन बृहत्कोश (भाग प्रथम से चतुर्थ तक), बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००५।
- मानक हिन्दी कोश, संपा. रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १९६५।
- वाचस्पत्यम् (छः भाग), चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्र.सं.-९४, वाराणसी, १९६९।
- वाचस्पत्यम्, संकलनकर्त्ता श्री तारानाथ तर्क वाचस्पति, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७०।
- विशिष्टाद्वैतकोशः, अहोबिलमठम्, तिरुवल्लूर, १९५१।
- विशिष्टाद्वैतकोशः, सं.- डा. चक्रवर्तिराघवन्, डी. टी. स्वामी पब्लिकेशन्स, तिरुपतिः, २००१।
- विशिष्टाद्वैतवेदान्तकोशः, सं. प्रो.भाष्यम् स्वामी, संस्कृत संशोधन संसत्, मेलुकोट, २००८।
- वैदिक पदानुक्रम कोश, मोरिस ब्लूमफिल्ड, सम्पा. ओमनाथ बिमली, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २००४।
- वैदिकनिर्वचनकोष, ज्ञानप्रकाश शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २०००।
- शब्दकल्पद्रुम (पाँच भाग), राजा राधाकान्त देव, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्र.सं.-९३, वाराणसी, १९६७।

- शब्दार्थ चिंतामणि, सुखानन्द दास, प्रिण्ट वैल, सं. १९९२।
- शाङ्कर वेदान्त कोशः, मुरली पाण्डेय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सं. १९९८।
- संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर, संपा. रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन्१९५८।
- संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, मोतीलाल बनारसीदास, १९७०।
- संस्कृत वाङ्मय कोश, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००१।
- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, सं. द्वारका प्रसाद शर्मा; पं. तारिणीश झा; राम नारायण लाल; बेनी प्रसाद, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण-१९७३।
- संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, अमर पब्लिकेशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-१९९४।
- संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, सं. १९६६।
- समांतर कोश, संपा अरविन्द कुमार; कुसुम कुमार, नेशनल बुक ट्रस्ट,१९९६।
- हिन्दी विश्वकोश (खण्ड १-१२), सं. कमलापति त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९७३।
- हिन्दू धर्मकोश, संपा. डा. राजबली पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-१९७८।

(iv) अन्तर्जालीय स्रोत

- **http://bharatdiscovery.org/india/मुखपृष्ठ**
- **http://www.hindisamay.com/default.aspx**
- **https://www.youtube.com/channel/UC_gzysAICKehgjd5jlo5njw**
- **https://www.youtube.com/user/sumydqueen/featured**
- **https://www.youtube.com/channel/UCkzbVOpljOVRUs77hlPNALw/featured**
- **https://wikisource.org/wiki/Page:Kabir_Granthavali.pdf/96**
- **http://aryamantavya.in**
- **https://www.wikipedia.org**
- **https://www.britannica.com**
- **http://hindunet.com**

- **http://www.thecatalyst.org**
- **http://shodhganga.inflibnet.ac.in**
- **http://crl.du.ac.in/cl/**
- **http://jnuonlinecatlog.jnu.ac.in:8080/search/query?facet_item_class=39&sort=dateBookAdded&theme=jnu**